राजाधिराज

राजाधिराज

कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी



राजकमल प्रकाशन दिल्ली

प्रथम बार १९४९

मूल्य छः रुपये

गोपीनाथ सेठ द्वारा नवीन प्रेस, दिल्ली से मुद्रित। राजकमल
पब्लिकेशन्स लिमिटेड दिल्ली द्वारा भारतीय
विद्याभवन बंबई के लिए प्रकाशित।

पाठक से

'पाटणनी प्रभुता'को आरम्भ किये हुए कई वर्ष बीत गए। मंजरी का सृजन करते काफी समय हुआ। पिछले कुछ वर्षों तक काक और मंजरी की कथा मानो वास्तविक जीवन का खण्ड हो, ऐसा मुझे लगता रहा। वे पात्र, वह जीवन, वे षड्यन्त्र—मनमौजी होते हुए भी वंश की अकड़, वृद्ध होते हुए भी विचक्षण महाअमात्य, और बहादुर होते हुए भी स्वार्थी काक, और महत्वाकांक्षिणी लीलादेवी, तेजस्वी, पतिपरायण, प्रेरणामूर्ति मंजरी—ये सब काल्पनिक चित्र भी मेरे मन में जीवित की तरह प्रत्यक्ष रहे हैं। और उपन्यास के साथ-साथ इनको विदा करते हुए मुझे वेदना भी हुई है।

मंजरी की मृत्यु से इस कथा को पूर्ण करने पर कुछ लोगों को इसमें दोष दिखलाई दिया है, किन्तु कला के अन्वेषण और सत्यात्मक दृष्टि के लिए आघात सहकर भी मुझे यह करुण अन्त रखना ही पड़ा। मंजरी साहित्य में पहले से भी अधिक लोकप्रिय हुई, उसके जीवन से पाठकों ने रस ग्रहण किया। 'इसका भविष्य क्या होगा' यह जानने के लिए लोगों ने मुझे व्यग्र बना डाला। 'इस परिणाम से पाठकों के हृदय अधीर हो उठे हैं' ऐसा मुझसे बहुत-से लोगों ने कहा तथा पत्र लिखे। एक अपरिचित भाई ने अपने उद्गार इस प्रकार प्रकट किए—

'इस प्रकार मंजरी पर दुःख की नदियाँ बहीं, वह हम सहन कर गए, इस आशा में कि काक को आप यथासमय मंजरी के पास पहुँचा देंगे और आनन्द-जल से हमको भिगो देंगे किन्तु आप तो यमराज के समान निर्दयी निकले। काक और मंजरी के मिलाप द्वारा हमारी आँखें प्रेम से भिगो देने और आनन्द में हृदय को डुबा देने के बजाय आपने दयाहीन और निष्ठुर की तरह पाठकों के हृदय को चीर डाला और

उन्हें क्रूरता से समुद्र में ढकेल दिया। आपने दुःख त्रास और शोक की पराकाष्ठा कर दी। ज्ञात होता है, दया का अंश भी आपके हृदय में नहीं है।'

इतने रस से मंजरी का विकास देखने के उत्सुक पाठकों का हृदय दुःखाभिभूत हो उठा यह स्वाभाविक है। कला का दृष्टिबिन्दु भुला देना मुझे ठीक नहीं जंचा। यदि यह दृष्टि-बिन्दु भ्रष्ट हो तो रस भरे हुए जीवन को अस्त-व्यस्त करना, और इस प्रकार कला के निश्चल सत्य का ही अनुसरण करना अक्षम्य अपराध नहीं समझा जायगा।

इस पुस्तक के साथ गुजरात के इतिहास की 'वार्तामाला' की तीसरी मणि पूरी हो रही है। मेरी कृतियों को भरपूर आदर मिला है, यह देख कर मैं समझता हूँ कि अतीत गुजरात के गौरव में भारतीय पाठक को रस ग्रहण कराने का मेरा यह प्रयत्न व्यर्थ नहीं गया है।

इन पुस्तकों की उचित प्रशंसा से कुछ दूसरी दृष्टि के नये साहित्य-कार एवं आलोचक-जीव तिलमिला उठे हैं और मेरे इन साधारण प्रयासों को अनेक प्रकार के आक्षेपों से भर दिया है। इन आक्षेपों का उत्तर देने की मुझे आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। प्रकाशित कृतियों के सम्बन्ध में अपनी धारणा बनाने का प्रत्येक को अधिकार है। मेरा तो उत्तर यही है कि यदि इनमें जीवन नहीं है तो अपने आप ही ये पाठकों से ओझल हो जायंगी, और कदाचित् अग्नि नारायण को आहुति देते समय घृत की तरह एक बार यह फिर ज्वलन्त हो उठें।

कन्हैयालाल मुंशी

विषय सूची

पहला खण्ड

दूसरा खण्ड

तीसरा खण्ड

चौथा खण्ड

पहला खण्ड

: १ :

नवागन्तुक

विक्रम संवत् ११६८ के चैत्र मास का प्रभात था।

भृगुकच्छ (भड़ौंच) अपने काम-काज में लग चुका था परंतु अभी दुर्ग के द्वार नहीं खुले थे। दुर्ग में प्रवेश करने को उत्सुक लोग, प्राचीन गाँव और दुर्ग के बीच की खाई को पार करके, टीले पर चढ़कर परकोटे के द्वार खुलने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

भृगुकच्छ दो थे; एक लाट के प्राचीन राजाओं वाला पुराना, और दूसरा त्रिभुवनपाल सोलंकी का बसाया हुआ नया नगर।

इस नई बस्ती के चारों ओर एक अत्यन्त नया प्राचीर बनवाया गया था। इस प्राचीर के और प्राचीन नगर के बीच एक गहरी और चौड़ी खाई सरिता-पथ के समान स्वाभाविक ढंग से बनी हुई थी जो नए नगर को प्रायः चारों ओर से घेरे हुए थी।

आजकल बाहर की ओर जहाँ खाई गहरी है वहीं इस खाई का मुख था। उसी के सामने बड़ी-बड़ी नौकाएँ लंगर डालती थीं और वहाँ से यात्री गाँव में प्रवेश करते थे।

वहीं एक ऊँचे टीले पर तीन-चार जैन साधु खड़े हुए थे। जान पड़ता था वे दूर से चलते चले आ रहे हैं। उनमें से एक साधु सबसे दूर वाले टीले के कगार पर खड़ा था। वह लगभग बीस-पच्चीस वर्ष का था। उसके मुख का रूप, आँखों का तेज और चमकते हुए भाल का गौरव असाधारण था। देखने वाला इस चक्कर में पड़ जाता था कि ऐसी कच्ची उमर में इस सुन्दर पुरुष ने अखंड वैराग्य का कठिन जीवन क्योंकर स्वीकार किया होगा! उसकी विशाल आँखें जितनी तेजोमय थीं उतनी ही गहन भी थीं। उसने थोड़ी देर तक ऊँचे दुर्ग के कंगूरों

: १ :

नवागन्तुक

विक्रम संवत् ११६८ के चैत्र मास का प्रभात था।

भृगुकच्छ (भड़ौंच) अपने काम-काज में लग चुका था परंतु अभी दुर्ग के द्वार नहीं खुले थे। दुर्ग में प्रवेश करने को उत्सुक लोग, प्राचीन गाँव और दुर्ग के बीच की खाई को पार करके, टीले पर चढ़कर परकोटे के द्वार खुलने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

भृगुकच्छ दो थे; एक लाट के प्राचीन राजाओं वाला पुराना, और दूसरा त्रिभुवनपाल सोलंकी का बसाया हुआ नया नगर।

इस नई बस्ती के चारों ओर एक अत्यन्त नया प्राचीर बनवाया गया था। इस प्राचीर के और प्राचीन नगर के बीच एक गहरी और चौड़ी खाई सरिता-पथ के समान स्वाभाविक ढंग से बनी हुई थी जो नए नगर को प्रायः चारों ओर से घेरे हुए थी।

आजकल बाहर की ओर जहाँ खाई गहरी है वहीं इस खाई का मुख था। इसी के सामने बड़ी-बड़ी नौकाएँ लंगर डालती थीं और वहाँ से यात्री गाँव में प्रवेश करते थे।

वहीं एक ऊँचे टीले पर तीन-चार जैन साधु खड़े हुए थे। जान पड़ता था वे दूर से चलते चले आ रहे हैं। उनमें से एक साधु सबसे दूर वाले टीले के कगार पर खड़ा था। वह लगभग बीस-पच्चीस वर्ष का था। उसके मुख का रूप, आँखों का तेज और चमकते हुए भाल का गौरव असाधारण था। देखने वाला इस चक्कर में पड़ जाता था कि ऐसी कच्ची उमर में इस सुन्दर पुरुष ने अखंड वैराग्य का कठिन जीवन क्योंकर स्वीकार किया होगा! उसकी विशाल आँखें जितनी तेजोमय थीं उतनी ही गहन भी थीं। उसने थोड़ी देर तक ऊँचे दुर्ग के कंगूरों

की ओर देखा; नौका में बैठ कर खाई पार करते हुए मनुष्यों की ओर दृष्टिपात किया; फिर घूमकर त्रिभुवनपाल सोलंकी द्वारा निर्मित सोमनाथ महादेव के भव्य मंदिर के सुन्दर शिखरों की ओर देखता रहा।

फिर वह नदी की ओर घूमकर इस प्रकार देखने लगा मानो इन सबसे उसे संतोष न मिला हो! जहाँ वह खड़ा था उस कगार के नीचे गंभीर और गौरवशील रुद्रकन्या नर्मदा की पतितपावन तरंगें सूर्य की बालकिरणों में नाच रही थीं और सदा के समान ऊर्मि-भरी आतुरता से भृगु के इस पवित्र धाम का आलिंगन कर रही थीं।

यदि कोई त्रिकालदर्शी होता तो उसे इन तरंगों की अनन्त आरसी में आर्यावर्त्त में हुए अनेक परिवर्तनों का प्रतिबिम्ब दिखाई दे जाता।

इन्हीं तरंगों ने आर्य नाम ही से अपरिचित इतिहासकाल में नागलोक के वीरों को स्नान कराया था; हैहयश्रेष्ठ सहस्रार्जुन को प्रचंड भुजाओं को तेज प्रदान किया था; हैहयों के संहार से तृप्त हुई परशु को धोते जामदग्न्य की कालाग्नि के समान मुखमुद्रा को शांत किया था; और समस्त भारत को ऐक्य प्रदान कर वानप्रस्थ लेने वाले भगवान कौटिल्य के पापों को धोकर उनकी मुमुक्षु आत्मा को शुद्ध किया था।

मस्त यादवों की जलक्रीड़ा, भोजों की सुकुमार ललनाओं का अंगलालित्य और ग्रीक लोगों के सुदृढ़ सुन्दर शरीर इन्होंने देखे थे। मिनेंडर की स्वतंत्र फौजों के निःश्वास सुने थे; दद्दा को दुर्जय सेना और त्रिभुवनपाल के गजराजों के दर्शन किए थे, और दुर्धर्ष सेनापति बारप का बल देखकर आश्चर्य चकित हो गई थीं।

इन्होंने लाट देश के स्वातन्त्र्य का अस्त देखा था और सुनी थी पाटन के सोलंकी मूलराज के पुत्र चामुंड की विजयसेना की गर्व-भरी गर्जना!

किंतु इस समय तो ये केवल सूर्य की बालकिरणों में नृत्य कर रही थीं, और उस बालक को इन सब बातों पर विचार करने का अवकाश भी न था। अब तो त्रिभुवनपाल की लाट को गुजरात में सम्मिलित

करने के दाँव-पेच और स्वयं जिस कारण से लाट आया था इन्हीं दो बातों पर विचार कर रहा था। फिर भी उसकी दृष्टि नीचे लंगर डाले हुए एक पोत पर पड़ी। इस पोत से उतरे हुए एक यात्री को देख कर उसके मुख पर संतोष छा गया, उसके होंठ मुस्कराहट से पुलक उठे।

उस यात्री को देखकर उस साधु का एक साथी उसके निकट आया।

'सूरिजी! महेता के आँबद'—बोलने वाला नवयुवक साधु के मुख की ओर देखकर रुक गया।

'विजयचंद्रजी! किसी का नाम लेनेसे क्या तात्पर्य?' नवयुवक साधु ने मीठी किन्तु तलवार की धार के समान काटती हुई आवाज़ में कहा।

जिसे विजयचंद्र ने 'महेता के आँबद' के नाम से पहचाना था वह एक सलोना नवयुवक योद्धा था। उसके कानों के कुंडल और हाथ की पहुँची, उसका लंबा भाला और पीछे एक नौकर के हाथ में धनुष उसकी समृद्धि और उसके शौर्य की साक्षी दे रहे थे। उसके पीछे-पीछे दो-तीन सैनिक उसका असबाब लेकर चल रहे थे।

आँबड़—शिष्टभाषा में कहा जाय तो आम्रभट—के साथ एक श्याम वर्ण का ठिगना और मोटा ब्राह्मण चल रहा था। उसकी त्वचा काले संगमरमर की-सी थी और उसके कपाल पर चंदन का त्रिपुंड काले पत्थर के शिवलिंग का स्मरण करवा रहा था। उसके एक स्कंध पर डोरी लोटा, दूसरे पर कम्बल और माथे पर कानटोपी थी।

'हर भोलानाथ! अन्त में जीते जी भृगुकच्छ के दर्शन तो हुए।

'सचमुच!' इस पर आम्रभट ने कहा। 'महाराज! अब हमें पृथक् होना पड़ेगा। बन सके तो दर्शन दीजिएगा।'

'चिन्ता न करो; विधि का लिखा होगा तो बिना भेंट किए छुटकारा कहाँ?' ब्राह्मण देवता बोले। 'यहां से मन भरा कि अवश्य खंभात आऊंगा। भगवान् करे फिर लौटकर सोरठ न जाना पड़े। बहुत हो चुका।'

आम्रभट हंस दिया।

'मणिभद्र जी, अपनी बहन के यहाँ कितने दिन टिकोगे ?'

'कितने दिन ? हर भोलानाथ ! भगवान् सोमनाथ करे जीवन वहीं व्यतीत हो जाय !' ब्राह्मण ने आत्म-संतोष से कहा। 'मेरी बहन भी ऐसी है हमें एक दूसरे के बिना चैन ही नहीं पड़ता।'

आम्रभट को विचार आया कि इस स्वरूपवान् भाई की बहिन कैसी होगी ! 'लेकिन आपके बहनोई—'

वाक्य पूरा करने से पहले ही आम्रभट की दृष्टि उस साधु पर पड़ी और दोनों के मुख ऐसे हो गए कि मानो अभी हास्य कर उठेंगे। किंतु साधु का मुख क्षण-भर में जैसा था वैसा ही गंभीर हो गया और वह इस प्रकार देखने लगा मानो आम्रभट से परिचित ही न हो। आम्रभट ने भी थोड़ी कठिनाई से अपरिचय का स्वाँग रचा।

ब्राह्मण देवता इन परिवर्तनों को न देख सके क्योंकि वे तो अपनी ही बात में लगे हुए थे।

'मेरे बहनोई—अरे ! भोलानाथ रक्षा करें ! ये कैसी घड़ी में मिल गए ?' कह कर ब्राह्मण ने साधु की ओर उंगली से संकेत किया।

आम्रभट ने उसकी बात पर ध्यान न देते हुए उन साधुओं को नमस्कार किया।

'महाराज, द्वार कब खुलेंगे ?'

'बस, तैयारी है', उस [illegible] साधु ने कहा। 'तुम कहाँ से आ रहे हो ?'

'मैं खंभात से आ रहा हूँ। जयसिंहदेव महाराज का सुभट हूँ और भृगुकच्छ के दुर्गपाल के लिए संदेशा लाया हूँ। आप कहाँ से विहार कर रहे हैं ?'

'हम तो [illegible]' से चले आ रहे हैं।' कहकर साधु ब्राह्मण की ओर [illegible] हुआ।

'विप्रवर ! आप कहाँ से आ रहे हैं ?'

'अरे हम तो आए हैं,' विप्रवर ने हाथ लम्बे किए, 'बहुत दूर से !'

सभी हँस पड़े ।

'मणिभद्र जी सोमनाथ पाटण से आए हैं ।' आम्रभट ने बात पूरी की—'अत्यन्त विनोदी हैं ।'

'सम्पूर्ण जगत् ही विनोदमय है,' मणिभद्रजी ने हँसकर तत्वज्ञान का निरूपण किया । 'क्यों साधु महाराज, समझ में आया ? अपने रामके लिए तो जहां गए वहीं घर । खाना-पीना, आनंद करना और तीनों काल गायत्री का जप करना । इसके बाद संसार क्या मारता है । हर-हर भोलानाथ ! पधारिएगा भट्टराज ! जय सोमनाथ ।' इतना कहकर मणिभद्र अपने विपुलाकार शरीर को लेकर हास्यास्पद गति से प्राचीन भृगुकच्छ की ओर मुड़ गया ।

क्षणभर तक वह नवयुवक साधु और आम्रभट निःशब्द खड़े रहे; दोनों इस सोच में पड़ गए कि एक दूसरे से परिचित होने की बात प्रकट करें या न करें ।

'आप कहाँ ठहरेंगे ?' आम्रभट ने पूछा ।

'देवभद्रसूरि महाराज के आश्रम में । तुम ?'

'नगरसेठ के यहाँ ।'

इतना कहकर आम्रभट ने नमस्कार करके विदा ली ।

: २ :

आम्रभट सब कुछ भूल जाता है

आम्रभट ने कुछ दूर खड़े एक व्यक्ति से पूछा :

'भाई ! दुर्गपाल गढ़ कब खोलेगा ?'

'शीघ्र ही । कहाँ से आए हो ?'

'वंथली में ! दुर्गपाल महाराज अभी गढ़ में होंगे ?'

'नहीं ! अब तो वे गांव में निवास करते हैं।' कहकर उसने प्राचीन भृगुकच्छ की ओर हाथ लम्बा किया।

'किस स्थान पर ?'

'[illegible] बृहस्पति के वाड़े में।'

'कितनी दूर है ?'

'सामने वाले पथ से चले जाओ, दाईं ओर एक चौक मिलेगा वहां पूछना कोई भी बता देगा।'

'और नगरसेठ कहाँ रहते हैं ?'

'वे तनिक दूर रहते हैं—पहली चौक में। मैं उधर ही जा रहा हूँ।' उस नागरी ने कहा।

'वहाँ मेरे सैनिकों को पहुंचा दीजिएगा ?' आम्रभट ने अपने गण को बुलाया। 'धर्मीर ! तुम इन भाई के साथ जाओ और तेजपाल को मेरे आगमन की सूचना दो। मैं दुर्गपाल महाराज से भेंट कर अभी आता।'

तब उसकी आज्ञानुसार उसके सैनिक उस नागरिक के साथ चले गए, तो आम्रभट ने अपने चारों ओर देखा।

[illegible] अल्हड़ था किंतु जीवन के प्रति आकर्षण उसमें पर्याप्त मात्रा में था। माता-पिता ने उसका लाड़-प्यार से लालन-पालन किया था और उस काल में जितनी प्रकार की विद्याएं प्रचलित थीं उन सभी में शिक्षित [illegible] युद्ध में भी भाग लेने लगा था, किंतु उस [illegible] आनन्द का आस्वादन करने के लिए आतुर था। [illegible] नर्मदा, वन में विचरण करते हुए मन्दिर-[illegible] नगर और तेजपाल सेठ की पुत्री—[illegible] उसके हृदय में न जाने कितनी आकांक्षाओं को अंकित कर दिया ! किंतु महाराज और

उसके पिता की आज्ञा के बोझ ने इन लहरियों को उठने से पहले ही दबा दिया। एक निःश्वास लेकर वह गाँव की ओर घूम गया।

उसका तेजस्वी मुख, आभूषणों से चमकते अंग, सुसंस्कृत और प्रभावशाली व्यक्तित्व देखकर दूकान खोलते व्यवसायीगण पलट कर उसकी ओर देखने लगे; किन्तु आम्रभट इस ओर ध्यान दिये बिना ही साम्बा बृहस्पति का बाड़ा पूछता हुआ चला जा रहा था।

उस समय की प्रचलित प्रथा के अनुसार यदि वह बंदर पर रुका होता, दुर्गपाल को संदेशा भेजा होता तो उसके और उसके पिता के पद को शोभा देने वाली रीतिसे पालकी में बिठाकर उसका स्वागत किया जाता। किन्तु आम्रभट के सरल और उमंगी स्वभाव को यह प्रपंच पसंद न था। ऐसे स्वभाव का परिणाम यह हुआ कि विचारमग्न होकर चलते-चलते थोड़े ही समय में वह इस अपरिचित गांव में पथ चूक गया।

थोड़े समय पश्चात् साम्बा बृहस्पति के बाड़े की खोज करते-करते वह गांव के ऐसे भाग में पहुँचा जो ब्राह्मणों का मोहल्ला-सा दिखाई देता था। मकान छोटे और निर्भूषण थे। उनमें से किसी एक में से वेदोच्चार या घनपाठ की ध्वनि निकल रही थी। आम्रभट को आश्चर्य हुआ। लाट का दुर्जय भटराज और भृगुकच्छ का दुर्गपाल, त्रिभुवनपाल महाराज का परम मित्र और उसके पिता जैसे प्रतापी मंत्री का शत्रु—कैसे इस मोहल्ले में रहता होगा! वह तनिक तिरस्कार से हँस पड़ा। कहाँ पाटण में उसके पिता का महल, कर्णावती और खंभात में प्रासाद, और कहाँ इस सत्ताधीश का झोंपड़ा!

इस मोहल्ले में घरों के द्वार खुले पड़े थे किन्तु कोई व्यक्ति दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। प्रत्येक द्वार के सामने खड़ी गौएँ इस नवागन्तुक को निश्चेष्ट होकर देख रही थीं। दुर्गपाल का निवासस्थान किससे पूछे यह उसे सूझ न पड़ा।

थोड़ी दूर पर एक छोटे महादेव के मन्दिर से आता हुआ घण्टा-

रव सुनाई दिया। यह सोचकर कि वहाँ कोई होगा, आम्रभट उस ओर गया।

मन्दिर की ओर जाने के लिए उसने पाँव बढ़ाया ही था कि ऐसे खड़ा हो गया मानो धरती से चिपक गया हो। मन्दिर के मध्यद्वार से एक स्त्री निकल रही थी।

आम्रभट की आँखें आश्चर्य से फट गईं। वह स्त्री नहीं कोई देवांगना थी। उम्र तीसेक वर्ष की होगी, नाग के फण के समान भव्य, केश से लेकर मृणाल के समान पाँव की उंगलियों तक सब कुछ आम्रभट को अपूर्व लग रहा था। प्रत्येक अंग में लालित्य, प्रत्येक रेखा में आकर्षण! उसकी आँखों में मेनका की उन्मत्तता थी और थी ऋषि-वरों के मन को हर लेने वाली मोहकता। बेचारे नवयुवक का उमंगों से भरा हृदय तो मूर्छित ही हो गया।

उषा के समान उज्वलता प्रसारती हुई वह आई। आम्रभट की आँखें चकाचौंध हो गईं। दो पैंड दूर ही वह खड़ी हो गई। उसकी आँखों में आश्चर्य झलक आया और उसने पूछा—

'किससे काम है?'

आम्रभट के कानों से गन्धर्वों की संगीत-लहरी टकराई। अपने आपको संभालने के लिए पीछे की दीवाल पर हाथ टेक दिया।

वह देखती रही और तनिक हँस दी। हास्य सुन कर युवक के निःस्पंद मस्तिष्क में चेतना लौटी।

'अ—साम्बा बृहस्पति का बाड़ा य—'

'हाँ' कहकर वह सुन्दरी पास ही के मकान में अदृष्ट हो गई।

आम्रभट को लगा मानो धरती पर प्रलयकाल का अंधकार छा गया हो। वह बन्द होते हुए द्वार के पीछे अन्तर्धान होती हुई मोहिनी की ओर एकटक निहारता रहा।

उसे अपने शरीर का भान न रहा। वह कहां था, किस काम से उधर आया था, किन-किन उद्देश्यों से भृगुकच्छ आया था—यह सब

भूल गया। उसे लगा कि उसका चित्त, उसका जीवन, उसकी आशाएँ तो उस द्वार के पीछे बंद होते जा रहे हैं।

'ए भाई—अरे—ए भाई—यहाँ किस काम से खड़े हो?' एक आवाज़ आई।

निकट के दूसरे घर में से एक विद्यार्थी जाम आचमनी लेकर निकला था। आम्रभट को लगा कि वह उसीसे कुछ पूछ रहा है।

बड़ी कठिनाई से आम्रभट ने अपने चित्त को स्थिर किया, कपाल पर से स्वेद-कण पोंछे और आंखों को लड़के पर टिका कर पूछा—

'क्या?'

'क्या, क्या? किससे काम है?'

अन्तिम प्रश्न जिस स्वर में किया गया था उसमें छिपी ललकार का ध्यान कर आम्रभट ने कहा—

'दुर्गपाल से।'

'अच्छा, दुर्गपाल महाराज से? वे तो उस ओर रहते हैं।'

'तो साम्या बृहस्पति का वाड़ा यह नहीं है?'

'यह पुराना वाड़ा है, महाराज नए वाड़े में रहते हैं। चलो, पथ दिखा दूं।'

आम्रभट के पांव नहीं उठे। बड़े परिश्रम से उसने पूछा—

'यह घर किसका है?' जिस घर में वह स्त्री गई थी उस ओर उंगली से उसने संकेत किया।

'यह तो पाठशाला है। क्यों?'

'कुछ नहीं, वैसे ही।'

: ३ :

भृगुकच्छ का दुर्गपाल

भौंचक्का होकर आम्रभट विद्यार्थी के पीछे-पीछे चल रहा था। थोड़ा ही चलना पड़ा होगा कि साम्बा बृहस्पति का नया वाड़ा आ गया। घर छोटे होते हुए भी नए थे। वेदध्वनि के स्थान पर अश्वों की हिनहिनाहट और पागुर करती गौओं के स्थान पर त्वरित गति से चलते-फिरते राज-पुरुषों की पदध्वनि सुनाई दे रही थी।

'भटजी! उस द्वार में से होकर जाओ। महाराज वहीं मिलेंगे,' कहकर विद्यार्थी अपने मार्ग चल दिया।

आम्रभट में उस ओर बढ़ने का उत्साह न रहा; वह तो लौटकर हृदय को हर ले जानेवाली सुन्दरी की खोज करना चाहता था। राज्य-प्रपंच उसे नीरस लगने लगा; सत्ता और संपत्ति का भोग क्षुद्र लगने लगा; उसका जीवन-सर्वस्व तो दो जादू-भरे नैनों के ध्यान में समाया हुआ था।

वह वहाँ कितनी देर खड़ा रहा इसका उसे स्मरण न रहा; एक सुभट ने आकर जब प्रश्न किया तो उसका ध्यान भंग हुआ।

'भटजी, यहाँ कैसे खड़े हो?'

'मुझे—मुझे—दुर्गपाल महाराज से मिलना है।'

'तो अंदर वाड़े में चलिए न।'

वह सुभट उसे अंदर लेगया। द्वार के अंदर चारों ओर लिपा-पुता एक चबूतरा था। जिस पर इक्के-दुक्के व्यक्ति बैठे हुए बातें कर रहे थे। उनमें से अधिकतर सैनिक थे।

'वह सैनिक आम्रभट को एक अधेड़ उम्र के सुभट के निकट ले गया।

'रुद्रमल्ल जी! महाराज क्या कर रहे हैं?'

'सोमनाथ पाटण से एक ब्राह्मण आए हैं उन्हींके साथ वार्तालाप कर रहे हैं।

सोमनाथ पाटण से आए हुए ब्राह्मण की बात सुनकर आम्रभट के कान खड़े होगए। क्षणभर के बाद उसके शून्य मन में स्थिरता आई।

'ये भटजी कौन हैं?' रुद्रमल्ल ने नमस्कार करते हुए पूछा।

'मुझे दुर्गपाल महाराज से मिलना है।'

'कहाँ से आए हैं?'

'वंथली से, महाराज की आज्ञा से आया हूँ।'

'महाराज पधार गए?'

'हाँ! महाराज, मीनलदेवी सभी आगए हैं।'

'आपका नाम?'

'आम्रभट। दुर्गपाल महाराज से कहिए कि उदा महेता के पुत्र महाराज का संदेशा लेकर आए हैं।'

'उदा महेता—मंत्री महाराज?' शंकित होकर रुद्रमल्ल ने पूछा किन्तु आम्रभट का रूप संस्कारी व्यक्तित्व और आभूषणों का ठाठ देखकर उसे विश्वास होगया और सम्मान से बोला—

'पधारिए, पधारिए। लेकिन इस प्रकार अकेले? कब पधारे?'

'मैं सीधा बंदर पर से चला आरहा हूं। मेरे गण नगरसेठ के यहाँ चले गए हैं।'

'आइए, विराजिए। भटराज को मैं अभी सूचित करता हूं। एक क्षण भी न लगेगा।'

'कोई बात नहीं।'

आम्रभट निकट पड़े तकिए का सहारा लेकर बैठ गया। रुद्रमल्ल शीघ्रता से अंदर चला गया।

इसके पहले कि आम्रभट का चित्त फिर जाकर उस सुंदरी में अटक जाय रुद्रमल्ल आगया।

राज्य-प्रपंच के अर्थहीन जीवन पर एक निःश्वास लेकर आम्रभट उठ खड़ा हुआ। अंदर जाने से पहले उसने अपने मन को स्वस्थ और सावधान किया। भृगुकच्छ के इस दुर्गपाल के शौर्य के विषय में उसने नाना कथाएं बड़े-बड़े योद्धाओं के मुंह से सुनी थीं। उसकी चतुराई के विषय में उसके पिता जैसे मुतसद्दी मंत्री ने भी उसे बार-बार सावधान किया था। सम्पूर्ण देश में जिसका डंका बज रहा हो ऐसे महापुरुष मुंजाल महामंत्री को भी इसकी खुले मुंह प्रशंसा करते हुए उसने सुना था; और त्रिभुवन को भी वश में करनेवाले महाराज स्वयं जयसिंहदेव को इस का नाम तनिक डर से लेते हुए सुना था।

ऐसे पुरुष से एक अनुभवहीन नवयुवक भेंट करने जा रहा था और वह भी ऐसे काम से जिसके लिए बड़े-बड़े महारथी इसके निकट आते काँपते थे। बड़ी कठिनाई से उसने क्षोभ को दबाया। उदा महेता का पुत्र होने के कारण महापुरुषों से भेंट करना साधारण बात थी अतः वह अपना क्षोभ दबाने में तुरंत सफल होगया।

जिस कमरे में उसने प्रवेश किया उसमें प्रकाश क्षीण था। इसके पहले कि उसकी आँखें उस प्रकाश में देखने की अभ्यस्त हो जायँ हिंडोल पर बैठा हुआ एक व्यक्ति बड़े स्नेह से आगे बढ़ आया और उसके दोनों हाथ पकड़ लिए।

'कौन उदा महेता के आँबड़।'

आम्रभट इन शब्दों के बोलनेवाले को ठीक से देख भी न पाया था कि उसकी दृष्टि कमरे के द्वार की ओर गई। अंदर जाती हुई एक स्त्री की एड़ी और उसपर झूलता लुगड़े का पिछला भाग दिखाई दे गया। निमिष मात्र के लिए वही अपरिचित सुंदरी उसकी आँखों के सामने आगई। तत्पश्चात्, होठ काट कर वह अपना स्वागत करनेवाले की ओर आमुख हुआ।

लंबा, स्नायुबद्ध, गौरवर्ण शरीर, कंधे पर सूखने के लिए खुले हुए केशों में मढ़ा हुआ गौरवशाली मुख; छोटी, काली मूंछें; गरुड़राज के

समान तीखी नाक, चमकती हुई चंचल आँखें; ये सभी विशेषताएं उस ने क्षण भरमें देख लीं। एक बात से उसे बड़ा आश्चर्य हुआ—स्नेहमय स्वागत में छिपा हुआ उत्साह।

'गुजरात का नाथ' के पाठक को आश्चर्य न होगा। आज पंद्रह वर्ष पश्चात् भी काक पहले के ही समान सरल, सशक्त और सुगठित था। उसके मुख पर कुछ मांस भर अधिक चढ़ आया था और अधेड़ उम्र की रेखाएं अवश्य स्पष्ट हो उठी थीं।

'भटराज—'

'आँबड़' काक ने कहा। 'मेरे मित्र का पुत्र आज मेरे घर आया है। आओ बेटा' कहकर काक ने आम्रभट का आलिंगन किया।

'कौन आँबड़ भाई!' एक कोने में से आवाज़ आई। काक के बाहु-पाश से छूटकर देखा तो एक कोने में मणिभद्र जी मुंह फाड़कर हँसते हुए दिखाई दिए।

आम्रभट चकित होगया। 'अरे ब्राह्मण देवता आप यहां?'

'मैंने क्या कहा था? यही मेरी बहन का घर है।'

'आम्रभट ने काक की ओर देखा; वह इस विचार में पड़ गया कि किस प्रकार इस आबनूस-से ब्राह्मण की बहन इस तेजस्वी योद्धा के घर की शोभा बढ़ाती होगी? और एक घड़ी देखकर ही उस सुंदरी का स्मरण हो आया। वह मन-ही-मन हँस दिया।

काक ने तीक्ष्णता से दोनों की ओर देखा।

'तुम एक ही पोत से आए हो?'

'हाँ' आम्रभट ने कहा।

'अच्छा, मणिभद्र जी! आप नहा-धोकर निपट लीजिए तब तक मैं आँबड़ के साथ बातें कर लूं। आओ आँबड़!' कहकर काक ने आम्रभट का हाथ पकड़ कर अपने पास हिंडोले पर बिठा लिया। मणिभद्र और रुद्रमल्ल दोनों वहाँ से चले गए।

'कहो, तुम्हारे पिता जी वंथली आगए?'

'हाँ!' आम्रभट के मुँह से असावधानी से निकल गया। बात कहने की नहीं थी।

'महाराज और मीनलदेवी वथली कब आए ?'

'मेरे प्रस्थान करने के चार-पाँच दिन पहले।'

'सब कुशल है न ?'

'हाँ, महाराज ने यह पत्र दिया है।' कमरबंध खोलकर आम्रभट ने एक पत्र निकाला और काक को दे दिया।

काक ने पत्र खोल कर पढ़ा—

'भृगुकच्छ के दुर्गपाल भटराज काक को वामनस्थली से समस्त राजावलिविराजित बर्बरक विजेता परम भट्टारक महाराजाधिराज जयसिंह देव वर्मा की आज्ञा है कि जूनागढ़ के घेरे में भाग लेने के लिए पत्र पढ़ते ही भृगुकच्छ पत्रवाहक आम्रभट को सौंप कर यहां चले आओ—विक्रम संवत् ११६६।

हस्ते महेता शोभ।'

पत्र पढ़ लेने के पश्चात् काक क्षण-भर तक उसकी ओर देखता रहा।

आज पन्द्रह वर्ष हुए जयसिंहदेव उससे अप्रसन्न थे। इसलिए एकाएक उसकी सहायता माँगने में उसे कुछ रहस्य दिखाई दिया।

'मुझे बुला भेजने का कारण ?'

'महाराज अब अत्यंत अधीर हो गए हैं। कर्णावती से दादाक महेता को और आपको बुलाया है। पिताजी को भी बुलाया है।'

'पन्द्रह वर्ष पहले यह सब क्यों न किया ?'

'उसमें एक बात थी।'

'क्या ?'

'पिछले समय रा' खेंगार ने जब वंथली से परशुराम भटराज को निकाल बाहर किया था तो महाराज अत्यंत क्रोधित होगए थे और खेंगार को क्षमा माँगने के लिए कहा था।'

'मुझे जिस समय बुलाया उस समय बड़ी चिन्तातुर दिखाई दे रही थीं।'

लीलादेवी लाट के सोलंकियों की एकमात्र उत्तराधिकारिणी थी और लाट को गुजरात में सम्मिलित करने के उद्देश्य से ही काक ने उसका ब्याह जयसिंहदेव महाराज के साथ करवा दिया था।

'मालूम होता है मेरा भाव बढ़ रहा है।'

'क्यों न हो ?' कहकर आम्रभट काक की ओर सम्मान से देखने लगा।

तलवार की धार-सी तीक्ष्ण दृष्टि से काक ने आम्रभट को देखा, किन्तु वाक्य निष्कपट भाव से कहा गया था यह समझकर वह हँस पड़ा।

'तुम्हारा सामान कहाँ है ?'

'मैंने अपने गणों को नगरसेठ के यहाँ भेज दिया है।'

'हाँ ठीक तो है। तुम तो उनके जामाई बनने वाले हो न ! जाओ मैं भी प्रस्थान की तैयारी करता हूँ। रुद्रमल्ल ! आँबड़ महेता के लिए पालकी मँगवाओ।'

काक उठ खड़ा हुआ; आम्रभट ने विदा ली।

थोड़ी देर तक काक वहाँ खड़ा रहा और शिकारी के चौकन्नेपन से बात के रहस्य पर विचार करता रहा—'इसमें तो भाई उदा का कुछ हाथ दिखाई देता है।'

गंभीर विचार में मग्न भृगुकच्छ का दुर्गपाल धीरे-धीरे अन्दर चला गया।

इसी प्रकार कई वर्ष बीत गए। भृगुकच्छ में रहनेवाली मंजरी से भेंट कर मोक्ष प्राप्त करे या ब्रह्मभोजों का विलास भोगे—इसी दुविधा में यह ब्राह्मण मुमुक्षु आत्माओं की भांति धीरे-धीरे विलास की ओर झुक गया।

पन्द्रह वर्ष पश्चात् एक दिन जूनागढ़ के खेंगार की रानी ने उसे भृगुकच्छ जाने की आज्ञा दी। जिस प्रकार ध्रुव को सौतेली मां के शब्द सुनकर ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग मिला था उसी प्रकार इस आज्ञा से मणिभद्र को मोक्ष का मार्ग मिल गया। वह आनन्द से नाच उठा। वह जूनागढ़ से प्रस्थान करने के लिए आतुर हो उठा और उसने अपने विपुलाकार शरीर को शोभा न दे वैसी गति से रानी की आज्ञा को सिर-आंखों पर चढ़ाया।

मणिभद्र मंजरी से भेंट करने अन्दर गया। अंदर के कमरे में केवल एक छोटी बालिका झोली हिला रही थी। मणिभद्र ने इस बालिका को पहले कभी न देखा था फिर भी उसे पहचान लिया और हर्षातिरेक से उसे निहारता रहा।

प्रायः सातेक वर्ष की इस बालिका की रेखाओं में उसे अपने अंतर में रमी गुरु की नातिन की रेखाएं दिखाई पड़ीं। वही नाक, वही आंखें, रङ्ग-भर कुछ अधिक साँवला था। मणिभद्र को लगा मानो पुष्प पुनः कलिका बन गया है।

'बेटी! तुम्हारी मां कहाँ है?'

'कौन?' बालिका ने चमककर ऊपर देखा।

'मैं! मैं तेरा मामा।'

मणिभद्र हँस दिया और अपने आकार से घबराती हुई बालिका को हृदय से लगा लिया।

'अरे, भाई जग जायगा तो?' बालिका ने घबराकर कहा।

'अच्छा, यह तेरा भाई है' मणिभद्र ने बालिका को छोड़कर झोली में सोये हुए शिशु को उठा लिया।

'आओ राजा बेटा ! बेटी, इसका नाम क्या है ?'

'हमने तो इसका नाम वोसरि रखा है।' आंधी के समान चंचल और भौंरे के समान काले मामा से डरकर पीछे हटती हुई बालिका ने कहा।

'वो—वो—आ—स—रि—' इस विचित्र नाम को मस्तिष्क में जमाने का प्रयत्न करता हुआ मणिभद्र धीरे-से बोला।

किन्तु इस नाम को धारण करने वाले में उसकी बहन जितना धीरज न था। आधी आंखें खोलकर उसने इस नए मामा को देखा और उसमें परिचय का कोई चिह्न न पाकर ऊँची आवाज में रो पड़ा 'ऊंआ—आ—आ।'

उन्मुक्त हास्य से वातावरण में आनन्द भरकर अपने ही हाथ की झोली बना मणिभद्र बोलने लगा—'उलूलू—लू—भाई रे—'

इस वार्तालाप के आगे बढ़ने से पहले ही अन्दर से आवाज़ आई—'महाश्वेता, क्या हुआ ?'

मणिभद्र घूमा और पन्द्रह वर्ष पश्चात् मंजरी को देखा। 'बहन ! बहन !'

मंजरी पहले के ही समान तेजस्वी और सुन्दर थी। पन्द्रह वर्षों के प्रताप से उसकी रेखाएँ भर आई थीं, उसके मुख का सौंदर्य पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान सम्पूर्ण हो चुका था, और उसके गर्व-भरे नैनों से अमृत की वर्षा हो रही थी।

वह-मणिभद्र को देखकर विस्मित हो गई किन्तु उसके घूमने पर वह उसे पहचान गई।

'कौन ? भाई मणिभद्रजी ?'

'हां, मैं ही, मैं ही, बहन, मैं ही।' कह जल्दी से मणिभद्र ने बच्चे को मंजरी के हाथों में दे दिया।

'भाई, बैठो।' मंजरी पाट बिछाने लगी किन्तु मणिभद्रजी मान के भूखे न थे।

'अरी बहन, रहने भी दे। हम तो यह बैठे।' मणिभद्रजी पांव-पर-पांव चढ़ाकर बैठ गए।

'आओ बेटा, मेरे पास !'

वह बालिका तो अब भी मंजरी की साड़ी के पीछे छिपी आश्चर्य में भरकर इस नवागन्तुक को देख रही थी।

'वह तो नहीं आयगा। कुशल तो है? और सब लोग अच्छे तो हैं?'

'आनन्द कैसा? हर भोलानाथ! जूनागढ़ पर तो यमराज की छाया पड़ रही है, देवी!' मणिभद्र ने दुखित होकर गर्दन हिलाते हुए कहा 'खेंगार महाराज को चारों ओर से घेर रखा है। जो भोलानाथ करें वही सही।'

'तो फिर यहीं चले आवे न—'

'बहन! मन तो प्रतिदिन यही कहता था, लेकिन क्या करूं? यजमानवृत्ति ही तो ठहरी; और युद्ध के कारण 'बारमा' और श्राद्ध का भी कोई पार नहीं। तो ये भटजी आगए—'

'क्यों, मणिभद्रजी! भेंट करली बहन से?' काक ने पूछा।

'हाँ।' कहकर मणिभद्र ने कानटोपी उतार कर नीचे रख दी।

'मंजरी, मुझे जाना होगा।'

'कहाँ?'

'वंथली।'

'क्यों?'

काक ने चुपचाप उसे महाराज का आज्ञापत्र दे दिया। मंजरी ने उसे पढ़कर लौटा दिया। पागल की भाँति मणिभद्र काक ने मंजरी और मंजरी से काक की ओर देखने लगा और बड़ी शीघ्रता से प्रश्न किया—

'आप वंथली जा रहे हैं?'

तनिक कठोर होकर काक ने इस छिछोरे ब्राह्मण की ओर देखा। दूसरों की बात में माथा मारनेकी मणिभद्र की आदत उसे अच्छी न लगी।

'क्यों ?'

'सब तो हो चुका ?'

'क्या हो चुका ?'

'मैं भी बुलाने के लिए ही आया हूँ ।' मणिभद्र ने कहा। एकाएक उसे कुछ ध्यान आया और वह भय से चारों ओर देखने लगा।

'यहाँ कोई नहीं सुनेगा, किसने भेजा है तुम्हें ?'

'राणकदेवी ने।' धीमे से मणिभद्र ने कहा।

'राण—' चकित होकर काक बोलते-बोलते रुक गया। 'क्या, क्या ?'

'आपको उन्होंने जूनागढ़ बुलाया है।'

घबराकर काक पीछे हटा—'हैं ?'

'हाँ, सब कुछ सुनाता हूँ।'

काक ने आँखों-ही-आँखों में स्वीकृति दी।

'मुझे देवी ने बुलवा भेजा—चुपचाप। जप करने के पश्चात् मैं ब्रह्म-भोज का न्यौता होते हुए भी महल में गया; महाराज और देवी किसी बात पर झगड़ रहे थे। महाराज की आँखें लाल हो रही थीं और देवी की आँखें सजल थीं। हर भोलानाथ ! मैं तो ऐसा घबराया—और भंग भी तो नहीं पी थी।'

'अच्छा, फिर ?' काक ने अधीरता से कहा।

'महाराज क्रोधित होकर चले गए और परिचारिका मुझे अंदर ले गई। मैं तो थरथर काँप रहा था। हर भोलानाथ ! मुझे देवी ने पूछा—'तुम्हारा ही नाम मणिभद्र शुक्ल है न ?' मैंने उत्तर दिया—'हाँ।' 'जटानाथ आचार्य के शिष्य हो न ?' देवी ने प्रश्न किया। 'हाँ, देवी।' मैंने उत्तर दिया। 'उनकी नातिन के पति से परिचित हो ?' उन्होंने पूछा। मुझे हँसी आ गई। हर भोलानाथ ! मैं और आपको न पहचानूँ भला !'

'फिर ?' काक ने बात आगे बढ़ाने का संकेत किया।

'मैंने 'हाँ' कहा। देवी ने कहा—'महाराज—' मुझे और 'महाराज !—'महाराज ! तुम चुपचाप उनके पास जा सकोगे ?' मैं तो भाई घबरा गया। हर भोलानाथ ! जूनागढ़ का ब्राह्मण भृगुकच्छ कैसे जाय ? 'शुकल जी ! इतना-सा काम करदो। यदि मैं सोरठ की रानी रही तो जन्म-भर तुम्हारा यह उपकार न भूलूंगी।' ऐसा कहते-कहते देवी की आँखों में आँसू झरने लगे। हर भोलानाथ ! मुझे भी रुलाई आ गई। मैंने कहा—'मेरे प्राण तक अर्पित हैं।' हर भोलानाथ ! इतना कह भोले ब्राह्मण ने अपनी आँखों से आँसू पोंछकर काक की ओर देखा। काक की आँखें स्थिर थीं। आँख की पलक ही से उसने मणिभद्र की बात पूरी करने को कहा। मंजरी की आँखें भी गीली हो गईं। गला साफ़ कर मणिभद्र ने फिर कहना आरंभ किया—

'देवी ने कहा—'शुकल जी ! शीघ्र ही प्रभास होकर भृगकच्छ जाओ। वहाँ जाकर काकभट से मिलकर एकान्त में कहना।'

'क्या ?'

'देवी ने मेरे साथ यह संदेशा भेजा है,—'काकभट जी ! तुमने मुझे अपनी बहन बनाया था। एक समय तुमने मेरी और अनेक बार मेरे 'रा' की भी लाज रखी थी। आज तुम्हारे सिवा मेरा और कोई सहारा नहीं है अतः जहाँ भी हो शीघ्र मेरे पास चले आओ।' इसके बाद देवी ने मेरे साथ एक सामंत कर दिया। वह मुझे प्रभास तक छोड़ गया और फिर मैं यहां तक आया। हर भोलानाथ !'

मंजरी ने काक की ओर देखा। काक विचार-मग्न था। दोनों में से कोई कुछ बोला नहीं। मणिभद्र समझ गया कि यहाँ से अब उसका जाना ही उचित है अतः वह उठ खड़ा हुआ।

'और कुछ ?' काक ने पूछा।

'और हाँ—'

'क्या ?'

'और देवी ने कहा था—'मैं रा'ख से द्रोह नहीं करना चाहती।'

'मैं देवी से किस प्रकार भेंट कर सकता हूँ ?'

'प्रभास के निकट चोखाए है न ?'

'हाँ।'

'वहां मोती अहीर रहता है। उससे कहना कि मैं मणिभद्र शुकल का आदमी हूँ, वह सब प्रबन्ध कर देगा।'

'अच्छी बात है। तुम इस बाड़े में जाओ, उधर आदमी हैं। स्नान-संध्या से निपट लो।'

इतना कहकर काक ने मणिभद्र को विदा किया।

: ५ :

मंजरी की महत्वाकांक्षा

मणिभद्र के जाने के बाद मंजरी ने वौसरि को महाश्वेता को देकर उसे बाहर भेज दिया और स्वयं काक के पास आकर उसके बोलने की राह देखती हुई खड़ी हो गई।

'मंजरी! दाल में कुछ काला अवश्य है।'

'मुझे भी ऐसा ही लगता है।'

'नहीं तो एक ही साथ तीनों को काक की याद न आती।'

'तीसरा कौन ?'

'लीलादेवी।'

मंजरी हँस पड़ी। उसने विनोद में काक के सामने आँखें नचा कर कहा—'अच्छा, उन्होंने भी बुलावा भेजा है ?'

काक भी हँस दिया। 'हाँ, आम्रभट संदेशा लाया है। तुझे लीलादेवी से ईर्ष्या होती है क्या ?'

'मुझे ? किसलिए ? ईर्ष्या करना है तो लीलादेवी करे कि उसे काक न मिला।' गर्व से मंजरी ने कहा।

'शी—शी—' काक ने नाक पर उंगली रखते हुए कहा—'इस तरह पागलों की-सी बात न कर। कोई सुन लेगा। इन्होंने भी मुझे इसी समय बुलाया है इसमें कोई रहस्य अवश्य है।' काक ने गंभीर होकर कहा।

'क्या हो सकता है?'

'यही तो समझ नहीं पड़ रहा है। दूसरी बातें तो कुछ-कुछ समझ में आती हैं।'

'वे क्या?'

'जयसिंहदेव महाराज को जूनागढ़ जीतना है इसलिए काक की आवश्यकता आ पड़ी; और उदा मेहता को भृगुकच्छ चाहिए इसलिए मुझे यहां से हटाना है।'

'उदा—' चमककर मंजरी ने पूछा। पहले उदा द्वारा दिये गए दुःखों की याद से उसका भाल सिकुड़ गया।

'हाँ, तभी उसके लड़के आम्रभट के साथ यह आज्ञा-पत्र भेजा है। मेरे स्थान पर वही दुर्गपाल बनेगा।'

'हैं!' मंजरी का मुख फीका पड़ने लगा और उसकी वाणी काँपने लगी।

'चिन्ता की कोई बात नहीं। ये लड़का तो बेचारा बच्चा है—चुटकी में पिस जाय ऐसा! भृगुकच्छ में उससे कुछ होना-जाना नहीं है।'

'और वहाँ तुमको—'

'मुझे क्या हो सकता है?' गर्व से काक हँस दिया। 'मेरी उपयोगिता सभी जानते हैं। और फिर मीनलदेवी और त्रिभुवनपाल महाराज के रहते कोई मेरा बाल भी बाँका नहीं कर सकता। और फिर इतने वर्षों में क्या मैं निर्बल हो गया हूँ? इन हाथों ने कितनों के छक्के छुड़ा दिए थे, यह क्या भूल गई?' कहकर काक ने मंजरी के गाल पर टकोर की। मंजरी ने उसका हाथ लेकर दबा दिया; कुछ देर तक दोनों नहीं बोले;

केवल दोनों के हृदयों में आपस में संवाद चलता रहा।

'और ये तीसरा बुला—'

'यही सबसे अधिक पेच में डालता है। राणकदेवी को मेरी सहायता की क्या आवश्यकता आ पड़ी यही नहीं समझ में आता। मेरी स्थिति तनिक बेढंगी हो जायगी।'

'लेकिन उससे भेंट बिना कोई चारा है?'

'भेंट अवश्य करनी पड़ेगी। फिर जो होगा देखा जायगा। अब तू मेरे प्रस्थान की तैयारी कर अन्य बातें ठीक करलूँ।'

मंजरी ने स्नेह से काक के हाथ पर हाथ रख दिया और उसकी ओर देखने लगी।

'क्यों, मेरा जाना भला नहीं लगता? घबराती है?'

'बिलकुल नहीं,' मंजरी ने कहा। 'मेरे कैलाश जैसे दुर्धर्ष और कालाग्नि के समान दुःसह पति को हो ही क्या सकता है? किसमें इतना साहस है कि वह मंजरी की ओर उंगली भी उठा सके? प्रसन्न होकर जाओ, मैं तो यही मनाती रहती हूँ कि तुम दंडनाक बन जाओ।'

'इस जीवन में तो दंडनायक बनने का नहीं।'

'यह कैसे जाना?'

'मुझसे जयदेव महाराज डरते हैं और पाटण के मंत्रीगण घबराते हैं।'

'अच्छा, देखना।' हँसकर मंजरी ने कहा। 'एक स्त्री ने तुम्हें लाट के सिंहासन पर आरूढ होने के लिए निमंत्रित किया था। तुमने उसे अस्वीकार कर मुझे पसंद कर लिया। तो मुझे तुमको दंडनायक तो बनाना ही चाहिए।' मंजरी की आँखें एक साथ गर्व और प्रशंसा से चमक उठीं।

'और न बन पाया तो?' हंसकर काक ने पूछा।

'तो समझ लेना कि पाटण में मुतसद्दीपन रहा ही नहीं।'

'किन्तु तेरे प्रण का क्या होगा?'

केवल दोनों के हृदयों में आपस में संवाद चलता रहा।

'और ये तीसरा बुला—'

'यही सबसे अधिक पेच में डालता है। राणकदेवी को मेरी सहायता की क्या आवश्यकता आ पड़ी यही नहीं समझ में आता। मेरी स्थिति तनिक बेढंगी हो जायगी।'

'लेकिन उससे भेंट बिना कोई चारा है ?'

'भेंट अवश्य करनी पड़ेगी। फिर जो होगा देखा जायगा। अब तू मेरे प्रस्थान की तैयारी कर अन्य बातें ठीक करलूँ।'

मंजरी ने स्नेह से काक के हाथ पर हाथ रख दिया और उसकी ओर देखने लगी।

'क्यों, मेरा जाना भला नहीं लगता ? घबराती है ?'

'बिलकुल नहीं,' मंजरी ने कहा। 'मेरे लाट जैसे दुर्धर्ष और कालाग्नि के समान दुःसह पति को हो ही क्या सकता है ? किसमें इतना साहस है कि वह मंजरी की ओर उंगली भी उठा सके ? प्रसन्न होकर जाओ, मैं तो यही मनाती रहती हूँ कि तुम दंडनायक बन जाओ।'

'इस जीवन में तो दंडनायक बनने का नहीं।'

'यह कैसे जाना ?'

'मुझसे जयदेव महाराज डरते हैं और पाटण के मंत्रीगण घबराते हैं।'

'अच्छा, देखना।' हँसकर मंजरी ने कहा। 'एक स्त्री ने तुम्हें लाट के सिंहासन पर आरूढ़ होने के लिए निमंत्रित किया था। तुमने उसे अस्वीकार कर मुझे पसंद कर लिया। तो मुझे तुमको दंडनायक तो बनाना ही चाहिए।' मंजरी की आँखें एक साथ गर्व और प्रशंसा से चमक उठीं।

'और न बन पाया तो ?' हंसकर काक ने पूछा।

'तो समझ लेना कि पाटण में मुतसद्दीपन रहा ही नहीं।'

'किन्तु तेरे प्रण का क्या होगा ?'

किन्तु कठिन भी बहुत होगा ! वह, एकाएक महत्वशाली पुरुष हो गया था, नगरसेठ की पुत्री के साथ उसका सम्बन्ध भी हो चुका था, किन्तु भृगुकच्छ से अच्छी तरह परिचित कोई विश्वासपात्र मनुष्य उसके पास न होने के कारण यह काम बहुत ही कठिन दिखाई पड़ा।

तकिये पर सिर रख, आंखें बन्दकर वह उस रमणी के अङ्ग-लालित्य को अपनी आंखों के सन्मुख लाने की चेष्टा करने लगा। होठों में कैसा आकर्षक माधुर्य, नाक की कैसी मदभरी बनावट, आंखों में कैसी हृदयभेदक मोहिनी ! आधी दीख पड़ती स्तनों की अपूर्व रेखाएं, पांव तक की रेखाओं में निराली भव्यता—इन सब विशेषताओं का उसने आजन्म विलासी की बारीकी से विश्लेषण किया। वह विक्षिप्त-सा हो गया।

जन्म से कभी किसी ने उसका अनादर न किया था, जो मांगता वही वस्तु तुरन्त उसे मिलती थी। उदा महता की सम्पत्ति और सत्ता दिन-दिन इस प्रकार बढ़ रही थीं कि किसकी मजाल जो पाटण में उसे कोई भी ना कर सके,तो यह तो विजित देश की छोटे गांव-सी राजधानी थी और वह स्वयं उसका दुर्गपाल। और क्या चाहिए ?

वह स्त्री विवाहिता अवश्य थी, तो हो ! उसके बिना वह जीवित नहीं रह सकता अतः उसे खोजना तो पड़ेगा ही। वेश और स्थल से ब्राह्मणी लग रही थी। किस वेदपाठी के भाग्य से इस अप्सरा का निर्माण हुआ होगा ? जो भी हो—किन्तु कौन ऐसा है जो दान और मोदक को देख न ललचा उठे ? ब्राह्मणों के प्रति उसका तिरस्कार श्रावक श्रेष्ठ के पुत्र के योग्य ही था। इन सब विचारों में मग्न होते हुए भी शहर का व्यापार उसकी दृष्टि से न बच पाया। भृगुकच्छ में घर छोटे और मार्ग संकरे थे। मंदिर बहुत और जीर्णावस्था में थे। उनमें न पाटण के मन्दिरों का ठाठ था न मोढेरा के मन्दिरों की भव्यता। फिर भी गुजरात के सभी नगरों से लाट की इस राजधानी

में एक विशेषता थी। मालूम होता था सम्पूर्ण ग्राम छोटी-छोटी दूक का बना हुआ है।

प्रत्येक चौक में व्यापारियों की बस्ती ही अधिक थी, गुमाश्ते में कलम खोंसे, कन्धे पर पैसों की थैली लिये इधर-उधर दौड़-धूप रहे थे, और माल से भरी गाड़ियों की शृङ्खला चली जा रही थी। प्रकार का जीवन कुछ अंशों में खंभात में भी था किन्तु इस नगर रेल-पेल के सामने तो खंभात कहीं ठहरता न था। इसी क आम्रभट की पालकी उठाने वाले वेग से न चल पा रहे थे, कहीं- तो उन्हें रुक जाना पड़ता था। इससे आम्रभट की विचार-शृ बार-बार टूट पड़ती थी और उसका जी तिलमिला उठता था।

आम्रभट को इस नगर में कई बातें बड़ी विचित्र लगीं। उ जैसा महत्त्वशाली व्यक्ति पालकी में बैठकर चला जा रहा था, किसी को उसकी ओर ध्यान देने का भी अवकाश न था, नम करने की बात तो अलग रही। लोग कितने विनयहीन थे कि काम को छोड़कर किसी दूसरी वस्तु की ओर ध्यान तक न सकते थे।

उसे विचार आया कि खंभात में पैसा इतना है कि समाता फिर भी उससे तिगुने बड़े इस बन्दरगाह में क्यों कुछ दिखाई पड़ता? कहाँ उसके पिता की दूकान का वैभव और कहां भृगुकच्छ पट्टणी चौक की दूकानें! उसके पिता की बात अब उसकी सम आई। उसके पिता ने खंभात बंदर पर अधिकार करके अतुलित स एकत्रित की थी और अब उसे इस नए देश पर अधिकार करने के भेजा था। आम्रभट मन-ही-मन हंस दिया, वह भी अपने पि समान समृद्ध और सत्तावान् हो जायगा।

ऐसे हवाई किले बनाता हुआ आम्रभट तेजपाल नगरसेठ के जा पहुँचा। सेठ बाहर गये हुए थे अतः उनका पुत्र रेवापाल स्वागत करने के लिए खड़ा हुआ था।

रेवापाल बीसेक वर्ष का था—सुन्दर, ठिगना, सशक्त। उसके मुख पर भरे हुए घावों के चिह्न थे। उसके पंजे बता रहे थे कि उनमें शस्त्र चलाने की शक्ति है। उसकी आंखें निश्चल और उसका मुख गम्भीर था। उसे देखते ही सभी का उन्माद ठण्डा पड़ जाता था।

आम्रभट के पालकी से उतरने पर रेवापाल ने उसका स्वागत किया।

'पधारिए आंबड़ सेठ! पिताजी अभी-अभी बाहर गये हैं।' उसकी आंखों में न स्नेह था न आदर, उसकी वाणी में हर्ष की लहरें न थीं। ऐसा लग रहा था मानो और कोई चारा न होने के कारण ही उसको यह करना पड़ रहा।

उमंगी आम्रभट तो इस होने वाले साले का व्यवहार देखकर ही ठण्डा पड़ गया।

'मेरे गण आगए?' उसने बड़े संकोच से हँसकर पूछा।

'हां।' गम्भीर होकर रेवापाल ने उत्तर दिया।

'आप कुशल तो हैं?'

'हां,' कहकर एक शब्द भी अधिक कहे बिना वह आगे हो गया, आम्रभट उसके पीछे-पीछे चलने लगा। वह इस गांभीर्य और निःशब्द तिरस्कार का कारण इसलिए नहीं समझ पाया कि वह रेवापाल के जीवन से पूर्णतः परिचित न था।

रेवापाल लाट की नष्ट हुई सत्ता और स्वतंत्रता का भक्त था, उनके नष्ट होते ही वह जीते-जी मुर्दा-सा हो गया था।

चतुर था। उसे विश्वास था कि ध्रुवसेन युद्ध में कभी
फिर भी पाटण की सेना के आगे उसकी एक न चलेगी। मुञ्जाल मंत्री-
राज की पुत्री मृणालकुंवर को ध्रुवसेन अपने साथ रखता था।
यह लाट को अपनी हानि हुई तथा और स्वतंत्रता की हानि भारी
लगती थी, इसीलिए अंतिम घड़ी तक हुई ऐसा आपत्ति मालूम न होती
थी। फिर भी विजय की उसे कोई आशा न थी। इस कठिनाई में काक
को एक बात सूझी। यदि त्रिभुवनपाल अपनी मृणालकुंवर से विवाह
कर लेते हैं तो वे स्वयं लाट के स्वतंत्र राजा बन जायेंगे, लाट की स्वतन्त्रता
बाँध नहीं सकेगी, ध्रुवसेन की प्रतिष्ठा बनी रहेगी और पाटण की बड़ाई
भी जाती रहेगी, किंतु यह असंभव था। त्रिभुवनपाल आजीवन दूसरा
ब्याह करना ही नहीं चाहते थे, और यदि वे स्वीकार कर भी लेते तो
उनकी पत्नी काश्मीरा देवी ऐसा कभी न होने देती। यदि यह भी हो
जाता तो त्रिभुवनपाल में इतनी शक्ति न थी कि वह लाट की स्वतंत्रता
के झंडे को उठाए रख सके। अगर वह ऐसा करने का प्रयत्न भी करता
तो मुंजाल महेता कभी उसे सफल न होने देते। वास्तविकता जानने
के लिए काक ने पाटण जाने का काम अपने सिर लिया।

जब उसे विश्वास हो गया कि एक-न-एक दिन लाट को गुजरात
की सत्ता माननी ही होगी तभी उसके चतुर मस्तिष्क में यह बात आ
गई कि लाट जितनी शीघ्र गुजरात में सम्मिलित हो जाय उतना अच्छा।
वह अपनी सहज बुद्धि के द्वारा ध्रुवसेन की सत्ता को नष्ट करने के
प्रयत्न करने लगा।

लाट के पौने भाग के लोगों ने पाटण की सत्ता स्वीकार कर ली
थी। ध्रुवसेन की सेना पाटण की सेना के दशांश के बराबर थी और
वह भी दिन-दिन घटती जा रही थी। लाट का सम्पत्तिशाली वर्ग युद्ध
से ऊबकर उदय होते हुए सूर्य के ताप में आनंद कर रहा था। ध्रुवसेन
ने परिश्रम करने में कुछ भी उठा न रखा। अपनी भव्य दाढ़ी के कुछ
बालों को दाँतों के बीच में दबाकर वह ध्रुव की भाँति अटल खड़

रहा। उसकी छोटी-सी सेना ने न भृगकच्छ और न अपनी राज्यलक्ष्मी के समान राजकन्या मृणालकुँवर पर से अधिकार हटाया।

रेवापाल इस सेना का नायक था। वह लाट की स्वतंत्रता में विश्वास करता था; पाटण और पट्टणियों को अपना कट्टर शत्रु समझता था। भृगुकच्छ का अंतिम कँगूरा जब तक उसके हाथ में रहा तब तक उसने युद्ध किया और जब वह भी हाथ से निकल गया तो ध्रुवसेन के साथ जंबूसर चला गया।

उस दिन से उसके हृदय में एक ज्वाला जल उठी। काक ने भृगुकच्छ लेकर और उसके पिता तेजपालको फुसलाकर उससे देश-द्रोह करवाया। बचपन से ही वह जिस काक को अपना मित्र मानता था वही उसके लिए देश-द्रोहियों का शिरोमणी होगया। इसी काक ने पट्टणियों का समर्थन किया था; त्रिभुवनपाल की विजय में इसीका हाथ था; भृगुकच्छ इसी ने लिया और तेजपाल नगरसेठ को फुसलाकर अपने हाथ में किया। देश के वैरी के प्रति उमड़े भयंकर क्रोधमें मित्रता जलकर भस्म हो गई।

जंबूसर के घेरे का वर्णन पराक्रम के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में किया गया है। ध्रुवसेन की सेना छोटी थी। लाट की स्वतन्त्रता में श्रद्धा रखने वाले भी इने-गिने ही थे। लाट के सोलंकियों के वंश में केवल एक लड़की थी। हाथ से निकली इस बाज़ी को भी खेलने वाले ध्रुवसेन ने वर्षों तक जंबूसर को टिका रखा। हजार घावों से सुशोभित उस वीर ने पाटण की संपूर्ण सेना के छक्के छुड़ा दिए और त्रिभुवनपाल व काक को छका मारा।

इस प्रकार भृगुकच्छ के घेरे में बचे सात सौ योद्धाओं में से कुल इकतालीस रह गए। इस छोटी किंतु अडिग सेना की स्थिति बड़ी गंभीर थी। यमराज इन्हें ग्रसनेको ताकमें बैठा हुआ था। उनकी आशाएं नष्ट हो गई थीं। ध्रुवसेनकी एक विधवा पुत्री और उनके साथकी आठ-दस स्त्रियों का क्या होगा यह किसी की समझ में न आया। मृत्यु के लिए तत्पर

वीर की निश्चयात्मक बुद्धि का सहारा लेकर ध्रुवसेन ने इस भव में इन सब बातों का विचार स्थगित कर दिया। इस निपट अंधकारमें भी एक प्रकाश-किरण फिर-फिर दिखाई पड़ती थी। कामरेज और गांधार से सिन्धु-मार्ग से सेना और खाद्य की सहायता मिलने वाली थी।

ध्रुवसेन से अधिक तो मृणालकुँवर दृढ़ थी। बड़े साहस के साथ वह बाला इस सेना को प्रेरित कर रही थी। उसने निश्चय कर लिया था कि वह लाट के सोलंकियों की कीर्ति अन्तिम समय तक मन्द न होने देगी। सम्पूर्ण लाट और गुजरात इस अडिग शौर्य को पागलपन मानते थे। दिन-प्रतिदिन ध्रुवसेन की मृत्यु—क्योंकि झुकने वाला वह नहीं था—निकट आ रही थी। और फिर वह इतना निर्बल हो गया था कि अब समझौता करने की इच्छा भी नहीं रह गई थी।

एकाएक दुर्गपाल काक घेरा छोड़कर पाटण गया। किसलिए गया यह कोई नहीं जान सका। जयसिंहदेव महाराज मालवे में थे। वह मुंजाल महेता और मीनलदेवी से भेंट करके लौट आया। दूसरे दिन ध्रुवसेन के पास संदेशा गया कि काक और तेजपाल नगरसेठ मंत्रणा करने के लिए आना चाहते हैं। ध्रुवसेन अपने पुराने शिष्य और दस वर्ष के वैरियों के नायक काक के शौर्य और बुद्धि से अपरिचित नहीं था। वह उसे अपना कट्टर वैरी और देश-द्रोही मानता था। अतः इस मंत्रणा वाली बात के पीछे छिपी हुई इस मनुष्य की क्या चाल हो सकती है यह उसकी समझमें न आया। जंबूसर तो थोड़ी ही देरमें गिर जायगा फिर किसलिए काक यहां आना चाहता है? परिस्थिति जैसी है उससे बिगड़ने से तो रही,यही सोचकर ध्रुवसेन ने काक से भेंट करना स्वीकार कर लिया।

: ८ :

स्वतंत्र लाट का अंतिम सत्ताधीश

एक जीर्णप्राय घर के चबूतरे पर फरफराती स्वतन्त्र लाट की ध्वजा के नीचे इस हतभागे देश का अन्तिम सत्ताधीश एक पत्थर पर बैठा हुआ था। उसकी सफेद दाढ़ी के अस्त-व्यस्त केश मरते हुए सिंह की अस्त-व्यस्त अयाल की भांति उसके वृद्ध मुख की भव्यता बढ़ा रहे थे। उसकी आंखें रक्तिम और उसके सिकुड़े हुए भाल पर निराशा की रेखाएँ थीं; किन्तु दोनों ही से एकाग्रता टपक रही थी।

उसके शरीर पर स्थान-स्थान पर पट्टियाँ बंधी हुई थीं किन्तु फिर भी वह एक हाथ में एक विशाल भाला लिये हुए था। समय-समय पर उसके होठों से लाट की जय-घोषणा—'जय गंगानाथ'—निकल पड़ती थी। उसके चारों ओर बीसेक योद्धा सटकर खड़े हुए थे। उनके शरीरों पर भी पट्टियाँ थीं। उनकी आंखों में भी मरते हुए केसरी का ज्वलंत तेज था। सभी भूख, प्यास और विश्राम के अभाव में सूखकर क्षीण हो गए थे किन्तु फिर भी उनके अङ्ग-अङ्ग से अडिग शौर्य झांक रहा था।

निःशस्त्र ही काक तेजपाल को लेकर एक योद्धा के पीछे-पीछे आया। चारों ओर श्मशान से भी अधिक सन्नाटा था; केवल मरे हुए योद्धाओं के शवों को चाटते श्वानों की भयावह भूँक दूर से सुनाई दे रही थी। जब उसने इस भयानक स्थान पर लाट की नष्ट होती राजलक्ष्मी के अंतिम रक्षक को यमराज को भी ललकार कर खड़े होते देखा तो उसके हृदय को आघात लगा। शुचिमन में उसने शस्त्र-विद्या सीखी थी और रेवा-पाल के साथ खाना, खेलना और सोना—सभी तो किया था। वहां खड़े हुए देश की स्वतन्त्रता के लिए अपना जीवन अर्पण करने वाले सभी योद्धाओं से वह परिचित था। वह स्वयं विजयी, विदेशी सेना का नायक और विदेशी राजा का विश्वासपात्र था। वह स्वदेश के हित में

लगा हुआ था या उसके साथ कपट कर रहा था ? क्षण-भर के लिए उसे चक्कर आ गया; व्यथा से उसने आंखें मींच लीं; पल-भर के लिए उसे कंपकंपी छूट गई। उसकी दृष्टि ऊपर फरफराती गंगानाथ की ध्वजा पर पड़ी। विदेशी विजयघोषणा के परिचित शब्द भूलकर वह कह उठा: 'जैसी गंगानाथ महाराजकी इच्छा।' दूसरे ही क्षण वह स्वस्थ होकर आगे बढ़ा और ध्रुवसेन के निकट जाकर साष्टांग प्रणाम किया; 'गुरुदेव प्रणाम !' काक ने जिस योद्धा से शस्त्र-विद्या सीखी थी उसे उसके असली नाम से सम्बोधित किया। ध्रुवसेन ने बिना कुछ बोले गर्व से अपने पांव पीछे खींचकर काक को चरणस्पर्श करने से रोक दिया; उसके स्पर्श करने से वह दूषित हो जायगा यह ध्रुवसेन ने छिपाया नहीं। काक सम्मान से झुक एक ओर तनिक हटकर खड़ा हो गया।

'काक !' थोड़ी देर पश्चात् उपवास और निरन्तर परिश्रम के कारण बैठे हुए गले से वृद्ध योद्धा ने कहा—'किस काम आए हो, हमारी निर्बलता देखने ?'

'गुरुदेव', नम्र होकर सम्मानपूर्वक काक ने कहा। 'महाराज,आप न कभी निर्बल थे और न हो सकते हैं। मैं तो आपसे केवल एक प्रार्थना करने आया हूँ।'

'प्रार्थना ?' रेवापाल बीच ही में बोल उठा। उसके गाल बैठ गए थे। उसकी आंखें विक्षिप्त मनुष्य की आंखों के समान चमक रही थीं। 'हमें दास बनाने आया है ?'

'नहीं भाई',अपमान पीकर स्नेह-भरे स्वर में काक ने कहा। 'मैं तो लाट के अमर योद्धाओं के दर्शन कर कृतार्थ होने आया हूँ और प्रार्थना करने आया हूँ कि अब यह हठ छोड़ दो। जो आपने किया वह न कोई कर सकता था और न कोई करेगा; किन्तु जिस लाट और मृणालकुंवर के लिए यह सब किया अब उन्हीं की भलाई के लिए हठ त्याग दो।'

'और वह भी तेरे कहने से ?' ध्रुवसेन ने तिरस्कार से हंसकर

कठोर स्वर में पूछा—'तेरे कहने से ? किस मुँह से तू आया है यहां ? मुझे मालूम है तू कौन है ? विदेशी पट्टणियों का क्रीत सेवक ! देश की लगन, अपने अन्नदाता की लाज और भाइयों का स्नेह—कुछ भी तो तुझे न रोक सका । स्वयं बिक गया और भृगुकच्छ को भी बेच दिया, अब मुझे क्रय करने आया है ?'

काक इन कठोर अभियोगों को सुनता रहा। फिर स्वस्थ होकर पहले जैसी ही नम्रता से बोला—'गुरुदेव, आप जो कहें वही ठीक, किन्तु मेरी भी तो कुछ सुनिये। जब मैं पट्टणी सेना में सम्मिलित हुआ उस समय लाट की शक्ति और सत्ता थी कितनी ? आप समझते थे कि दोनों हैं किन्तु मुझे विश्वास था कि दोनों मृगतृष्णा के समान हैं।'

'देश-द्रोह करने से इस मृगतृष्णा के पीछे प्राण दे देना हमें अधिक प्रिय है,' रेवापाल अधीरता से बोल उठा।

'रेवाभाई, तुम पट्टणियों को नहीं जानते। मैं यदि पट्टणियों की ओर न होता तो भृगुकच्छ भूमिसात् हो जाता, तुम कभी के पिस जाते और लाट की सत्ता और गौरव को सुरक्षित रखने का जो अवसर मैं उत्पन्न कर सका हूँ वह कभी न आता।' काक ने कठोर होकर कहा।

'यह सत्ता और गौरव !' काक के अन्तिम वाक्य को सुन चारों ओर हाथ से संकेत करते हुए ध्रुवसेन ने कहा।

'हां, यही सत्ता और यही गौरव, आज छः महीने हो गए, आप कैसे टिके रह सके, जानते हैं ? गांधार से अनाज किसने भिजवाया, मालूम है ? कामरेज से आदमी भिजवाने का संदेशा किसने भेजा, इसकी भी कुछ खबर है ?'

'किसने ?' रेवापाल ने तिरस्कार से पूछा।

'मैंने,' काक ने गर्व से उत्तर दिया।

'किसलिए ?'

'किसलिए ? आप मुझे शत्रु समझते हैं, यह आपकी भूल है। गुरुदेव ! लाट पाटण के हाथ जायगा यह निश्चित है, तब एक निःसहाय बन्दी के समान क्यों ? सम्मान के साथ क्यों नहीं ? और यह आप ही कर सकते हैं। इसीलिए मैंने आपको टिकाये रखा और इस समय भी यही प्रार्थना करने आया हूँ।'

कोई कुछ न बोला। काक डींग मार रहा था या सत्य कह रहा था कोई न समझ पाया। काक आगे बोला—'आप मृणालकुँवर को लाट के सिंहासन पर बिठाना चाहते हैं न ? मैं भी यही चाहता हूं। आपको लाट की सत्ता लेनी है न ? यह मैं भी स्वीकार करता हूं। आपको भृगुकच्छ का झण्डा चारों दिशाओं में फहराना है ? मेरी कामना भी यही है। इसीलिए मैं आपके पास आया हूं।' काक उत्साहित होकर वेग से बोलता चला जा रहा था। उसकी आंखें चमक रही थीं।

'किन्तु किस प्रकार ?'

'जयसिंहदेव महाराज मृणालकुँवर से विवाह करने के लिए तैयार हैं, आपको दुर्गपाल नियुक्त किया है, और मेरी लाट की सेना रेवाभाई को सौंप देने का आज्ञा-पत्र यह रहा। आप इसे स्वीकार कर लें तो त्रिभुवनपाल और मैं पट्टणी सेना लेकर कल प्रातःकाल प्रस्थान कर देंगे।' कहकर काक ने पाटण का आज्ञा-पत्र सामने रख दिया।

ध्रुवसेन और उसके साथी चकित होकर देखने लगे।

'इसीलिए क्या हम पाटण की दासता स्वीकार करेंगे ?' क्रोधित होकर रेवापाल ने कहा। 'मेरे पिता को विदेशियों के अनुग्रह का दास बनाया, अब मुझे भी बनाना है ? यह कभी न होगा !' दृढ़ता से रेवापाल बोला।

'रेवाभाई,' काक बोला, 'यह चंचल या क्रोधित होने का समय नहीं। गुरुदेव !' काक विनती के स्वर में ध्रुवसेन से कहने लगा, 'आप

वृद्ध और अनुभवी हैं। मुझे द्रोही कहने, क्रीत या दास समझने से लाट का भला न होगा।'

बिना कुछ कहे ध्रुवसेन ने गर्दन हिलाई। काक फिर कहने लगा 'आप मुट्ठी-भर तो हैं ही, चाहूँ तो कल प्रातःकाल जंबूसर ले लूँ। आप स्वयं तो भीष्मपितामह के समान स्वेच्छा से मौत बुलाकर प्राण दे देंगे, किन्तु इसका परिणाम क्या होगा यह भी सोचा है? लाट का प्राचीन गौरव अस्त हो जायगा, मृणालकुंवर निःसहाय हो जायँगी, लाट के सोलंकियों का चिह्न तक शेष न रहेगा, और पाटण के राजा को लाट को भूमिसात् करने का गौरव प्राप्त हो जायगा।' काक तनिक रुक गया, बीच में बोलने को तत्पर रेवापाल को उसने रोका, 'रेवाभाई, मैं समाप्त न कर लूं तब तक शांत रहो। विचार करो! जितना तुम सोचते हो उतना पापी या द्रोही मैं नहीं हूँ। गुरुदेव, आप मेरे पिता के समान हैं, रेवाभाई मेरा छोटा भाई है, भृगुकच्छ में मैंने जन्म लिया और बार-बार वहीं जन्म लूं यही कामना है। विचार तो कीजिए, आपकी ऐसी परिस्थिति में मैं कैसे पाटण से ये शर्तें ला सका? यदि देश-द्रोही होता तो ऐसा क्यों करता? आपकी पराजय मैं नहीं चाहता। मृणालकुंवर का हित यदि मैं न चाहता तो उन्हें गुजरात की स्वामिनी बनाने का विचार ही क्यों करता? मैं तो लाट को गुजरात की सर्वश्रेष्ठ शक्ति देखना चाहता हूँ।'

सभी स्तब्ध होकर खड़े थे, कोई न बोला। एक निःश्वास खींच-कर ध्रुवसेन ने अपना पट्टीवाला हाथ कपाल पर रख लिया।

'बोलिए गुरुदेव! सेनापति महाराज! बोलिए! आपके शब्दों पर ही इस समय लाट का गौरव निर्भर रहता है।'

ध्रुवसेन ने धीरे-धीरे अपना सिर ऊपर उठाया, 'भाइयो! इस बात का संबंध केवल हमसे ही नहीं है। पाटण की चाकरी में तो कभी करूँगा नहीं, इससे पहले गला घोंटकर मर जाऊँगा। किन्तु मेरे स्वामी की पुत्री का क्या हाल होगा? उनसे पूछे बिना मैं कुछ नहीं

[illegible] हुआ।

'तो क्या मुंजाल से यही पूछूँ?' काक ने पूछा।

'मैं तो नहीं पूछूँगा,' रेवापाल, 'तुम चाहो तो देवी के पास ले जाओ।'

'किन्तु यदि वे पूछें कि आपका क्या विचार है तो?' रेवापाल ने पूछा।

थोड़ी देर रुककर वृद्ध योद्धा ने सिर ऊँचा किया और कहा—'कहना, काक की बात ठीक मालूम होती है।'

काक का हृदय दर्प से उछल पड़ा। लाट के योद्धा निराश होकर एक दूसरे की ओर देखने लगे।

: ९ :

लाट की राज्यलक्ष्मी

रेवापाल के पीछे-पीछे जाते समय काक के मन में कई प्रकार की शंकाएँ उठ खड़ी हुईं। एक मुतमइदो योद्धा को समझाना एक बात है; किंतु बीस वर्ष की स्त्री के हठ पर विजय पा लेना बिलकुल दूसरी बात है। वह यह भी जान चुका था कि इस युद्ध में जितने अडिग साहस से ध्रुवसेन अड़ा हुआ था सोलंकी कुँवरि का साहस भी उससे कम न था।

जंबूसर की श्मशान-सी सूनी गलियों को पार करते हुए काक इस की याद मन ही-मन हरी करने लगा। पद्मनाभ महाराज के समय में, जब वह और रेवापाल साथ-साथ पाठशाला जाते थे, उसका जन्मोत्सव

मनाया गया था उसका उसे स्मरण हुआ। तत्पश्चात् एक-दो बार उसे देखा था—पाँचेक वर्ष की गुड़िया-सी नन्हीं बालिका! अब वह कैसी होगी? कैसे-कैसे दुख और कैसी-कैसी भयंकर परिस्थितियों का उसने सामना किया होगा? और अभी पाटण का जो मुकुट लेकर वह उसे देने जा रहा है, क्या उसे वह स्वीकार करेगी?

उसने रेवापाल की ओर देखा। होंठ पीसता हुआ वह आगे चल रहा था। उसने सुना था—कानों का अपराध है—कि लाट की स्वतंत्रता के लिए वह जितना परिश्रम करता था उससे कहीं अधिक बड़ी विपत्तियों का सामना कुँअरी को प्रसन्न करने के लिए करता था। उसकी सेवा में जितना परमार्थ था उतना ही स्वार्थ भी था। किन्तु ये तो लोगों की बातें हैं।

थोड़ी देर पश्चात् वे एक खँडहर में परिणित हो चुके प्रासाद के निकट आए। वहाँ एक सैनिक पहरा दे रहा था।

'जय गंगानाथ, भोला!' रेवापाल बोला।

'जय गंगानाथ, बापू!' सैनिक ने उत्तर दिया, 'क्या आज्ञा है?'

'देवी क्या कर रही हैं?'

'बैठी होंगी।'

'जा सूचित कर कि रेवापाल और पाटण का भटराज काक देवी से भेंट करना चाहते हैं।' रेवापाल के शब्द-शब्द में अँगार थे, काक ने बिना कुछ बोले सब सहन कर लिया। थोड़ी ही देर पश्चात् भोला लौट आया।

'बापू, चलिए, देवी बुलाती हैं।'

मैले-कुचैले दालान और निपट अँधेरी जगह में से होकर भोला काक और रेवापाल को पीछे की ओर के एक कमरे में ले गया। एक बिछौने पर काला लुगड़ा पहने कुमालकुँवर बैठी हुई थी। दो छिद्रों में से आते नाम मात्र प्रकाश में काक ने सोलंकियों की राज्यलक्ष्मी को देखा। वह दुबली और कोमल दीख पड़ती थी। भाग्य से ही कोई

उसे सोलह वर्ष की कहे। उसके पतले और सुन्दर होंठ बड़ी कठोरता से एक दूसरे से सटे हुए थे, और उसकी आँखों में गहन, निश्चल तेज चमक रहा था। उसकी छोटी किन्तु झुकी हुई नाक और उसकी मोहक किन्तु हठीली ठोड़ी से उसके प्रभाव की कुछ-कुछ कल्पना की जा सकती थी। उसने दोनों पाँव धरती पर रखकर एकदम हिंडोला रोक लिया और दोनों ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखा।

'ये हैं काक भट ?' उसने पूछा। उसकी वाणी में विचित्र शांति और निश्चयात्मकता थी। रेवापाल ने गर्दन हिलाकर हाँ कहा।

'आइए, कैसे आए ?' उसकी वाणी में किंचित् मात्र भी भावावेश न था।

'देवी,' रेवापाल बोला। 'काक पट्टणी दंडनायक का सँदेशा लाया है।'

'कैसा सँदेशा ?'

'यदि गुरुदेव समझौता कर लें तो पाटण का राजा आपसे विवाह करने और गुरुदेव को दुर्गपाल नियुक्त करने के लिए तैयार है।' रेवापाल ने तिरस्कार-भरे स्वर में काक का सँदेशा कह सुनाया।

'अच्छा !' मृणाल ने इस प्रकार कहा मानो बात किसी और के सम्बन्ध में हो रही हो—'गुरुदेव क्या कहते हैं ?'

'कहते हैं कि उन्हें यह बात ठीक ऊँचती है, फिर जैसी आप आज्ञा दें। आपकी आज्ञा हो तो हम तो कल ही केसरिया पहनकर निकल पड़ने के लिए तैयार हैं।'

कुँवरी एकाएक काक की ओर मुड़ी और इस प्रकार बोली मानो वह निष्प्राण हो—

'आप ही काकभट हैं ? वही जिनके विषय में कहा जाता है कि लाट उन्होंने ली ?'

'हाँ, देवी !' काक ने नमस्कार किया।

'आप मुझे पाटण की रानी बनाना चाहते हैं ?'

'जी !'

'किसलिए ?'

'क्योंकि उसी में लाट का सुख और गौरव सन्निहित है।'

'और यदि मैं अस्वीकार कर दूं तो ?' कुँअरी ने प्रश्न किया।

'तो कल जंबूसर हार जायगा; मेरे सदा अजित रहने वाले गुरुदेव पराजित होंगे और पद्मनाभ महाराज की पौत्री भटकती फिरेगी।' काक ने भी कुछ कठोर होकर उत्तर दिया। जाने क्यों, इस बालिका का उद्देश्य उसकी समझ में नहीं आया।

'रेवापाल, तुम क्या सोचते हो ?' कुँअरी ने पूछा।

'जैसी आपकी आज्ञा हो ?' क्रोध से भरे रेवापाल ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

'तुम्हें यह योजना ठीक लगती है ?'

'लाट विदेशी के हाथ में जा रहा है इसमें मुझे तो कुछ भी ठीक नहीं दिखाई देता।'

मृणाल कुछ समय तक चुप रही।

'रेवापाल, गुरुदेव चौपाल में हैं ?'

'हाँ'

'जाओ, बुला लाओ।'

'जो आज्ञा' कहकर रेवापाल चला गया। काक इस छोटी-सी बालिका का दृढ़ता और संयत व्यवहार देखकर चकित हो गया। मीनलदेवी में भी ऐसी निश्चयात्मक बुद्धि और इतनी एकाग्रता न देखी थी। जैसे ही रेवापाल गया वैसे वह काक की ओर मुड़ी; उसके होंठ और भी कठोर हो गए।

'तुम मुझसे क्या करवाना चाहते हो, यह भी मालूम है ?'

'हाँ'

'नहीं,' हजार में एकाध होने वाले अनुभवी योद्धा जैसे आत्म-विश्वास से मृणाल ने कहा। 'तब महाराज अपने दादा का मुकुट पहन

और हाथ में तलवार लेकर, मृत्यु का आलिंगन करने में तुम पर टूट पड़ूंगी ' मेरा सिर कट जायगा किंतु मैं अमर हो जाऊंगी। मेरे शौर्य से पृथ्वी गूंज उठेगी, और भविष्य में लोग मुझे अम्बिका के समान पूजेंगे।' उसके स्वर में कम्पन न था और न था उसकी आँखों में असाधारण तेज;थी केवल उसकी अस्वाभाविक निश्चयात्मकता और उदासीन शान्ति। काक के आश्चर्य की सीमा न रही।

'तू चाहता है मैं ऐसा अवसर खो दूं ?'

'हाँ'

'क्यों ?'

'गुजरात की राजमाता बनने के लिए।'

'तुम्हारे राजा की कितनी स्त्रियां हैं ?'

'तीन।'

'और मैं चौथी ? इनमें पटरानी कौन है ?'

'मीनलदेवी ने वचन दिया है कि आप ही, पटरानी बनेंगी।'

'काक, मेरी इच्छा तो स्वयंवर रीति से ब्याहने की है।'

'जयसिंहदेव सोलंकी से बढ़कर योग्य वर कहाँ मिलेगा ?' काक ने प्रश्न किया।

'जो गुजरात पर विजय प्राप्त करे, वही।'

'ऐसा किससे हो सकता है ?'

'बताऊँ ?' उसने नीचे झुक, होंठ दबाकर, धीमी किंतु स्वस्थ आवाज़ में कहा। काक को कँपकँपी छूट गई। यह लड़की तो अनुभवी स्त्री की चतुराई से बात कर रही थी।

'एक व्यक्ति की मैंने बहुत ख्याति सुनी है। उसने मुंजाल को मात दी; खेंगार के छक्के छुड़ा दिए; अकेले नवघण को पकड़ा; उदा की स्त्री को ले आया; और आज त्रिभुवन को अपनी मुट्ठी में किये हुए है। उस को देखने के लिए मैं इतने वर्षों से तड़प रही थी। बोलो, उससे तो यह हो सकेगा ?'

काक काँप उठा। कितना भयंकर प्रश्न था? कितना आवेश? क्षण-भर के लिए वह बिलकुल अस्थिर हो गया।

'बोलो, ये सब पराक्रम सच है या झूठ?'

'किंतु मैं—मैं—'

'हाँ, तुम गुजरात ले सकते हो।'

'क्या कहती हो? पागल हो गई हो?'

'नहीं। बताओ, अभी तुम्हारे पास लाट की कितनी सेना है पाँच-छः हज़ार?'

'हां'।

त्रिभुवनपाल बात-की-बात में जीता जा सकता है। कल प्रातःकाल तुम्हारी सेना भृगुकच्छ पर अधिकार कर सकती है। परसों मही से तापी तक लाट तैयार हो जायगी। किंतु पद्मनाभ महाराज का सिंहासन सूना है। हम दोनों उस पर बैठेंगे। फिर गुजरात कौन बड़ी बात है?' उसने शांत होकर प्रश्न किया। उसके लिए तो मानो यह मात्र लेन-देन का प्रश्न था।

पाँव के सामने साँप दिखाई देने पर जो अवस्था होती है वही अवस्था काक की हो गई। यह गहन विचारशक्ति, यह निर्मम योजना, कैसी दृढ़ता और कितना साहस; और वह भी इस बालिका में!!

कुछ देर तक काक को कोई उत्तर न सूझा।

'देवी' क्षोभ-भरी आवाज़ से काक बोला—'आप मुझसे चाहती क्या हैं?'

'धरती पर सर्वश्रेष्ठ वस्तु राज्यपद है, वही देना चाहती हूं।'

'नहीं, मित्र-द्रोह करूँ—स्वामी-द्रोह करूँ—पत्नी-द्रोह करूँ—और सर्वश्रेष्ठ बनूँ? मुझसे ये न होगा।' काक धीरे-से बोला।

'तुमसे तो केवल देश-द्रोह ही हो सकता है। मुझे न मालूम था कि तुम कायर हो!' तिरस्कारपूर्वक मृणाल बोली। प्रथम बार उसके स्वरों में निराशा झलकी।

'मुझमें जितना समझती हो उतना साहस नहीं है। हाँ, जयसिंहदेव से ब्याह करो तो मैं तुम्हें संसार की महारानी बना दूँगा, वज्रनाभ महाराज की कुँअरी की आज्ञा दसों दिशाओं में मान्य होगी। और क्या चाहिए?'

'ये सब तो बातें हैं। मुझे पाटन की महारानी बनने में कोई तथ्य नहीं दिखाई देता।'

'दूसरा रास्ता तो केवल मृत्यु का है'।

'तुम्हारा जी नहीं जलजाता?' कुँअरी ने प्रश्न किया।

'अपना संकल्प मैंने बता दिया। उससे अधिक मैं कुछ नहीं कर सकता।'

'तो मैं भी अन्य मार्ग ग्रहण नहीं कर सकती, मुझे तुम्हारी चिंता नहीं।' शांति से मृणाल ने कहा।

'जी।' काक ने उत्तर दिया, 'लीजिए, गुरुदेव पधार गए।'

इतना कहने के साथ ही ध्रुवसेन और रेवापाल आ गए। सभी चिंतातुर मुख से कुँअरी की ओर देखते रहे। उसने एक-एक कर तीनों की ओर देखा और फिर शांति से कहा—

'गुरुदेव! जयसिंहदेव से विवाह करने के लिए मैं तैयार हूं।'

रेवापाल चकित हो गया। काक ने सुख की सांस ली।

'आप क्या करेंगे?'

'मैं?' ध्रुवसेन बोला, मैं कल सन्यास ले लूंगा। रेवापाल को दुर्गपाल नियुक्त करना पड़ेगा।' ध्रुवसेन ने काक से कहा।

'जी।' काक बोला।

'रेवापाल कभी विदेशियों की दासता स्वीकार नहीं करेगा।' दाँत पीसते हुए रेवापाल बोला।

'तो आप ये शर्तें स्वीकार करते हैं?' काक ने अंतिम प्रश्न किया।

'हाँ।' ध्रुवसेन ने कहा। मृणाल शांति से और रेवापाल क्रोध से देखते रहे।

परिणामतः ध्रुवसेन ने संन्यास लिया, कुँअरी जयसिंहदेव की ब्याहिता होकर लीलादेवी हो गई, और रेवापाल के लिए संसार में बिलकुल रस न रहा।

इस बात को चार वर्ष बीत गए।

: १० :

यह मुँह कहीं देखा है!

भृगुकच्छ का दुर्गपाल शीघ्र ही देवभद्रसूरि के उपाश्रय में जा पहुँचा।

कई वर्ष पहले देवभद्रसूरि ने भृगुकच्छ में अपने चतुर्मास 'किये' थे। दुर्बल स्वास्थ्य के कारण अन्य ऋतुओं में भी अधिक दूर विहार नहीं करते थे। आवश्यकता पड़ने पर यहाँ आ पहुँचते थे।

इन सूरि की ख्याति देश-विदेश में फैली हुई थी। जब से—संवत् ११४८ में—इन्होंने कथारत्नकोष लिखा तब से इनकी विद्वत्ता की इतनी धाक बैठ गई थी कि चारों ओर से जैन साधु और पंडित इनके वचनामृतों का आस्वादन करने के लिए समय लिये हुए चले आते थे।

वे जितने अप्रतिम विद्वान थे उतने ही हृदय के विशाल भी थे। भृगुकच्छ के वे भूषण थे; उनकी प्रवृत्ति का एकमात्र लक्ष्य था मानव-समाज का उद्धार। जैन और अजैन जनों के वाद-प्रतिवाद अथवा राज-पुरुषों के षड्यन्त्रों में उन्हें कोई रस न था। उनके उपाश्रय में साधु और गृहस्थ दोनों का स्वागत होता था उनके उपदेश संसारी और त्यागी दोनों के काम के होते थे। वे अन्य साधुओं के समान राजनीति में दखल नहीं देते थे।

और शरीर अस्वस्थ होने के कारण आजकल वे भृगुकच्छ में थे।

त्रिभुवनपाल की उदारता से निर्मित हुए उनके उपाश्रय में लोगों का आवागमन अन्य दिनों की अपेक्षा अधिक था।

जिस कमरे में देवभद्र था उसी में काक गया। दुर्गपाल ब्राह्मण होते हुए भी अक्सर इधर चला आता था। इस समय उसे वहाँ देखकर लोगों को आश्चर्य न हुआ।

एक कमरे में देवभद्र जी अपने अस्वस्थ शरीर को हाथ पर टेक कर बैठे हुए थे। पास ही में नगर के एक-दो श्रावक बैठे हुए थे। थोड़ी दूर तक एक व्यक्ति सूरिजी के बिलकुल नए लिखे हुए 'पार्श्वनाथ चरित्र' की प्रतिलिपि कर रहा था।

उनका मुख क्षीण और साधारण दर्शक की दृष्टि से निस्तेज था उनकी आँखों में मिठास थी। वाद-विवाद में भी उनकी दृष्टि कठोर नहीं होती थी। उनकी हंसी अल्प किन्तु मीठी होती थी; और विद्वत्ता या विजय का अभिमान तो उनमें था ही नहीं। उनका शरीर ठिगना और दुर्बल था; कई बार तो बोलते-बोलते रुक जाना पड़ता था और सांस लेने में भी महा परिश्रम करना पड़ता था।

जिस समय काक उस कमरे की सीढ़ियां चढ़ रहा था उस समय देवभद्रसूरि शिक्षा-शास्त्र के अनुभवी अध्यापककी भाँति उंगलियां हिला कर बोल रहे थे—

'अहिंसा और राज्यपद इन दोनों में परस्पर विरोध है। राज्याधिकारी या तो हिंसक होता है या हिंसा से रक्षा करने का साधन होता है। फिर अहिंसा के उपासक के लिए अधिकारी का क्या उपयोग हो सकता है ?' सूरि ने सामने बैठे हुए साधु से प्रश्न किया और काक को देखकर उसकी ओर आमुख हुए, 'ये हमारे दुर्गपाल हैं। यदि हम अहिंसा का ही प्रचार करें तो फिर इनका हमारी रक्षा करनेका प्रश्न ही नहीं उठता। फिर हँसकर सूरिजी ने बात पलटी, 'भटराज ! इन सूरिजी से परिचित हो ?'

काक ने देवभद्र से साधु की ओर दृष्टि फेरी। उसे उसका मुख परि-

चित-सा लगा किन्तु बहुत ध्यान से देखने पर भी ठीक से पहचान न सका। इस साधु का शरीर-विन्यास देवभद्र के शरीर-विन्यास से एकदम विपरीत था। वह युवक और तेजस्वी था; उसकी आंखों में निराला आकर्षण था; और उसके हास्य में वैचित्र्य था। उसका शरीर क्षीण होते हुए भी निर्वीर्य नहीं था।

इस युवक साधु को कहाँ और किस अवस्था में देखा था यह काक को स्मरण न रहा। मन-ही-मन स्मरण करने की चेष्टा करते हुए वह नमस्कार करके बैठ गया।

'ये महाराज कौन हैं?' काक ने पूछा।

'ये महाराज नहीं, सूरि हैं।' तनिक हँसकर देवभद्र ने उत्तर दिया। 'इनका नाम हेमचन्द्रसूरि है। आज ही 'विहार' करते हुए यहाँ पहुंचे हैं,' देवभद्रसूरि ने कहा। 'उम्र में जितने छोटे हैं, ज्ञान और तप में उतने ही बड़े हैं।'

'मेरा सौभाग्य कि दर्शन करने आया एक महात्मा के, भेंट होगई दो से। मैं वंथली जाने वाला हूँ।'

'क्यों?'

'जयसिंहदेव महाराज की आज्ञा है।' काक ने हेमचन्द्र की ओर देखकर कहा। उसका मुख भावहीन था।

'यों एकाएक?' देवभद्र सूरि ने प्रश्न किया।

'कुछ समझ में नहीं आता। उदा महेता का आँघड़ आज्ञा लेकर आया है।'

'ऐसा? कब?'

'आज प्रातःकाल।'

'अवश्य कोई विशेष कारण होगा।'

'लगता है महाराज जूनागढ़ लेने के लिए आतुर हो रहे हैं।'

'अरे रे!' देवभद्रसूरि ने कहा, 'राजा सबसे बड़े हिंसक होते हैं। सूरि जी से मैं यही कह रहा था कि राजाओं को समझावें। अहिंसा का प्रचार

सरल नहीं। उनका अस्तित्व, उनके ठाठ-बाठ, उनका सब कुछ हिंसा पर निर्भर है।'

'और इन भाई जैसे उसमें सहायता कर रहे हैं,' हँसकर हेमचन्द्र बोला।

काक सावधान था उसने धीरे-से एक दाव खेला।

'उदा महेता जैसे श्रावकशिरोमणि तो हिंसा त्याग नहीं सकते तो मुझ जैसे सैनिक की क्या बिसात।'

किन्तु उस साधु की मुखमुद्रा में कोई परिवर्तन न हुआ। उसने कहा—'सभी राज-पुरुष उलटे मार्ग पर चल रहे हैं। न जाने कब सीधे मार्ग पर लगेंगे ?'

'जब हमारी तपस्या खरी होगी तभी।' देवभद्रसूरि ने कहा।

'महाराज !' काक बोला, 'मैं आजकल में चला जाऊंगा। कुछ कहना-कहाना है ?'

'हाँ ! मीनलदेवी को मेरा धर्मलाभ कहना। वापस कब आओगे ?'

'जितना शीघ्र हो सकेगा। सोमनाथ भगवान का मन्दिर—पूरा होने आया है, बन सका तो जयसिंह महाराज के जूनागढ़ लेते ही कलश चढ़ाने के लिए उन्हें यहाँ बुला लाऊंगा।'

'तब तो बहुत अच्छा !'

'महाराज ने अब तक भृगुकच्छ को पावन नहीं किया ?' हेमचन्द्र ने पूछा।

'नहीं,' काक ने उत्तर दिया। 'इसीलिए इच्छा है कि इस बार उन्हें यहाँ ले आऊँ। आप तब तक यहीं रहेंगे न ?'

'यह तो आपके लौटने में कितना समय लगेगा इस पर निर्भर है।'

काक हँस दिया। उसे लगा कि या तो यह मनुष्य सर्वथा भोला है या पक्का खिलाड़ी है। उसका पाटण से क्या संबंध है यह जानने के लिए वह उत्सुक हो उठा; आम्रभट से वार्तालाप करते समय जो उचित-अनुचित विचार उसके मन में उठे थे वे पुनः उठ खड़े हुए।

'बहुत समय लगेगा। रेवापाल की आपसे भेंट हुई ?' काक ने आधा देवभद्र और आधा हेमचन्द्र की ओर देखकर पूछा।

'नहीं' देवभद्र ने कहा। 'नगरसेठ अभी-अभी घर गये हैं।'

'तो मैं भी जाऊं। मुझे उनसे मिलना है।' कहकर काक उठ खड़ा हुआ।

'मैं भी थोड़े समय के लिए हो आऊं। आज्ञा है ?' इतना कह हेमचन्द्र भी उठ खड़ा हुआ।

'महाराज ! आज्ञा ?' काक ने प्रणाम कर पूछा।

'बेटा ! धर्मलाभ।' देवभद्र बोले।

हेमचंद्र भी देवभद्र को प्रणाम करके काक के साथ हो लिया।

: ११ :

काक पहचान जाता है

जब काक हेमचन्द्र के साथ कमरे की सीढ़ियां उतर रहा था तभी उसे लगा कि दोनों एक दूसरे को अविश्वास की दृष्टि से देख रहे हैं। शिष्टाचारी सैनिक चतुराई से बात कर रहा था; त्यागी साधु नम्रता से उत्तर दे रहा था। दोनों के मुख भाव-विहीन थे फिर भी दोनों एक दूसरे की थाह लेने के प्रयत्न में लगे हुए थे।

काक ने बहुत सिर मारा; मुख परिचित था, स्वर की भंगिमा भी कुछ-कुछ परिचित जान पड़ी—किन्तु इस साधु को किस स्थान पर देखा था यह याद नहीं आया।

सूरि भी काक के साथ सावधान होकर व्यवहार कर रहा था, उस के मुख पर भोलापन इतना स्पष्ट था कि काक को शंका लगभग जाती रही।

'आप में और सूरिजी में क्या विवाद चल रहा था ?'

'कोई विशेष नहीं। सूरिजी का विचार है कि राज्यकार्य में अहिंसा का कोई स्थान नहीं।'

'हो भी कैसे सकता है ? राज्यकार्य ईर्ष्या, सत्ता की इच्छा और बेईमानी से ही तो चलता है। वहां अहिंसा कैसे संभव है ?'

'यह आपकी भूल है।' नवयुवक साधु ने तेज-भरे स्वर में कहा।

'कैसे ?'

'जब राज्य-कार्य में धर्म का शासन होगा तभी इन पापाचारों का शमन होगा।'

'मुझे तो लगता है कि ऐसी स्थिति में धर्मराज स्वयं बदल जायँगे।'

'तो वह धर्मराज ही क्या ?'

'पाटण में चन्द्रावती से एक यती आए थे। उनकी बात सुनी थी?'

'दस हज़ार महात्माओं के हार जाने पर एक वीतरागी का जन्म होता है।' साधु ने कहा।

'वीतराग' शब्द सुनकर काक के मस्तिष्क में कई-एक तार झनझना उठे। एकाएक एक प्रसंग याद आया—एक नन्हें बच्चे का सुन्दर मुख उसकी दृष्टि के सम्मुख आया। वह मन-ही-मन हंस दिया। अन्त में उसने इस साधु को पहचान ही लिया।

'देखा जायगा।' मन-ही-मन कह काक ने अपना दाव खेला।

'सूरिजी! बहुत वर्ष हुए हमारी एक-दूसरे से भेंट हुई थी। याद है ?'

हेमचन्द्र चमका, उसके मुख पर तनिक क्षोभ झलक आया।

'हमारी ?'

'हां' काक हंसा। 'आपको उदा महेता ने दीक्षा दिलवाई थी। याद है ? तब आप छोटे थे और मैं एक मामूली सैनिक था। आपके दादा के कहने से मैं पिछली रात को आपको उठा लाने के लिए आया था—याद आया ?'

ाश्चर्यचकित होकर हेमचन्द्र ने कपाल पर हाथ फेरा । पन्द्रह
हले का प्रसंग—जो उन्हें अच्छी तरह याद था—एक बार फिर
के सम्मुख खड़ा हो गया। साधु ने गर्व से काक की ओर देखा।
रिवर्तन देखकर काक हंस दिया।

सूरिजी ! आपने मुझ से क्या कहा था, याद है ? मैं तो वीतराग
। । आपका लक्ष्य सिद्ध हुआ ?' काक ने तनिक विनोद में पूछा।

भटराज ! वीतराग बनने की बात करना सरल है; किन्तु बन
कठिन है।'

'उदा महेता कैसे हैं?' काक ने नितान्त, निर्दोष और स्नेह-भरे स्वर
छा।

'बहुत समय हुआ उनसे भेंट किए,' हेमचन्द्र ने भी वैसे ही निर्दोष
में कहा।

'आज प्रातःकाल आम्रभट आया है। उससे तो आपकी भेंट हुई
। ?' हंसकर काक ने पूछा।

'वे यहां मिलने नहीं आए । भेंट हो तो कहिएगा मुझसे आकर
।'

'अच्छी बात है । अब तो वह भृगुकच्छ का दुर्गपाल बनने
ा है।'

'ऐसा ? वह तो बिचारा मौजी आदमी है।'

'फिर भी उदा महेता का पुत्र है । मोर के अंडों को भी क्या पर-
। पड़ेगा ?'

'इतना अच्छा है कि भृगुकच्छ में शांति है, नहीं तो बिचारे के
! बड़ा भारी पड़ता।'

काक ने देखा कि इस बात में कुछ सार है, अतः उसने कहा—
रेजी ! मेरी नीति पर चलेगा तो सब ठीक होगा।'

'नहीं तो ?'

'नहीं तो अब लाट को वश में रखना कठिन होगा। आप इसे

सलाह दीजियेगा—आपका तो अच्छा परिचय है न ?' कहकर काक ने बात पलट दी।

'अब मैं जाऊंगा। आज्ञा ?'

'धर्मलाभ, जिन भगवान् आपको विजय दें।' वृद्ध साधु की गंभीरता से हेमचन्द्र ने कहा। काक मन-ही-मन हंसा।

हेमचन्द्र दूसरी ओर चला गया। काक जाकर अपने घोड़े पर बैठ गया।

थोड़ी दूर जाकर काक ने अपने भट को अपने निकट चलने के लिए कहा।

'सोमेश्वर भट !'

'जी।'

'उस नवयुवक साधु को देखा ?'

'हां।'

'ये बहुत विद्वान् और समर्थ हैं। उदा महेता के परम मित्र हैं। कुछ समय तक ये यहीं 'विहार' करेंगे। प्रतिदिन इनकी सेवा में उपस्थित रहना—सावधानी से।' काक ने धीरे-से कहा। सोमभट चतुर था। काक के शब्द-चातुर्य से वह भली-भांति परिचित था। उसने एक बार पीछे दृष्टि डालकर हेमचन्द्र को देखा और उसका मुख अच्छी तरह हृदय में जमा लिया।

: १२ :

नेरा तोतला

आम्रभट के मन को चैन न था। वह चंचल हो उठा; उस सुन्दरी को खोजने के लिए तड़पने लगा। भृगुकच्छ का अधिकार, तेजपाल

सेठ की पुत्री, विलास—सब कुछ उसके लिए अर्थहीन हो गया।

आँबड़ ने संयम तो सीखा ही न था, राजदरबार के शिष्टाचार भी पूरे-पूरे न सीख सका था। उसने अपने गण को बुलाया।

'हमीरभट।'

'बापू।'

'तू पहले भृगुकच्छ आ चुका है न?'

'हां।'

'एक अत्यन्त आवश्यक काम है।' चारों ओर देखते हुए आम्रभट ने कहा।

'क्या?'

'साम्बा बृहस्पति का प्राचीन वाड़ा देखा है?'

'हाँ। जहाँ दुर्गपाल महाराज पहले निवास करते थे?'

'हां, वही। वहाँ मैंने एक स्त्री देखी थी।'

'हां' मूँछों ही में मुस्कराते हुए हमीर ने कहा।

'उसका नाम और निवास-स्थान का पता मुझे चाहिए।'

'किन्तु वहां तो तीन-सौ स्त्रियां रहती हैं।'

'इसको तुम तुरन्त पहचान जाओगे।'

'किस प्रकार?'

'युवती है, सुन्दर है—' आम्रभट रुक गया।

'बापू! सभी युवतियां सुन्दर लगती हैं और सभी सुन्दर स्त्रियां युवती! यों कैसे काम चलेगा?'

'मूर्ख! यह तो अप्सरा के समान है। लम्बी और संगमरमर के समान अद्भुत है। जहाँ महादेव का मन्दिर है न, वहीं कहीं रहती है।'

'बापू! मुझ ग़रीब की मानोगे?'

'क्या?' अधीर होकर आम्रभट ने पूछा।

'हम अभी तो आए हैं और उस पर मेहता जी ने आवश्यक काम से भेजा है। इस 'पंचात' में पड़ेंगे तो मरेंगे।'

आम्रभट ने आंखें तरेरकर हमीर की ओर देखा, 'तुझे सलाह देने का व्यसन कब से लगा ?'

हमीर चुप रहा। उसने नतमस्तक होकर हाथ जोड़ लिए, 'जो आज्ञा।'

'मुझे संध्या तक उसका नाम, स्थान, उसके पति का नाम, पिता का नाम—सब कुछ चाहिए।'

'हो सके तो परिचय भी करवा आऊं !' तनिक कटाक्ष मे हमीर ने कहा।

'इसका तो मुझे विश्वास है।' हंसकर आम्रभट बोला, 'हां देख, कोई जान न पाए।'

'जान भी ले तो क्या ? ये जाटिए कर ही क्या सकेंगे ?'

'वे क्या कर सकते हैं ? गर्व से आम्रभट ने कहा। 'केवल, तेजपाल सेठ जान जायं तो अच्छा नहीं लगेगा। अच्छा ! तो समझ गए हो न ?'

'आप तो ऐसे चिह्न बताते हैं कि काम बन ही नहीं सकता।'

'पागल ! वैसी दूसरी स्त्री तो मैंने देखी ही नहीं।' आंबड़ बोला।

'आप हर बार ऐसा ही कहते हैं।'

'इस बार तो तू भी मान जायगा। कैसा वर्ण है उसका ? मानो मोगरे की कली हो।' बोलते-बोलते आम्रभट के मुंह में पानी आ गया

'किस जाति की है ?'

'ब्राह्मण। उस वाड़े में कभी वैश्य मिल सकती है ? जा, अब देर न कर।'

'काम होते ही आता हूं।' हमीर ने कहा और तलवार बांधकर बाहर निकला।

हमीर अपने स्वामी की विशेषताएँ जानता था। ऐसे अनेक प्रसंगों में उसने आंबड़ की सहायता की थी और अनेक विपत्तियों से उसने उसकी रक्षा की थी। वह समझ गया था कि इस समय उसके स्वामी हठ पर चढ़े हुए हैं और ना कहने से कोई लाभ न होगा। वह विचार

करता हुआ बाहर निकला। नाम ठाम का पता लगाना कुछ भी कठिन नहीं था। किन्तु, उसे लगा, ये सब बहुत सावधानी से करने पर भी हाथ कुछ न लगेगा।

हमीर चतुर होने के साथ ही अभिमानी भी था। संसार का स्वामी पाटण, पाटण के स्वामी जयसिंहदेव, और उदामहेता जयसिंह देव के एक प्रकार से स्वामी ही थे—ये हमीर के सिद्धांत थे। स्वयं उदामहेता का विश्वासपात्र सुभट और उनके प्रिय पुत्र का घनिष्ठ मित्र होने के कारण वह सम्पूर्ण संसार को तिरस्कार की दृष्टि से देखता था। उसने लाट के साथ हुए कई युद्धों में भाग लिया था, और लाट पर विजय प्राप्त कर लेने के पश्चात् भी वह एक-दो वर्ष पट्टणी सेना में रहा था। इसी कारण से लाट के प्रति वह बड़ी तिरस्कार की दृष्टि से देखता था।

सीधे माम्बा बृहस्पति के बाड़े में जाना उसे ठीक न लगा, अतः उसने अपने एक पुराने मित्र को खोज निकालने का निश्चय किया।

उसके मित्र नेरा तोतला को पट्टणी सेना में कोई न जानता हो, ऐसी बात नहीं। वह गप्पी था, पराक्रम का मूल्य जानता था। आराम और आनन्द को छोड़ दूसरा उसे कुछ भी अच्छा न लगता था। भोजन और हास्यविनोद के बिना तो उसका जीना असम्भव था। जहां रहता वहां गाँव-भर के व्यक्तियों से, विशेषकर स्त्रियों से, परिचय करना कभी न चूकता था। और जिस-जिस स्थान पर पट्टणी सेना पड़ाव डालती थी वहां एक-दो स्त्रियों से विवाह करके घर बसाना भी कभी न चूकता था।

हमीर समझ गया कि इस महारथी की सहायता के बिना कुछ भी होना सम्भव नहीं है। अतः उसने चौकी पर जाकर नेरा तोतला का पता पूछा। त्रिभुवनपाल सोलंकी का पता लगने में कठिनाई पड़ सकती थी किन्तु नेरा तोतला का कोठरा ढूंढने में कभी परिश्रम नहीं उठाना

पड़ता था। तेलियों के मुहल्ले के नुक्कड़ पर एक नव परिणीता के घर में वह रहता था, यह जान हमीर उस ओर मुड़ा।

नेरा का घर छोटा और मैला था। एक ओर कोल्हू चक्कर काट रहा था और दूसरी ओर एक तेलन बैठी गन्दी, पीली रेवड़ियां बेच रही थी। गन्दे पथ में हर प्रकार की सड़ी-गली वस्तुएं दृष्टिगोचर हो रही थीं।

हमीर ने जाकर द्वार की सांकल खड़खड़ाई किन्तु कोई उत्तर न मिला। आवाज़ भी दी किन्तु किसी ने द्वार नहीं खोला। अन्त में उस ने निकट की दूकान पर बैठी हुई तेलन से पूछा—

'नेरा भाई यहीं रहते हैं ?'

'हां।'

'तो उत्तर क्यों नहीं देता ?'

'लुगाई को निकाल कर प्रातःकाल से अन्दर ही बैठे हैं।'

'तो अब क्या करूं ?'

'पीछे की ओर बाड़े का द्वार खुला होगा।'

'किधर से जाऊं ?'

'इस ओर होकर।'

हमीर शीघ्रता से उस ओर गया। पड़ोसिन के कहे अनुसार पिछला द्वार खुला हुआ था। उसे धकेलकर हमीर बाड़े में गया और वहां से घर में घुसा।

उसकी पदध्वनि सुनकर निकट ही के कमरे से आवाज़ आई।

'वा........वा........प...... स'—ऐसा लगा मानो कोई मुंह में कुछ भरकर बोल रहा है। हमीर ने स्वर पहचान लिया।

'अरे, ए तोतला! किधर है ?' हमीर प्रश्न करता हुआ अन्दर गया।

'फों......कों.......' बड़ी कठिनाई से गले के नीचे कुछ उतारते हुए तोतले का स्वर आया।

'अकेला बैठा क्या कर रहा है? आवाज़ दे-देकर तो मेरा गला ही बैठ गया।' हमीर ने अन्दर पहुंचकर कहा।

अन्दर का दृश्य बड़ों-बड़ों को चकित कर देने वाला था।

नेरा को मनुष्य तो गढ़ा ही न गया था। हाथी बनाते समय वह भूल से आदमी के रूप का बन गया था। वह लम्बा था और कल्पनातीत विपुलाकार था उसका शरीर। उसकी नाक नुकीली तथा झुकी हुई थी; उसके नेत्र शीतला के समान विशाल। तुंद इतनी गोलाकार थी कि मोटी गागर भी उसके सामने पानी भरे। उसके हाथ और पांव मोटे और गोल थे। उसको देखकर अर्द्ध-निपुण कारीगर द्वारा मनुष्य शरीर की लम्बाई के नाप के बनाए गणपति का स्मरण हो आता था।

यह वीर पुरुष उकड़ूं बैठे थे—बड़ी कठिनाई से—और सामने पड़ी थाली में पड़े मोदक उठा-उठाकर मुंह में रखते चले जा रहे थे। यह प्रयोग इतनी शीघ्रता और सफाई से हो रहा था कि कब वे मुंह में पड़ते और कब गले के नीचे उतरते यह निश्चय करना सरल नहीं था। यह उतावला वीर इस तरह हांप रहा था मानो धमनी चल रही है।

उसने आँखें फाड़कर हमीर की ओर देखा और उसे पहचाना। एकाएक उसकी जल्दबाज़ी जाती रही। उसके चिन्तातुर मुख पर हास्य फैल गया। उसने फटती हुई धमनी की तरह एक निःश्वास लेते हुए कहा—

कौ....कौ....न...ह....मी....र।'

'हाँ, मैं।'

'हा—हा—हा' नेरा बोला—'हो—हो अ....अच्छा हुआ कि तुम पहले आगए। मैं तो समझा कि मेरी मौत आई है। मारने के लिए मैं यह लकड़ी उठाने वाला ही था।'

'अरे बैठ, बैठ! यों कह न कि लुगाई के आने से पहले मोदक उड़ाने का विचार कर रहा था।'

'हो—हो—हो!' नेरा के हास्य से घर गूँज उठा,'क्या करूँ? दो

दिन मुझे भूखों मारा और आज प्रातःकाल क्रोधित होकर पीहर चली गई तो मैंने यह किया। हमीर तुझे आए कितने दिन होगए? ले एक लड्डू तो खा...खा।' कह नेरा ने बचे हुए ग्यारह मोदकों में से एक हमीर को दे दिया।'

'मुझे नहीं खाना है; तू भूखा है, खा ले।' हमीर ने उदारता दिखाई। अतः बिना और आग्रह के नेरा ने वह लड्डू अपने मुँह में रख लिया।

'मैं आज प्रातःकाल ही आया हूं। मित्र, तुमसे एक काम है।'

'खा....खा....खा....लेने दे।' नेरा हकलाता नहीं था, केवल अटकता-भर था और वह भी प्रथम शब्द पर। एक बार उसकी जीभ चल पड़ती तो फिर उसे रोकना बहुत कठिन होता था।

'अच्छा, खा ले।'

'नेरा ने मोदकों को शीघ्रातिशीघ्र गति से मुँह या गले में रोके बिना पेट में पहुंचाना आरम्भ किया। ग्यारह के ग्यारहों लड्डू समाप्त कर, हाथ धो, हमीर के निकट आ उसने 'क...क....क्यों दोस्त,' कहकर हमीर की जंघा पर हाथ मारा। मित्रताका प्रमाण नेरा ने इतने कठोर ढंग से दिया कि हमीर को क्रोध आगया किन्तु स्वार्थ होने के कारण कुछ न बोला।

'देख, मुझे एक स्त्री की खोज करनी है।'

'ब्य...ब्य....ब्याहना है? मेरी लुगाई की एक बहन—'

'नहीं—नहीं। सुन तो सही। एक स्त्री का पता चाहिए।'

नेरा ने सिर घुमाया और कानों पर हाथ दे दिए।

'तू...तू ऐसी बात मत कर।'

'क्यों?'

'मैं....मैंने तो व्रत ले लिया है।'

'कैसा व्रत?'

'पराई स्त्रियों की बात न करने का।' नेरा बोला।

'अरे पागल! मुझे पराई स्त्री की बात नहीं करनी है,सिर्फ दिखानी

'यह तो खोजना पड़ेगा।'

'प....प....परन्तु काक जान जायँगे तो ?'

'जानेंगे कैसे ? हम पट्टणी योद्धा हैं। यों डर जायँगे ?'

'अ...अरे ! ड....डरने की तो बात ही क्या है ?'

'और तू तो बड़ों-बड़ों के होश ठिकाने ला देने वाला है।'

'तो...तो मैं ना थोड़े ही कहता हूं।'

'तो अब तैयार हो जा।'

नेरा तलवार बाँधने लगा। 'किन्तु किस प्रकार खोजूँगा ?'

'य...यह काम मेरा ! वहाँ—वहाँ अविमुक्तेश्वर का देवल है—'

'वहीं।' हँसकर हमीर ने कहा।

'वाह मित्र ! अब भी तेरी बुद्धि वैसी-की-वैसी है।'

'ऐ....ऐसा कहते हैं कि और भी तीव्र होती जा रही है।'

'ठीक ही तो है। मोटा तो केवल शरीर होता है।'

'हो—हो—हो—'कह नेरा ने पगड़ी सिर पर रखी और दोनों सैनिक वहाँ से निकले।

: १३ :

अपरिचित की खोज में

हाथ-में-हाथ लिये, हंसते हुए, पथ में आते-जाते लोगों की हंसी उड़ाते हुए दोनों चले जा रहे थे। इनके विचार से वे सभी स्त्री-पुरुष पाटण के अतः इनके भी दास थे, इनको प्रसन्न करने के लिए ही उन सभी ने जन्म लिया था।

नेरा पालथी मारकर बैठ गया और चारों ओर भयंकर कटाक्षों की वर्षा करने लगा; हर आने-जाने वालों के साथ आँखमिचौनी करने और हँसने लगा। उसका जीवन निम्न वर्ग के लोगों में ही व्यतीत हुआ था। अतः उनसे सीखी रीतियोंकी वह यहाँ भी परीक्षा करने लगा।

अन्त में हमीर ने भी आते-जाते पर टीका करना आरंभ कर दिया; टीका करते ठट्ठा करना आरम्भ कर दिया; ठट्ठा आरम्भ होते ही नेरा अपना नियंत्रण खो बैठा। वह ज़ोर-ज़ोर से पानी भरती हुई स्त्रियों के लक्षणों का विश्लेषण करने लगा।

इन दो अपरिचित पुरुषों को इस प्रकार व्यवहार करते देखकर कुएं पर पानी भरने वाली स्त्रियों में घबराहट फैल गई; कुछ ने पानी भरा और कुछ बिना भरे ही वहाँ से चलने लगीं।

'ये....ये तो सब चलीं—' नेरा बोला।

'जाने दे।' उकताकर हमीर ने उत्तर दिया।

'कि....कि...किन्तु तेरी अप्सरा तो आई नहीं।'

'कौन जाने कब आयगी।'

'आ....ईं ईं ईं। ठुमक—'कहकर नेरा ने एक युवती की ओर देखकर आँख मीच दी। वह युवती गर्व से ठुमककर रुक गई और क्रोध से पीछे घूमी।

'क्या—क्या हुआ?' नेरा बोला।

वह युवती घबराई और वैसे ही क्रोध में पीछे घूमी। सामने शिव-स्तुति करके मंदिर से निकलते हुए मणिभद्र महाराज मिल गए। वह दुर्गपाल के एक आश्रित की पत्नी थी अतः मणिभद्र को देखकर उसमें साहस आया; वह खड़ी हो गई। थोड़ी दूर पर लौटती हुई एक दो स्त्रियाँ भी खड़ी हो गईं।

'भाई! उधर दो हरामखोर बैठे हुए हैं उन्हें निकाल बाहर करो। वे हमारे साथ ठट्ठा कर रहे हैं।'

'अच्छा?' मणिभद्र ने पूछा।

मणिभद्र उछल पड़ा। उसने दाँत कटकटा कर हमीर की नाक पर ज़ोर से मुष्टिप्रहार कर दिया।

हमीर सशक्त योद्धा था। उसने धक्का मारकर मणिभद्र को चबूतरे के नीचे गिरा दिया और धरती पर पड़े हुए मणिभद्र को ठोकर मारने लगा। वह मुंह से गालियाँ भी देता जा रहा था। पीछे नेरा खड़ा-खड़ा ज़ोर-ज़ोर से हँस रहा था।

इस गड़बड़ से आसपास से कुछ लोग इकट्ठे हो गए।

भूमि पर पड़े हुए मणिभद्र को हमीर ने तीसरी ठोकर मारी ही थी कि अविमुक्तेश्वर के दर्शन करके रेवापाल बाहर आया और उसने भागती हुई स्त्रियों को देखा; द्वार में खड़े, घबराए हुए नागरिकों को देखा, भूमि पर रौंदाते हुए ब्राह्मण को देखा और विदेशी पट्टणी सैनिक को पाद-प्रहार करते देखा।

उसका कठोर मुख और भी कठोर हो गया, उसकी आंखों में बिजली चमक उठी और पलक मारते वह दौड़ पड़ा। उसके हाथ में तलवार चमक उठी और हमीर की टांग इस प्रकार कटकर दो टुकड़े हो गई जिस प्रकार केला कटता है। हमीर चक्कर खाकर भूमिसरत् हो गया। दर्शकों में हाहाकार मच गया। नेरा पिछली गली से सिर पर पांव रखकर भागा।

'महाराज, आप कौन हैं ?' रेवापाल ने मणिभद्र से पूछा।

'बापू !' पिटाई से हांपते हुए मणिभद्र ने उत्तर दिया, 'दुर्गपाल महाराज के यहां रहता हूं।'

'अपने दुर्गपाल से कहना कि विदेशी हरामियों को घुसाकर क्या लाभ उठाया ?' कड़वाहट से रेवापाल बोला। 'और उसके सैनिकों से कहना कि इसे उठाकर मेरे यहां ले जायं।'

'किसके यहां ?'

'तेजपाल नगरसेठ के यहां।'

इतना कहकर रेवापाल मन्दिर में चला गया।

मणिभद्र उबल पड़ा। उसने दाँत कटकटा कर हमीर की नाक पर ज़ोर से मुष्टिप्रहार कर दिया।

हमीर सशक्त योद्धा था। उसने धक्का मारकर मणिभद्र को चबूतरे के नीचे गिरा दिया और धरती पर पड़े हुए मणिभद्र को ठोकर मारने लगा। वह मुंह से गालियाँ भी देता जा रहा था। पीछे नेरा खड़ा-खड़ा ज़ोर-ज़ोर से हँस रहा था।

इस गड़बड़ से आसपास से कुछ लोग इकट्ठे हो गए।

भूमि पर पड़े हुए मणिभद्र को हमीर ने तीसरी ठोकर मारी ही थी कि अविमुक्तेश्वर के दर्शन करके रेवापाल बाहर आया और उसने भागती हुई स्त्रियों को देखा; द्वार में खड़े, घबराए हुए नागरिकों को देखा, भूमि पर रौंदाते हुए ब्राह्मण को देखा और विदेशी पट्टणी सैनिक को पाद-प्रहार करते देखा।

उसका कठोर मुख और भी कठोर हो गया, उसकी आंखों में बिजली चमक उठी और पलक मारते वह दौड़ पड़ा। उसके हाथ में तलवार चमक उठी और हमीर की टांग इस प्रकार कटकर दो टुकड़े हो गई जिस प्रकार केला कटता है। हमीर चक्कर खाकर भूमिसरत् हो गया। दर्शकों में हाहाकार मच गया। नेरा पिछली गली से सिर पर पांव रखकर भागा।

'महाराज, आप कौन हैं?' रेवापाल ने मणिभद्र से पूछा।

'बापू!' पिटाई से हांपते हुए मणिभद्र ने उत्तर दिया, 'दुर्गपाल महाराज के यहां रहता हूं।'

'अपने दुर्गपाल से कहना कि विदेशी हरामियों को बुलाकर क्या लाभ उठाया?' कड़वाहट से रेवापाल बोला। 'और उसके सैनिकों से कहना कि इसे उठाकर मेरे यहां ले जायं।'

'किसके यहां?'

'तेजपाल नगरसेठ के यहां।'

इतना कहकर रेवापाल मन्दिर में चला गया।

'हाँ। किसी को पानी भरने ही नहीं देते।' दूर खड़ी हुई स्त्रियों में से एक ने निकट आकर कहा।

'ठहरो, मैं अभी निकालता हूँ।' कहकर मणिभद्र धीरे-धीरे चबूतरे पर होकर पीछे की ओर गया। 'ए भाई ! कौन हो तुम लोग ? यहाँ किस काम से बैठे हो ?'

हमीर ने मणिभद्र को पहचान लिया और ओछे स्वर में पूछा—'ए महाराज, तू कहाँ से ?'

'कौन आँखड़ भाई का गण, यहाँ कैसे बैठा है ? और इन सबकी हँसी क्यों उड़ा रहा है !'

अपने स्वामी के सामने हमीर मणिभद्र का सम्मान करता था किंतु इस समय वह आपे से बाहर हो गया।

'ए भूदेव ! तू अपना काम कर; हमारे बीच में क्या पड़ता है ?' हमीर ने कहा।

'तुम इन सभी को छेड़ रहे हो इसलिए।'

'ब....ब्राह्मण ! ये सभी हमें छे....छे....छेड़ती हैं सो ?' नेरा बोला।

साधारणतः मणिभद्र घी के समान नम्र था किन्तु भटराज काक का साला होने के कारण उसे अपने सम्मानकी रक्षा करने के लिए विवश होना पड़ा।

'सावधान।' मणिभद्र क्रोधित होकर बोला, 'स्त्रियों के सम्मुख यदि निर्लज्जता दिखाई तो !'

हमीर अधीर तो था ही, बड़ी कठिनाई से अपने को शांत रख रहा था; किन्तु इस बार वह फट पड़ा। वह एकदम उठा और मणिभद्र की फनरटी पकड़कर कहा—'जाता है कि नहीं ब्राह्मण !'

हमीर का सीना और मणिभद्र के प्रति होता हुआ अन्याय देखकर स्त्रियाँ चीख-चीखकर भागने लगीं। नेरा खड़ा-खड़ा ज़ोर-ज़ोर से हंसने लगा।

मणिभद्र उचल पड़ा। उसने दाँत कटकटा कर हमीर की नाक पर ज़ोर से मुष्टिप्रहार कर दिया।

हमीर सशक्त योद्धा था। उसने धक्का मारकर मणिभद्र को चबूतरे के नीचे गिरा दिया और धरती पर पड़े हुए मणिभद्र को ठोकर मारने लगा। वह मुंह से गालियाँ भी देता जा रहा था। पीछे नेरा खड़ा-खड़ा ज़ोर-ज़ोर से हँस रहा था।

इस गड़बड़ से आसपास से कुछ लोग इकट्ठे हो गए।

भूमि पर पड़े हुए मणिभद्र को हमीर ने तीसरी ठोकर मारी ही थी कि अविमुक्तेश्वर के दर्शन करके रेवापाल बाहर आया और उसने भागती हुई स्त्रियों को देखा; द्वार में खड़े, घबराए हुए नागरिकों को देखा, भूमि पर रौंदाते हुए ब्राह्मण को देखा और विदेशी पट्टणी सैनिक को पाद-प्रहार करते देखा।

उसका कठोर मुख और भी कठोर हो गया, उसकी आंखों में बिजली चमक उठी और पलक मारते वह दौड़ पड़ा। उसके हाथ में तलवार चमक उठी और हमीर की टांग इस प्रकार कटकर दो टुकड़े हो गई जिस प्रकार केला कटता है। हमीर चक्कर खाकर भूमिसात् हो गया। दर्शकों में हाहाकार मच गया। नेरा पिछली गली से सिर पर पांव रखकर भागा।

'महाराज, आप कौन हैं?' रेवापाल ने मणिभद्र से पूछा।

'बापू!' पिटाई से हांपते हुए मणिभद्र ने उत्तर दिया, 'दुर्गपाल महाराज के यहां रहता हूं।'

'अपने दुर्गपाल से कहना कि विदेशी हरामियों को घुसाकर क्या लाभ उठाया?' कड़वाहट से रेवापाल बोला। 'और उसके सैनिकों से कहना कि इसे उठाकर मेरे यहां ले जायं।'

'किसके यहां?'

'तेजपाल नगरसेठ के यहां।'

इतना कहकर रेवापाल मन्दिर में चला गया।

: १४ :

रेवापाल और आम्रभट

नेरा तोतला गली में बहुत दूर नहीं गया था, अतः जब गड़बड़ी कम हो गई तो वह धीरे-धीरे लौटकर आया और गर्दन लम्बी करके देखने लगा। रेवापाल को मन्दिर से दर्शन करके लौट जाते देखकर उसमें साहस आया।

रेवापाल के अन्तिम शब्दों से वह समझ गया था कि आम्रभट नगरसेठ के यहीं ठहरे होंगे। उसने सोच लिया था कि भट की पदवी तो हाथ से निकल चुकी किन्तु रेवापाल के अन्तिम शब्दों ने उसमें पुनः आशा का संचार कर दिया। हमीर आम्रभट का विश्वासपात्र सैनिक था। उसकी रक्षा करने से आम्रभट प्रसन्न होंगे। अवसर भी है—और उसके जैसे समर्थ योद्धा को वे अपने ही पास रख लें यह भी सम्भव है। इतना यदि हो जाय तो फिर भट बनना तो बहुत ही सरल है। यह विचार कर उसने अपनी पगड़ी उतारकर एक पट्टी फाड़कर हमीर के पांव में बांधी और उस बेसुध सैनिक को कन्धे पर रखकर वह पिछले मार्ग से, स्थूल शरीर से जितनी गति बन सकती थी उससे, तेजपाल सेठ के निवास-स्थान की ओर चला।

उधर आम्रभट की अकुलाहट का पार न था। अभी तेजपाल सेठ लौटे न थे, रेवापाल का मुँह तक उसे अच्छा न लगता था किन्तु वह भी बाहर गया हुआ था। उदा महेता का पुत्र और भृगुकच्छ का भावी दुर्गपाल इस प्रकार प्रतीक्षा करता रहे, घर में सिवा नौकरों के कोई आवभगत करने वाला न हो—इस विचार से उसके आत्म-सम्मान को बड़ी चोट पहुँची। हमीर भी अब तक न लौटा था। सांध्या बृहस्पति के यहाँ में एक अलौकिक सुन्दरी की खोज कर लेना उसके विचार से एक साधारण बात थी, उस पर हमीर ने इतना समय लगा दिया इससे उसके क्रोध का पारावार न रहा।

वह तकिए के सहारे लेटा, झूले पर बैठा, खिड़की में खड़ा हुआ, किन्तु हमीर न लौटा। अन्त में उस सुन्दरी के मुखारविन्द को अपनी आंखों के सामने लाने की चेष्टा की किन्तु जैसे-जैसे धीरज घटता जाता था वैसे-वैसे यह चेष्टा भी निष्फल होती जाती थी।

अन्त में सोते-सोते वह अधीर होकर करवटें बदलने लगा।

'आ....आ....आम्रभट महाराज हैं ?' एक अपरिचित स्वर उसके कानों से टकराया। वह तुरन्त उठ खड़ा हुआ और खिड़की से बाहर एक अत्यन्त मोटे पुरुष के कन्धों पर पड़े बेसुध हमीर को देखा। वह फीका पड़ गया। एकदम सीढ़ियाँ उतरकर वह नेरा के निकट गया।

'क्या हुआ ? कैसे हो गया ?' उसने अधीरता से पूछा।

नेरा समझ गया कि यही आम्रभट हैं। उसने हमीर को कन्धे पर से उतारकर धरती पर लिटा दिया और झुक-झुककर प्रणाम करने लगा।

'भ....भ....भटजी महाराज की जय हो ! बा....बापू ! मैं नेरा हूँ—पाटण की सेना का।'

'हमीर को क्या हुआ ?'

नेरा को लगा कि यहां चतुराई से काम लेना अत्यन्त आवश्यक है। बात बनाकर उसे सत्य का रङ्ग दे देने में तो वह कुशल था।

'म...,म....महाराज ! लाट और पाटण के कुछ मनुष्यों में झगड़ा हो गया। ऐ....ऐसा हुआ कि बस कुछ कहना नहीं ! बेचारा हमीर भाई उसकी लपेट में आ गया। म....महाराज ! मैं तो मैं जा पहुँचा नहीं तो हमीर भाई कभी के यम के द्वार पहुंच गए होते। हा हा हा !' वह बड़ा प्रसन्न होकर हँसते मुंह खड़ा रहा।

आम्रभट की भवें तन गईं। उसकी आंखों में रक्त उतर आया।

'लाट के सैनिकों ने मेरे हमीर पर हाथ उठाया ?' उसने क्रोधित होकर पूछा।

'बा....बा....पू, हंसी-हँसी में, निरर्थक ही, हँसते-बोलते बात बढ़ गई।'

'कहाँ?'

'सां....सां....बा—' नेरा इतना ही बोल पाया।

'सांबा बृहस्पति के बाड़े में?' मुट्ठी भींचकर आम्रभट ने प्रश्न किया।

'ब....ब....हाँ....तनिक दूर....गांव के उस ओर।'

'सावधान, झूठ बोला तो!' पांव पटककर आम्रभट बोला, 'मेरे सैनिक पर किसने हाथ उठाया?'

'बा...बापू' नेरा ने हाथ जोड़कर कहा।

'उत्तर दे, किसने हाथ उठाया?'

अंदर आते हुए रेवापाल का कठोर स्वर आया—'मैंने।'

नेरा काँपकर दो पग पीछे हट गया। आम्रभट चकित होगया। प्रातःकाल वह रेवापाल को समझ नहीं पाया था; और इस समय उसके मुंह से ये शब्द सुनकर उसकी क्रोधी प्रकृति को आघात लगा। इस शान्त और कम बोलने वाले पुरुष के रूखेपन से उसे क्षोभ होता था।

'तुमने?'

नेरा रेवापाल को देखकर मुंह बाए दूर खिसकने लगा।

'हां।'

'क्यों?'

'आपके सैनिक ने एक ब्राह्मण का अपमान किया था।' कहकर रेवापाल जाने को उद्यत हुआ। आम्रभट के अंतर से ज्वाला भभक उठी। उदा महेता का पुत्र, भृगुकच्छ का भावी दुर्गपाल; और अपमान-भर कर देने के कारण उसके सैनिक को मार दिया! वह वेग से रेवापाल के पास गया और मानों ललकार उसके सामने खड़ा होगया।

रेवापाल ने शान्ति से कुछ समय तक कठोर दृष्टि से उसकी ओर देखा और फिर तिरस्कार से कहा—'आम्रभट जी! तुमसे मिलने से

कोई लाभ नहीं होगा।' आम्रभट समझ न पाया कि क्या कहे। ऐसा मालूम होता था मानो निष्फल क्रोध के कारण उसके मुँह में झाग भर आयँगे।

'मेरे...मेरे....नौकर की टांग काट दी।' कुछ समय पश्चात् वह बोला।

'पांव ?' रेवापाल ने कठोर और अपमान-भरे स्वर में कहा, 'पट्टणी उच्छृंखल बनेंगे तो सिर भी काटना पड़ेगा।' रेवापाल के होंठ और भी कठोर होगए।

आम्रभट ने चारों ओर रक्त-पिपासित दृष्टि से देखा। उसे ध्यान आया कि उसके हाथ में हथियार नहीं हैं। लाट के नगरसेठ के पुत्र के साथ सम्भलकर व्यवहार करने की उसके पिता की चेतावनी स्मरण आई; वह कुछ ठंडा पड़ा।

'भटजी' रेवापाल ने बात पूरी की, 'आप मेरे पिता के अतिथि हैं; अपने मार्ग जाइए।'

आम्रभट को कुछ न सूझ पड़ा। अन्त में वह बोला, 'मैं लाट का दुर्गपाल हूँ। मैं तुम्हारी धमकियों से डरूंगा नहीं।'

'पाटण के दुर्गपाल की धमकी मैं भूलता नहीं।'चमकती हुई आँखों से रेवापाल ने कहा और तिरस्कार से आगे बढ़ गया। आगे बढ़कर जैसे ही वह घूमा वैसे ही उसे और आम्रभट, दोनों को एक साथ ही चुपचाप खड़ा सुनता हुआ काक दिखाई पड़ा। उसका मुख गंभीर था।

'रेवाभाई !' उसने बड़ी मिठास से पूछा, 'क्या हुआ ?'

'भटराज !' आम्रभट शीघ्रता से बोला। उसमें साहस का संचार हुआ।

'भृगुकच्छ आते ही मेरा—पाटण का अपमान हो ! मेरे हमीर का पाँव काट डाला !'

'रेवाभाई ने ?'

'हाँ। यह अपमान मैं कैसे सहन करलूं ?'उछलकर लौटते हुए क्रोध

से आम्रभट ने कहा । काक ने चुपचाप रेवापाल की ओर देखा ।

'पूछो अपने मुहल्ले की स्त्रियों को और अपने मणिभद्र को !' तिरस्कार से रेवापाल बोला ।

काक की आँखें दमक उठीं । आम्रभट फीका पड़ गया । उसे नेरा की बात याद आई । अवश्य उस स्त्री की खोज करते हुए ही हमीर को यह शिक्षा मिली है । तुरंत उसने इस सबको ढँक देने का निश्चय किया । पूछा, 'हैं ?'

काक की दृष्टि नेरा तोतला पर पड़ी । उसने कठोरता से पूछा, 'तू यहां क्या कर रहा है ?'

नेरा कांप उठा । वह दुर्गपाल से भली भाँति परिचित था । उसने हाथ जोड़ लिए, 'आ....आ...पू, म...म—'

'भटराज !' आम्रभट ने कहा, 'हमीर को उठाकर यही लाया है ।' काक ने रेवापाल की ओर देखा ।

'यह भी वहीं था ।' उसने उत्तर दिया ।

एक छलांग मारकर काक नेरा के निकट गया और उसका कान पकड़कर मसल दिया ।

'नेरा !' काक ने पूछा, 'क्या हुआ था ?'

'आ....पू !' उसने निःसहाय दृष्टि से आम्रभट की ओर देखा' किन्तु उधर से कुछ होता न देखकर पुनः काक की ओर देखा । काक की आंखों में अंगार भड़क रहे थे ।

'म....म....महाराज !' नेरा बोला, 'हमीरभट ने ए....एक ब्राह्मण को ठो...ठोकर मारी और रे...रेवाभाई ने उसकी टांग काट दी ।'

'ठोकर क्यों मारी ?'

'ब्राह्मण ने हमीर को गाली दी ।'

काक ने कठोर होकर रेवापाल की ओर देखा ।

'रेवाभाई ! गाली क्यों दी ?'

'हमीर पानी भरनेवालियों के साथ ठट्ठा कर रहा था ।'

आम्रभट का हृदय कांप उठा।

'और तू भी ?' काक ने नेरा से प्रश्न किया।

'नहीं—नहीं—नहीं—आ—'

'नेरा !' काक की वाणी में भरी रौद्रता से आम्रभट भी सहम गया; 'जो फिर मेरे हाथ पड़ा तो यह सिर धड़ पर नहीं रहने का। सोमेश्वर !'

'जी।' कहकर बाहर खड़ा हुआ सुभट अन्दर आया।

'इस हरामखोर को लात मारकर बाहर निकाल दो।'

'जो आज्ञा' कह सोमेश्वर ने आंखों से ही नेरा को आज्ञा दी। नेरा धीरे-धीरे बाहर चला गया।

'भटराज !' आम्रभट ने धीरे-से काक से कहा, 'इस बिचारे को—'

काक आम्रभट की ओर घूमा, 'आम्रभट, मालूम है यह कौन है ? यह पाटण का नीच-से-नीच सैनिक है।'

'किन्तु मेरे हमीर को यही लाया था।'

'नहीं लाता तो कोई अनर्थ नहीं हो जाता। रेवाभाई ने तो टाँग काटी; मैं होता तो सिर काट देता।'

आम्रभट कुछ भी न बोल सका। काक कुछ नरम पड़ा—'भाई ! इस देश में तुम विदेशी हो। यहां के लोगों में दुर्भावना न फैलनी देना चाहिए।'

रेवापाल ने तिरस्कार से एक बार काक की ओर देखा और घर में चला गया। काक आम्रभट को लेकर ऊपर गया।

'आम्रभट ! प्रस्थान करने से पहले एक सलाह दूं ?'

'हां !' लज्जित होकर आम्रभट बोला।

'लाट और गुजरात भिन्न हैं, यह बात यहां के लोगों के हृदय से निकाल देनी है। नहीं तो—'

'क्यों ?'

'क्यों ? तुम्हें मालूम नहीं कि ध्रुवसेन के अनुयायी केवल अवसर की प्रतीक्षा में बैठे हुए हैं।'

'क्या कह रहे हैं ?' हँसकर आम्रभट बोला।

काक के मुख पर गम्भीरता छा गई।

'आम्रभट ! ऐसी बातों में हंसोगे तो किसी दिन पाटण को रोना पड़ेगा। तुमने आते ही रेवाभाई का अपमान किया। मालूम है यह कौन है ?'

'हां।'

'नहीं, मालूम नहीं है। होता तो इतनी छोटी-सी बात पर उससे भिड़ न पड़ते। आम्रभट ! यह जितना सीधा है उतना निर्जीव नहीं। लाट की राजसत्ता अवश्य जयसिंहदेव महाराज के हाथ में है; किन्तु उसकी आत्मा और उसका उत्साह दोनों रेवापाल में हैं। यह लाट के गौरव का अवतार माना जाता है। इसका अपमान होने पर सम्पूर्ण देश गरज उठेगा।'

'तो यह पाटण का शत्रु है ?'

'चाहो तो यही मान लो। किन्तु इसे छेड़ने आओगे तो लाट खो बैठोगे। इससे बिगाड़ना मत। नहीं तो इतने वर्षों का सब किया-कराया धूल में मिल जायगा।' काक ने कहा, 'अब मैं जाऊंगा। तुम्हें और नगरसेठ को मेरे यहां भोजन करना है इसलिए नगरसेठ के आते ही चले आना।'

: १५ :

काक की चिंता

काक ने अपनी स्वाभाविक विचक्षणता से अनुभवहीन आम्रभट का अविचारित [illegible] और रेवापाल का तिरस्कार देख लिया था। उसके अनुभव [illegible] होगा। उसकी एक

हलकी झांकी उसे दिखाई दे गई और उसके दूरदर्शी मस्तिष्क में एक चिन्ता घर कर गई।

इस चिंता द्वारा निर्मित भयंकर चित्र को देखकर वह कॉप गया। अपनी मंजरी को यहाँ अकेली छोड़कर जा रहा था। वह मर जाय या लाट में आँधी आ जाय तो उसका क्या होगा? उदा महेता के हाथों कटु अनुभवों का आस्वादन उसके सामने आ गया। फिर बेचारी को पुनः वैसा ही सहन करना पड़े तो कौन इसकी सहायता करेगा?

आम्रभट को या पट्टणी भटराज माधव को सौंपना सम्भव नहीं था; और लाट में ऐसा कोई भी न था कि विपत्ति के समय उसे आश्रय दे।

क्षण-भर के लिए काक की आँखों के सामने अंधेरा छा गया। वर्षों तक उसने न जाने कितने आदर्शों का पालन किया था, उन्हें प्राप्त करने के लिए कठिनाइयाँ झेली थीं; और इस समय तो इन सबके फल मीठे ही लग रहे थे। उसकी प्रियतमा सुख से जीवन-यापन कर रही थी; उसका लाट देश परतंत्र होने पर भी गौरवशाली था; उसके स्वामी जयसिंहदेव की आन के साथ-ही-साथ उसकी ख्याति भी चारों दिशाओं में फैल गई थी।

किन्तु ये सब इस समय अवास्तविक लगने लगे। सोरठ जाकर यदि कहीं वह बन्दी बना लिया जाय या प्राण से हाथ धो बैठे तो मंजरी दुःखी और निराधार हो जाती है; लाट में दंगे, क्लेश, अनीति, विजेता की क्रूरता और पराजित के दुःख पुनः उमड़ पड़ते हैं और 'फूलखरणी' के जलने के बाद जैसे उसकी राख मात्र धूल में मिलती है वही दशा उसकी अपनी कीर्ति की हो सकती है; ऐसे परिणाम की समस्त सामग्री इस समय तैयार थी। जयदेव को उससे द्वेष था; उदा इस समय राजा का विश्वासपात्र बनकर वैर का बदला लेने के अवसर की ताक में था; विनाश के छोर पर पहुंची राणकदेवी उसे हारते हुए का सहायक बनने का निमन्त्रण दे रही थी! यहां से वह जा रहा था और

लाट की कठिन समस्या आम्रभट जैसे अभिमानी, अनुभवहीन, मूर्ख व्यक्ति के हाथों में छोड़नी पड़ रही थी।

पल भर के लिए उसके साहसी हृदय में निराशा भर गई, पल-भर के लिए जयसिंहदेव की आज्ञा का अनादर करने की बात मन में आई। दूसरे ही क्षण वह समझ गया कि भृगुकच्छ से जाने के सिवा अन्य कोई चारा नहीं है।

वह बाहर निकलने ही वाला था कि घूमकर फिर नगरसेठ के घर में गया।

'रेवाभाई ऊपर हैं?' उसने एक स्त्री से पूछा।

'हां। थोड़ी ही देर हुई कमरे में गये हैं।'

बचपन में उसने और रेवापाल ने सम्पूर्ण घर में रौंद मारा था इसलिए वह तुरन्त रेवापाल के कमरे की ओर चला गया। रेवापाल का कमरा सब से दूर घर के छोर पर था।

उसने सीढ़ी चढ़ते-चढ़ते आवाज़ दी 'रेवाभाई!' कोई उत्तर नहीं आया। वाक् लांघकर कमरे में गया तो देखा कि वह खाली था। उसने गर्दन लम्बी कर द्वार के बाहर देखा तो भी कोई न दिखाई पड़ा। उसने फिर आवाज़ दी किन्तु कोई उत्तर न आया।

वाग्भट विस्मय में पड़ गया। रेवापाल घर के लोगों से बहुत बैठता-बोलता नहीं था। द्वार से बाहर निकला न था। फिर भी, उसका दुपट्टा और उसकी पगड़ी कमरे में नहीं थे।

[illegible] की ओर गया और चकित हो रहा। पीछे की ओर उतरने के लिए एक सीढ़ी लगी हुई थी। वह [illegible] खिड़की से निकल गया और बाहर देखा।

[illegible] में [illegible] थे और [illegible] थी। [illegible] — [illegible] सुनाई [illegible] थी। यदि [illegible] में न

होता अथवा वहां का दुर्गपाल न होता तो आगे बढ़कर यह निश्चय कर लेता कि रेवापाल किससे बातें कर रहा है। इस समय आगे बढ़ने से लाभ न होगा, यह वह जानता था। इतना तो स्पष्ट था कि किसी सबल कारण के बिना रेवापाल जैसा मनुष्य इस प्रकार पीछे के मार्ग से जाकर बात नहीं करता। ऐसा लगता था कि रेवापाल ने कोई दांव खेलना प्रारम्भ किया है। पाटण की सत्ता नष्ट करने के सिवा और कोई दांव रेवापाल खेले ऐसी सम्भावना तो थी ही नहीं। इतने में पीछे से पग-ध्वनि सुनाई दी। काक सावधान हो गया और द्वार की ओर बढ़ा। द्वार तक पहुंचने पर एक स्त्री मिली।

'वेनां भाभी!'

रेवापाल की पत्नी वेनां चमकी; 'कौन काक! तू—तुम यहां?'

'हां मैं ही!' काक हंसकर बोला, 'यह घर कहीं छूट सकता है!'

वेनां पतली और लम्बी थी। रेवापाल की शुष्क, घर संसार की नौका पर बैठकर वह सहनशील और एकनिष्ठ बन गई थी। जितना अमानुषी रेवापाल था उतनी ही वह भी थी। उसने प्रेम और आदर, रास-रंग, इच्छा-तृष्णा, सब कुछ भुला दिए। पति की सेवा-भर के लिए वह जीवित थी। दिनों तक रेवापाल उससे नहीं बोलता था और न वही बोलनेका प्रयत्न करती थी। यदि घण्टों तक रेवापाल न सो पाता तो वह बिना पलक झुकाए पलंग के पाएके पास बैठी रहती थी। कई बार रेवापाल उपवास करता तो वेनां अन्न-जल का त्याग कर देती। जब से जंबूसर गिरा तब से रेवापाल ने काक से मिलना-जुलना बन्द कर दिया था और तब से वेनां ने भी काक से बोलना बन्द कर दिया था। इस समय वेनां चमक उठी और उससे न बोलने का व्रत भंग हो गया।

'तुम कैसे?'

'मुझे भाई से और तुमसे भेंट करनी थी।'

'मुझसे?' करुण हसी हंसकर वेनां बोली।

'हां ! अच्छा हुआ, भेंट हो गई। तुम्हारी बहन को तुम्हारे हाथों सौंपना है।'

'मुझे ? मैं क्या कर सकती हूं ? और तुम—'

'मैं सोरठ जा रहा हूँ। इसीलिए भाई को और तुमको सौंपना है।'

मैना ने गर्दन हिलाई—'मैं कुछ नहीं जानती। तुम जानो तुम्हारे भाई जानें।'

'किन्तु भाई हैं कहां ? इसीलिए तो मैं आया हूँ। अभी वे कहां मिलेंगे ?'

'तुम कब जाओगे ?'

'कल। आज संध्या को मिल सकेंगे ?'

'संध्या को तो दर्शन करने जायंगे।'

'गंगानाथ महादेव पर ध्रुवसेन सेनापति के दर्शन करने जाते हैं न ? यही ठीक है। कहना संध्या को उनसे वहीं मिलूंगा। मैंने जो कहा वह कहोगी न ?'

'यदि वे पूछेंगे तो ? नहीं तो, नहीं।'

काक इस स्त्री की त्यागवृत्ति पर विचार करने लगा और चुपचाप प्रयाण कर विदा हुआ। आने वाली विपत्ति के तारों की अस्पष्ट झंकार उसके कानों से टकराने लगी।

: १६ :

आम्रभट की आंखों के सामने अंधेरा छा जाता है

आनन्द बहुत बेचैन हो गया। न जाने कैसे-कैसे आनन्द उठाने की इच्छा लेकर वह भृगुकच्छ आया था; किन्तु यहाँ तो पाँव धरते ही नौकर खोया, अपमान उठाया और हृदय कोई अपरिचित हर ले

गई। इतनी-सी उम्र में इतने दुखों की इतनी लंबी परम्परा का अनुभव उसने नहीं किया था।

इतने ही में नगरसेठ आगए।

'कहो मेरे खंभात के मंत्री के चिरजीव !' तेजपाल सेठ ने कटाक्ष-भरी आवाज़ में कहा, 'मेरे तो भाग्य खुल गए।' उन्होंने आम्रभट का आलिंगन किया, 'मुझे तो प्रातःकाल ही से लग रहा था कि आज मेरे भाग्य खुलने वाले हैं। कहो, उदा महेता की कृपा तो है न ?'

आम्रभट को यह मनुष्य भी समझ में न आया। उसके शब्द मिश्री जैसे थे। उसकी वाणी में कटाक्ष था। वह गंभीर बात कर रहा है या ठट्ठा कर रहा है यह भी उसके मुखसे समझा नहीं जा सकता था। वह एक कानी आँख के कोने से बराबर आम्रभट को देखता रहता था।

'अरे ए शंकरा !' चिढ़कर उन्होंने अपने दास को पुकारा, 'भटजी की कुछ आवभगत की ? मरभुखे गाँव के दासों में एक कौड़ी की भी तो समझ नहीं होती। जाने कैसे अवकाश के समय में बनाये गए थे ! कहिए, भटजी ! चित्त तो प्रसन्न ? हमारे यहाँ तो पाटण के आनंद नहीं हैं।'

'मुझे तो आपका भृगुकच्छ बहुत भाया।'

'फिर भी पाटण की बराबरी कहाँ ?' काक भटजी तो आज चले। इनके भी पाँव में भंवरी लगी है।' नगरसेठ ने कहा।

'हाँ, महाराज ने बुलाया है।'

'क्यों नहीं ?' तेजपाल ने पुनः अस्पष्ट स्वर में कहा, 'ऐसे व्यक्ति महाराज के निकट न हों तो कहाँ हों? महाराज की कीर्ति भी तो कितनी है ! संसार में मनुष्य से लेकर पशु तक उन्हींका कीर्ति-गान किया करते हैं।'

आम्रभट देखता रहा। फिर कहा, 'हाँ।'

'चलो अब स्नान कर लो। दुर्गपाल के यहाँ आज बहुत समय

लगेगा। मैंने तो प्रातःकाल ही स्नान कर लिया था। शीघ्रता करो, नहीं तो ब्राह्मण के घर का अन्न ठंडा हो जायगा।'

इस तीक्ष्ण वाणी का प्रसाद आस्वादन कर भौंचक्का-सा आम्रभट नहा-धोकर तैयार हुआ और नगरसेठ के साथ पालकी में बैठकर दुर्गपाल के निवासस्थान के लिए निकला।

साम्बा बृहस्पति के बाड़े में से निकलते समय आम्रभट का चित्त प्रातःकाल वाली रमणी में रम गया और नगरसेठ की बातों में उसका ध्यान न रहा। यह अद्भुत रमणी कौन होगी? किसके घर की शोभा होगी? उसके नयनों को पुनः कब पवित्र करेगी?

एकाएक ज्योंही पालकी ने बाड़े में प्रवेश किया त्योंही आम्रभट का श्वास ऊपर-का-ऊपर और नीचे-का-नीचे रह गया। दो नन्हें बच्चे दौड़कर निकट के एक घर में प्रवेश कर रहे थे। उनमें से एक लड़की की एड़ी पर जाकर उसकी दृष्टि ठहर गई। उसे प्रातःकाल मंदिर के निकट देखी एड़ियों का स्मरण हो आया। दुर्गपाल के घर में देखी एड़ियां भी याद आईं। अब ये फिर वही एड़ियाँ—सुन्दर, गुलाबी और चित्तभेदक! एड़ियों से उसने अपनी दृष्टि ऊपर उठाई। इन एड़ियों में से एक रूपवती कन्या अंकुरित हो रही थी। 'आश्चर्य!' उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। किस प्रकार उस सुन्दरी ने उसका हृदय हर लिया था कि जहां देखो वहां वही वह दृष्टिगोचर होती थी।

इतने में काक का निवासस्थान आ गया। पालकी से नीचे उतरते ही काक और भटराज माधव से उनकी भेंट हुई। माधव नागर दादाक महेता का भतीजा था और बहुत वर्षों से त्रिभुवनपाल का मित्र और सेवक था।

राज्यकार्य-भार की, भृगुकच्छ के उपद्रव की, ध्रुवसेन के समर्थकों की, पाटण की राजनीति और खेंगार की पराजय की बातें हुईं। सबने भोजन किया। वापस घर लौटने का समय हुआ। किन्तु आम्रभट का चित्त इनमें था ही नहीं, वह तो उस सुंदरी में अटका हुआ था।

इन्हीं एक-दो मोहल्लों में कहीं वह रहती थी, इतनी निकट और फिर भी इतनी दूर और अप्राप्य! उसे खोजने के काम को छोड़कर राज्य के प्रपंच में उसका जी लगे भी तो कैसे?

अतिथी विदा हुए; काक आमूभट की मूर्खता, अभिमान और अपरिपक्वता पर सोचने लगा।

: १७ :

रेवापाल का हृदय

जिस समय भृगुकच्छ का दुर्गपाल चिंताग्रस्त हो रेवापाल से भेंट करने गंगानाथ महादेव जाने का विचार कर रहा था उसी समय रेवापाल महादेव के पार्श्व में स्थित एक झोंपड़ी के द्वार के सामने बैठा हुआ था।

झोंपड़ी के अन्दर ब्रह्मानन्द सरस्वती ध्यान में लीन थे। रेवापाल अधीर होता जा रहा था; नदी की तरङ्गों को एकाग्र होकर देखती हुई उसकी आंखें बार-बार द्वार की ओर घूम जाती थीं। उसके मुख की रेखाएं कुछ अधिक कठोर हो गई थीं, उसके श्वासोच्छ्वास की अनियमितता उसके अन्तर के क्षोभ का परिचय दे रही थी।

झोंपड़ी में पगध्वनि सुनकर रेवापाल उठकर खड़ा हो गया। थोड़ी ही देर में द्वार खुले और एक वृद्ध सन्यासी बाहर आया।

'बेटा रेवा! आज इतना उद्विग्न क्यों है?' ब्रह्मानन्द ने पूछा।

ब्रह्मानन्द के दाँत गिरने लगे थे और त्वचा झूलने लगी थी। किंतु उनकी आंखें निस्तेज न थीं; और उनके स्नायु का बल विशेष कम नहीं हुआ था। ये सन्यासी पूर्वाश्रम में ध्रुवसेन सेनापति थे। इस

समय कोई उन्हें देखकर यह कल्पना भी न कर सकता था कि इनकी एक हुंकार से पाटण और धारा के नरपति कांप उठते थे। रेवापाल ने साष्टांग प्रणाम करके झोंपड़ी में प्रवेश किया।

'बैठो, बेटा!' ब्रह्मानन्द ने कहा।

'जी' तनिक कांपती हुई वाणी में रेवापाल बोला, 'महाराज, द्वार बन्द कर दूं?'

'अवश्य।' रेवापाल ने द्वार बन्द कर दिया।

'गुरुदेव! आज इतने वर्षों पश्चात् आज्ञा मांगने आया हूँ।'

'किस बात की?'

'अपने हृदय की आग बुझाने की।'

'तो इसमें आज्ञा किस बात की? रेवा! तेरे अन्तर को शान्ति प्राप्त हो यही प्रार्थना तो मैं नित्य करता हूं।'

'गुरुदेव! आप मुझे समझे नहीं। आप चाहते हैं वैसी शान्ति मैं नहीं चाहता।'

'तो?'

'पट्टणी वापस जायं तभी मुझे शांति प्राप्त हो सकती है।'

'अब तक तू यह भूला नहीं? रेवा! कितनी बार कहूं? मृणाल-कुंवरि का पाटण से गठबन्धन हुआ तभी से पाटण हमारा स्वामी हो गया। अब इतने वर्षों पश्चात् हो भी क्या सकता है?'

'गुरुदेव! आप भी इस प्रकार निराश हो जायंगे तो—'

'भाई, जहां तक आशा की एक भी किरण चमकती रही मैं अडिग रहा। किन्तु अब आशा रखना तो विक्षिप्तता है।'

आवेश के वेग में रेवापाल ने आंखें मींच लीं। उसके होंठ तनकर कठोर होगए।

'गुरुदेव! आपने संसार त्याग दिया इसीलिए विक्षिप्तता लगती है, किन्तु आज जैसा अवसर पुनः लौटकर आने का नहीं।'

'मुझे विश्वास नहीं होता।'

'न हो, अवसर न भी हो तो अब मैं थक गया हूं, मुझसे अब वह सहन नहीं होता, देखा नहीं जाता। अब तो ऐसा लगता है कि या तो मैं न रहूं या पट्टणी न रहें।' आंखों से आंसू पोंछते हुए रेवापाल ने कहा।

'क्यों, बात क्या है?' तनिक आतुरता से ब्रह्मानन्द ने पूछा।

'गुरुदेव! गुरुदेव! जिधर देखता हूं लाट की आन और सुख को नष्ट होते हुए देखता हूं। आज भी एक बात हो गई। अविमुक्तेश्वर के देवल के सामने दो पट्टणिओं को मैंने स्त्रियों की हँसी उड़ाते हुए देखा। एक सैनिक के हाथों एक पवित्र ब्राह्मण को अपमानित होते देखा। ऐसा आज ही हुआ हो यह बात नहीं, प्रतिदिन कुछ-न-कुछ होता ही रहता है। अधमता की भी सीमा होती है। नरक भी इससे अधिक भयङ्कर नहीं होगा।'

'काक क्या करता रहता है?'

'काक क्या कर सकता है? वह तो एक खिलौना है। वह समझता है उसकी चलती है, किन्तु उसकी पीठ फिरते ही अनेक अत्याचार होने लग जाते हैं। और फिर वह तो कल जा रहा है।'

'कहाँ?'

'वंथली। उसके महाराज की आज्ञा है। और लाट की सत्ता किसके हाथ सौंप जायगा यह भी मालूम है?'

'नहीं।'

'एक मन्त्री का पुत्र है। न उसमें बुद्धि, न व्यवहार-कुशलता, और न शौर्य! उसके आधीन रहने से तो कट मरना अधिक अच्छा। इसीलिए मैं कहता था कि अवसर बहुत अच्छा है।'

'वह ठहरा कहाँ है?'

'मेरे यहाँ। पिताजी तो उससे बहन का पाणिग्रहण करना चाहते हैं।'

'अच्छा?'

'हां। किन्तु मेरा वश चलेगा तो आँबड़ महेता जैसा आया है वैसा ही बचकर नहीं जाने पायगा। गुरुदेव ! सोचिए ! भोलानाथ ने कितना अच्छा अवसर प्रदान किया है। त्रिभुवनपाल नहीं, काक नहीं, पट्टणी सेना नाम-मात्र की है, और आंबड़ और माधव जैसों के हाथ में लाट की सत्ता ! गुरुदेव ! आपकी एक हुंकार से लाट फिर हमारे हाथ आ जायगा।' आतुरता से ब्रह्मानन्द की ओर देखते हुए रेवापाल बोला, 'गुरुदेव ! तनिक विचार कीजिए, पद्मनाभ महाराज की लाट आज कुचली-रौंदी जा रही है। निराधार लाट को आप सहायता प्रदान न करेंगे तो कौन करेगा ?'

'वत्स ! मैंने तो सन्यास ले लिया है, इसलिए मेरी बात तो छोड़ दे। और तू जो आंधी खड़ी करना चाहता है उसमें मुझे समझदारी नहीं दिखाई देती।' ब्रह्मानन्द ने गर्दन हिलाते हुए कहा।

'तो क्या बैठा रहूँ ? गुरुदेव ! एक हज़ार योद्धा तत्पर हैं, पन्द्रह दिन में पांच हज़ार पदाति भृगुकच्छ आ पहुँचेंगे।' तनिक धीमी आवाज में रेवापाल ने रहस्योद्घाटन किया।

'क्या कर रहा है ?'

'पन्द्रह दिन से मुझे थोड़ी-बहुत सूचना थी। जैसे ही आज आम्रभट आया मैंने समझ लिया कि इस अवसर पर चूकना न चाहिए। मैंने चारों ओर आदमी भेज दिए हैं। अक्षयतृतीया के पहले ही भृगुकच्छ से मांडवी तक का प्रदेश हमारे अधिकार में आ जायगा।' धीमी किन्तु उत्साह-भरी आवाज में रेवापाल बोला।

'तो तूने तो सब कुछ आरम्भ भी कर दिया है।'

'हां। किन्तु आपकी आज्ञा के बिना आगे न बढ़ूँगा।'

'बेटा ! तू जो करे उसमें तुझे विजय प्राप्त हो यही मेरी आशिष है।'

'देव ! इस समय तो यही आशीर्वाद दो कि या तो विजय प्राप्त करूँ या देह त्याग करूँ।'

'रेवापाल ! ऐसी एकनिष्ठा वाले को विजय ही प्राप्त होती है।'

रेवापाल एकाग्र दृष्टि से देख रहा था।

'देव ! एक याचना और करता हूँ।'

'हां, बोल।'

'आप जोगिया वस्त्र त्याग दीजिए।'

ब्रह्मानन्द चमककर पीछे हट गए।

'क्यों ?'

'देव ! ध्रुवसेन सेनापति के बिना सम्पूर्ण लाट का शौर्य निरर्थक है। किसके बल पर हम छाती ठोंककर खड़े होंगे ? किसके वचन हमें मृत्यु का आलिंगन करने के लिए उत्साहित करेंगे ?'

'रेवा ! जोगिया त्याग करना अब कैसे सम्भव है ?'

'देव ! न कहा था आपने कि अपने ही हाथों गंवाए हुए लाट में आपके लिए कोई स्थान नहीं है। तो महाराज ! कीजिए ग्रहण अपना स्थान और फिर से लाट को हस्तगत कीजिए। एक बार फिर निकल पड़िए, एक बार फिर अपने धनुष की टंकार से लाट गुंजा दीजिए।'

'बेटा, तेरे वचन मेरे मन को ललचा अवश्य रहे हैं।'

'तो कहिए—आयेंगे ? अक्षयतृतीया को जोगिया त्याग करेंगे ?'

'नहीं।'

'देव ! कैसी बात कह रहे हैं ?'

कुछ समय तक ब्रह्मानन्द चुप रहे।

'रेवा ! एक वचन देता हूं।'

'क्या ?'

'तुझे यदि मेरी आवश्यकता जान पड़े, मेरे न रहने से ही यदि तेरा प्रयास धूल में मिल रहा हो तो सन्देशा भेज देना। जोगिया त्याग कर चला आऊंगा। अब तो ठीक है ?' तनिक हंसकर ध्रुवसेन बोला।

रेवापाल ने झुककर ब्रह्मानन्द के चरणों पर अपना माथा टेक दिया। किसी अन्य रीति से वह अपनी कृतज्ञता प्रकट न कर सका। गुरुदेव ने शिष्य के माथे पर हाथ रखा। कुछ समय तक दोनों चुप रहे।

'देव ! एक काम कीजिएगा ?' रेवापाल ने प्रश्न किया।

'कह।'

'अपना पद्मविजय देंगे ?'

'अवश्य ! तुम्हारे सिवा और कौन योद्धा उसका उपयोग कर सकता है ?'

'देव ! हमने हंसी-हंसी में ही इस धनुष को पद्मविजय नाम दिया था, याद है ? जहां इसकी टंकार होगी वहां विजय निश्चित है।'

'बेटा ! वह उस अटारी पर रखा है, ले ले। और जब मेरी आवश्यकता हो तो इसकी कमान का फुंदना मेरे पास भिजवा देना। पद्मनाभ महाराज की पटरानी ने उसे बांधा था।' रेवापाल उठा और नीचे की अटारी में रखा धनुष खींचकर निकाला; दुपट्टे से झाड़कर साफ किया और फिर भूमि पर रखकर कुछ देर तक उसकी ओर देखता रहा। वह पहले जैसी ही दशा में था।

'यह तो अद्भुत है।'

'बेटा ! गंगानाथ महादेव की कृपा है। जा, विजय लाभ कर।'

रेवापाल ने पुनः दंडवत् प्रणाम किया, ब्रह्मानन्द सरस्वती ने मौन रहकर ही आशीर्वाद दिया। दोनों चुपचाप किन्तु भारी हृदय से विदा हुए। दोनों को लग रहा था कि विधि उनके जीवन का नया पृष्ठ खोल रही है।

: १८ :

काक की याचना

जिस समय रेवापाल झोंपड़ी से बाहर निकला उस समय संध्या हो चली था। ढलते हुए दिवस का प्रकाश और झीने अंधेरे आकाश में

संवरण करते तारागण रेवा के तेज को गांभीर्य का पुट दे रहे थे। भक्त की तल्लीनता से वह नर्मदा के शांत तट को देख रहा था, विचारमग्नावस्था में धीरे-धीरे वह छत पर गया।

उसके हृदय का भार हलका हो गया था। निराशा से कुम्हलाये हुए उसके हृदय में आशा का नूतन उल्लास जाग उठा था। वर्षों की दबी हुई इच्छाएं आज पूर्ण होती दीख रही थीं। लाट की स्वतंत्रता के लिए एक भयंकर युद्ध करना ही उसके जीवन का उद्देश्य था, वह उद्देश्य आज पूरा होता दीख रहा था।

उसने जंबूसर गिरने के पश्चात् भी इस लक्ष्य को प्राप्त करने की आशा क्षण-मात्र के लिए भी न त्यागी थी। लाट की ग्रहदशा में उसे विश्वास था अतः उसे पट्टणियों को लाट के बाहर निकाल देना कभी भी असंभव नहीं लगा। बड़ी-बड़ी कठिनाइयों में और बड़े कष्ट उठाकर पाल-पोसकर बड़ी की हुई यह आशा आज सिद्ध होने के निकट थी।

इस आशा को सेते हुए भी व्यवहार-कुशलता वह नहीं भूला था। संपूर्ण लाट पर उसकी दृष्टि थी, चारों ओर के उपद्रवी और असन्तुष्ट योद्धाओं से उसका संबंध था और उसकी एकनिष्ठा और देशभक्ति के कारण लाट में उसका इतना सम्मान था कि ध्रुवसेन के सन्यास ग्रहण कर लेने के पश्चात् लोगों की आँखों में वही वह था।

वह नर्मदा की तरंगों की ओर देख रहा था। मन-ही-मन उसने इस जागरित जोगमाया को अर्घ्य अर्पण किया और आशिष की याचना की। उसे लगा कि उन तरंगों से प्रकट होती हुई माता के काल्पनिक कर उसे आशीर्वाद दे रहे हैं।

अर्द्ध सुप्तावस्थामें वह पद्मविजय के प्रचंड धनुपदंड पर हाथ रख-कर खड़ा रहा। एकाएक किसी ने उसके कंधे पर हाथ रखा। चमक-

कर वह घूमा और तलवार पर हाथ रखा। सामने मुस्कराता हुआ दुर्गपाल खड़ा था।

रेवापाल ने क्रोध में होंठ काट लिए। उसके दुर्भाग्य का दूत उसके सामने खड़ा था। इस समय भी उसे निश्चिंत होकर विचार न करने दे रहा था। सम्भव है वह किसी बुरे संकल्प से उसके पीछे आया हो।

'रेवाभाई ? अन्त में भेंट हो ही गई।' काक बोला।

'कैसे आया ?' दाँत पीसकर क्रोध से खरखराती आवाज़ में रेवापाल ने प्रश्न किया।

'प्रातःकाल मैंने बेनां भाभी से कहा था कि इसी समय मैं तुमसे भेंट करने आऊंगा, उन्होंने तुमसे नहीं कहा ?' काक ने निर्दोष स्वर में कहा। रेवापाल अपने पुराने मित्र से परिचित था अतः उसकी मीठी बातों में वह आ जाय ऐसा न था। कुछ देर तक वह आंखें निकालकर देखता रहा।

'किस काम आया है ?' रेवापाल ने अधीर होकर प्रश्न किया।

'मैं कल वंथली जाने वाला हूँ।'

'तो इससे मुझे क्या ?'

'एक याचना करने आया हूं।'

'किसी को दान देने की शक्ति मुझमें नहीं है। यदि हो भी तो तुझे नहीं दूंगा।' रेवापाल तिरस्कारपूर्वक बोला।

'फिर भी, याचना मैं तुम्हींसे करूंगा और तुम्हारे सिवा कोई दान दे भी न सकेगा।' काक ने नम्रता से कहा।

'दान मांग अपने पाटण के स्वामी से,' हठपूर्वक गर्दन हिलाते हुए रेवापाल ने कहा।

'कुछ दान जो बालमित्र दे सकता है वह संसार का स्वामी भी नहीं दे सकता।'

'मैं तेरा मित्र नहीं और न मुझे तेरी मित्रता ही चाहिए।' कह कर रेवापाल चलने लगा।

'किन्तु मुझे तुम्हारी मैत्री की आवश्यकता है। सुन तो लो कि मैं क्या मांगता हूँ? फिर भले ना कह देना। मुझे एक स्त्री को तुम्हारे संरक्षण में छोड़ना है। रेवाभाई! इतना-सा भी न हो सकेगा?' शांत रह, हंसकर विनोद में काक ने पूछा।

काक की बात सुनकर रेवापाल एकदम रुककर उसकी ओर घूम गया। उसकी कठोर दृष्टि में नरमी आई। काक ने देखा कि रेवापाल पिघला।

'भाई! मुझे अपनी भृगुकच्छ की या पाटण की तनिक भी चिन्ता नहीं। उनका जो होना होना, होगा, उनका जो तुम्हें करना हो, करना।' काक ने रेवापाल के हाथ में का धनुष देखकर कहा, 'अभी तो एक निःसहाय गौ की रक्षा करनी है। इतना-सा काम लाट में तुम न करोगे तो कौन करेगा?'

'तुमसे नहीं हो सकता?'

'मैं तो कल जा रहा हूँ। संभव है लौट कर न आ सकूँ।' काक ने कहा।

'कौन है?'

'एक विद्वान ब्राह्मण की पुत्री है।'

रेवापाल चकित हो गया। पूछा, 'कौन तेरी पत्नी?'

'यदि वही हो तो—'

'उसे मैं अपने यहाँ क्यों शरण दूँ?'

'मुझे कुछ हो जाय तो—'

'तुझे और तेरे सगे सम्बन्धियों को कुछ भी हो, इससे मुझे क्या?'

'मैं तुम्हारे स्थान पर होता तो यह नहीं कहता।'

'काक! मैं तुमसे भली-भाँति परिचित हूँ। तेरे जैसा हरामखोर मैंने दूसरा नहीं देखा। इस समय भृगुकच्छ में सब कुछ अव्यवस्थित हो गया है, अतः तू येन-केन प्रकारेण अपनी रक्षा करना चाहता है।'

'रेवाभाई ! मुझे अपनी चिन्ता नहीं। किन्तु इस बेचारी को विदेशसे मैं यहाँ लाया हूँ। मेरे सिवा इसका और कोई नहीं है। मानलो तुमने लाट पुनः हस्तगतकर लिया—तनिक तीक्ष्णतासे रेवापालकी ओर देखकर काक बोला, तो इस बेचारी का कौन सहायक होगा।'

'अपने स्वामियों को क्यों नहीं सौंप जाता ?''

'अपना जीवन सर्वस्व स्वामियों को नहीं मित्रों को सौंपा जाता है।' काक ने उत्तर दिया।

'ऐसे तो कितनों ही के जीवनसर्वस्व तूने लूट लिए'। रेवापाल ने कहा। काक समझ गया कि उसके शब्दों का प्रभाव रेवापाल पर बड़े वेग से होरहा है किन्तु उसके हृदयको पिघलानेके लिए अभी और सावधानी से काम लेना पड़ेगा। उसने आधे क्षण तक विचार किया और फिर एक भयंकर ब्रह्मास्त्र छोड़ा।

'रेवा भाई ! तुम्हारे जीवनसर्वस्व को पाटण भिजवा दिया उसीका यह प्रतिकार दे रहे हो क्या ?'

रेवापाल बचपन से लीलादेवी के चरण पूजता था। वह स्वामी-भक्ति थी या और कुछ यह कोई न जान पाया। जब से ब्याह कर लीला-देवी पाटण चली गई तब से उसके हृदय में स्वदेश की आग को छोड़ और कोई लगन बची भी थी या नहीं यह भी कोई न जानता था। किन्तु काक से कुछ भी छिपा हुआ न था। वर्षों से छिपाए हुए व्रण पर उसने ऐसा तीव्र आघात किया कि वह फिर हरा हो उठा।

'क्या ?' चमककर रेवापाल गरज उठा। उसकी आंखों में अग्नि प्रज्वलित हो उठी। आवेश में आकर उसने तलवार निकाल ली। 'मौत आई है क्या ?'

'तुम्हारे हाथों मौत—इससे बढ़कर अच्छी वस्तु और क्या हो सकती है ?' मुस्कराते हुए शांत और प्रसन्नचित्त से काक बोला। 'लीलादेवी का पाणिग्रहण सोलंकीके साथ कराया उसीका वैर निकाल रहे हो क्या?'

'चुप—हरा'—रेवापाल धीरे किन्तु इस प्रकार बोला मानो रक्त पी जायगा।

'क्यों, मेरी बात असत्य है ? मृणालकुंवर यदि यहां होती भी तो तुम्हारा मनोरथ पूरा न होता।' कृत्रिम तिरस्कार से काक बोला।

'बामण ! चांडाल !' काँपते हुए स्वर में रेवापाल बोला,'तेरा समय आ गया है, अब या तो तू नहीं या मैं नहीं। निकाल अपनी तलवार। बिना युद्ध किए तुझे नहीं मारूंगा। तेरी पापी जीभ को अब एक शब्द भी न बोलने दूंगा। चल, निकाल।' रेवापाल के मुँह में झाग आ गए।

शान्त रहकर मुसकराते हुए काक ने गर्दन हिलाकर ना कर दी।

'रेवाभाई ! तुम्हारे सामने मैं शस्त्र नहीं उठाऊंगा ?'

'क्यों ?'

'मैं कायर नहीं,किन्तु यदि हम लड़ेंगे तो तुम्हारी मृत्यु निश्चित है। मैं तुमसे दुगुना बलवान् हूं और अपने बालमित्र को मैं मारना नहीं चाहता।'

रेवापाल के क्रोध की सीमा न रही। वह होश-हवास खो बैठा। काक उसका एकमात्र शत्रु था, वही उसकी आकांक्षाओं में सबसे बड़ा रोड़ा था। अतः उसे मौत के घाट उतार देने में ही उसे अपनी और लाट की मुक्ति दिखाई दी।

'पापी ! खड़ा रह। अभी तेरे दो टुकड़े करता हूं।' कहकर वह तलवार उठाकर आगे बढ़ा। काक कठोर होकर तिरस्कार से देखता रहा।

'देखना है किस प्रकार याचक ब्राह्मण को मारकर रेवापाल अपनी टेक पर पानी फेरता है ?' गर्व से काक ने कहा।

'रेवापाल की टेक !' इन शब्दों के कानों में पड़ते ही रेवापाल रुक गया। उसकी तलवार निकली-की-निकली रह गई।

'रेवापाल कभी अपनी टेक नहीं त्यागता।' निकट ही से एक मधुर

स्वर आया।

दोनों घूमे। निकट ही तारों के क्षीण प्रकाश में तेजस्वी और गौरव-शाली ब्रह्मानन्द सरस्वती खड़े हुए थे। काक ने साष्टांग प्रणाम किया। रेवापालका उठा हुआ हाथ नीचे झुक गया और उससे तलवार छूट पड़ी। वह धरती पर बैठ गया और दोनों हाथों में माथा रखकर सिसकने लगा।

: १६ :

काक की राजनीति

'रेवापाल, यह क्या ? काक, दो घनिष्ठ मित्रों को यह शोभा देता है ?'

रेवापाल ने हाथों में से सिर नहीं उठाया। काक मुस्कराते हुए देखता रहा।

'गुरुदेव ! घनिष्ठ मित्र ही इस प्रकार लड़कर फिर एक हो जाते हैं। कल मैं सोरठ जाने वाला हूँ, इसलिए भाई को कुछ सौंपने आया था।'

'क्या ?'

'मेरी स्त्री ! उस बेचारी का क्या होगा इसकी मुझे अत्यन्त चिंता है।' काक ने कहा।

'बेटा !' ब्रह्मानन्द बोले, 'उसको क्या हो सकता है ?'

'गुरुदेव ! रेवाभाई को तो मैं तनिक खिझा रहा था, आपसे सच-सच कहता हूं। रेवाभाई तो अवसर की ताक में बैठे हैं, और भृगुकच्छ के नए दुर्गपाल में रत्ती-भर बुद्धि नहीं है। अतः लाट में उपद्रव होगा, यह निश्चित है। आप ना न कहिएगा क्योंकि मैं मानने का नहीं। मैं आपको और रेवाभाई को पहचानता हूं।'

'तो अपने साथ लेता जा।'

'ऐसा भी नहीं हो सकता। जयसिंहदेव महाराज के पास मेरा एक कट्टर विरोधी बैठा हुआ है। और महाराज या लीलादेवी मेरी स्त्री को आश्रय देंगे नहीं। कल मुझे कहीं कुछ हो जाय तो फिर उसका क्या होगा?'

'काक!' ब्रह्मानन्द ने कहा, 'तू तो धोबी का कुत्ता हो गया है, न घर का न घाट का।'

'बात है तो ऐसी ही।'

'तो घर का क्यों नहीं हो जाता? पाटण में तेरा कौन है? अपने रेवाभाई के साथ क्यों नहीं रहता? तुम दोनों बचपन के साथी हो, इस तरह एक-दूसरे में कट-मरने में क्या लाभ है?'

'हाँ काक!' रेवापाल एकदम खड़ा होकर बोला, 'हमारे साथ आ, हम पाटण को भी जीत लेंगे।'

'भाई! गुरुदेव!' खिन्न स्वर में काक बोला, 'यही निमंत्रण आज ही नहीं, वर्षों पहले भी दिया था। किन्तु मुझे आपकी योजना में श्रद्धा नहीं है। अकेला लाट पाटण के सामने कर ही क्या सकता है? एक और बात जो मुझे स्पष्ट दिखाई देती है वह आपको नहीं दिखाई देती।'

'कौनसी?'

'गुरुदेव! लाट, गुजरात अथवा सोरठ अब अकेले टिक सकें ऐसा सम्भव नहीं। मालवा और सपादलक्ष* भी अकेले रहकर नहीं टिक सकेंगे। यदि ये सब एक न हो सके तो हम सब-के-सब नष्ट हो जायेंगे। युग-पर-युग व्यतीत होगए—लाट और गुजरात, गुजरात और मालवा, गुजरात और सपादलक्ष आपस में लड़ते चले आए हैं। इसी प्रकार चलता रहा तो हम निर्वीर्य और निराधार हो जायंगे। और फिर गुरुदेव! लाट में बैठे-बैठे आपको कुछ पता भी तो नहीं है।'

---

*अजमेर के आस-पास का प्रदेश।

'क्या ?'

'जिन विधर्मी यवनों ने भीमदेव महाराज के समय में सोमनाथ लूटा था वे आगे बढ़ने ही चले आ रहे हैं। प्रति वर्ष उनके विषयमें अधिक-से अधिक बातें कानमें आती हैं। यदि हम अन्दर-ही-अन्दर लड़ मरेंगे तं हमारी क्या दशा होगी ? पाटण में एक पागल यती आया था—वर्ष पहले। उसके विषय में यह कहा जाता है कि वह सदा अलग-अलग धर्मों को त्यागकर एक धर्म स्वीकार करने की बात करता था। उसक कहना था, ऐसा न करोगे तो यवन तुम्हारे प्राण ले लेंगे। मुझे भं लगता है कि यदि कोई राजा भारत को एक न कर सका तो हमार सत्यानाश अवश्य होगा।'

'इसीलिए अपने जयसिंहदेव को चक्रवर्ती बनाने तू सोरठ जा रह है न ?' रेवापाल ने तिरस्कार से कहा।

'यदि उन्होंने मेरी मानी होती तो आज वह हो भी जाते। किन्तु हमारे ग्रह ही नहीं मिलते।' काक बोला।

'तो तू लाट को स्वतन्त्र नहीं होने देगा ?' ब्रह्मानन्द ने पूछा।

'मेरी चले तो नहीं।'

'तो जान-बूझकर लाट को हाथ से खोया क्यों ?' रेवापाल बड़ बड़ा उठा।

'रेवाभाई ! तुम अभी बात पूरी समझे नहीं हो। तुम जितन सोचते हो उतना बलवान् मैं नहीं हूं। यदि आज मैं न भी हुआ तो क्या ? लाट पराधीनता से मुक्त हो जायगा ? यहीं भूलते हो गुरुदेव ! एकछत्र राज्य करने के लिए तो पाटण ही का सृजन हुआ है—'

'कैसे जाना ?' ब्रह्मानन्द ने पूछा।

'क्योंकि विधि ने उसे शूरवीरों का भी शूरवीर दिया है।'

'कौन जयदेव ?' ब्रह्मानन्द ने प्रश्न किया।

'नहीं। जयदेव चाहे जितनी 'फूं फां' करें, हैं वह नगण्य। उनके

फुंकारों के पीछे, सेना की घोषणाओं के पीछे, पाटण के कुक्कुट-ध्वज के पीछे—मुंजाल महेता है। मेरे जैसे भले ही मर जायं किन्तु जब तक यह रहेगा तब तक पाटण की कीर्ति का सितारा चमकता रहेगा।'

'तो फिर आज तक इसने कुछ किया क्यों नहीं ?'

'कर्णदेव दिवंगत हुए तब पाटण भी सोलंकियों का न था। आज कावेरी से श्रीमाल तक सोलंकियों का डंका बज रहा है वह क्या इन जयदेव महाराज के प्रताप से ? मुंजाल को आवश्यकतानुकूल साधन नहीं मिल पा रहे हैं। पहले मंडलेश्वरों ने झगड़ा किया; फिर पाटण के धनाढ्य प्रतिकूल हुए। इस समय श्रावक बिगड़े हुए हैं, नागर मन्त्री क्रुद्ध हैं, और ऊपर से राजा बेढंगा है। नहीं तो आज तक न जाने क्या हो जाता, यह कौन जानता है ?'

'तो, तू किस काम आ रहा है ?'

'मुंजाल महेता का क्या दाँव है यह मैं स्पष्ट समझ नहीं पाया हूं। किन्तु यदि मैं जीवित रहा और मेरी चली तो जूनागढ़ पराजित होगा और सोरठ भी लाट ही के समान हो जायगा।'

'शाबाश !' कठोर हास्य करते हुए रेवापाल बोला, 'ऐसा गुमाश्ता न हो तो सेठ उछल-कूद मचाए कैसे ?'

'रेवाभाई अब भी नरम नहीं पड़े। गुरुदेव ! मेरी स्त्री को आश्रय मिल जाय ऐसा प्रबंध कर दीजिए।'

'काक ! तेरे उद्देश्यों को देखते हुए तो तुझे जीते-जी रेवा माँ में फेंक देना चाहिए।'

'गुरुदेव ! रेवा मां भी मुझे अभयदान प्रदान करेगी।' गर्व से काक ने कहा। 'जब पाटण का स्वामी रेवामाँ के चरणों में आएगा, जब लाट की जननी जगत्-जननी बन जायगी, तभी मेरा उद्देश्य पूर्ण होगा। तब आपके कहे बिना ही इस सनातन अंबा की गोद में मरने के लिए सो जाऊँगा।'

'जीते-जी तो लाट को चुल्लू-भर पानी 'भी नहीं देता और मरते समय श्मशान में गाय लाने की बात करता है।'

'आप चाहे ऐसा ही समझें; किन्तु गुरुदेव ! भाई से इतना-सा वरदान दिलाकर मुझे चिन्ता से तो मुक्त कर दीजिए।'

'रेवा ! काक की स्त्री तेरी भाभी है। उसकी रक्षा करने का वचन दे दे।'

'मैं कैसे दूं ? इस पापी को तो मेरे हाथों मरना है।'

'तो मैं कहां ना कहता हूं। किन्तु बाद में मेरी स्त्री सेर-भर धान के लिए भूखों न मर जाय भाई ! निराधार होकर न रोए, मेरा पुत्र निराश्रय होकर कुम्हला न जाय—बस इतना ही वचन दे दे।'

'दे दे रेवा ! इसमें कुछ भी अनुचित नहीं है।'

'अच्छा, काक ! अपना सोचा तूने किया ही। तेरी पत्नी और पुत्र को निराधार कभी न होने दूँगा। अब तो ठीक ? अब जा आज तो तुझसे थक गया हूँ। इस जन्म में अब अपना मुंह न दिखाना।'

'भाई ! विधि ने क्या-क्या लिख रखा है कौन जाने?' कहकर काक ने दोनों को नमस्कार किया।

'काक ! जहाँ कहीं रहे, काम तेरे गुरु को शोभा दे वैसा ही करना।'

'निश्चिन्त रहिए, गुरुदेव ! अच्छा, अब आज्ञा ?'

'हाँ, बेटा !'

काक पुनः नमस्कार करके चला गया।

'रेवा ! यह लड़का है विलक्षण !' ब्रह्मानन्द ने कहा।

'स्वार्थ साधने में एक ही है।' रेवापाल ने उत्तर दिया।

: २० :

मित्रवधुएं

काक ने जल्दी से बन्दर पर जाकर इच्छानुकूल पोत का प्रबन्ध हुआ कि नहीं इसकी छानबीन की। वहां से लौटकर अन्य काम पूरे करके वह मंजरी के पास गया।

मंजरी ने सांसारिक जीवन स्वीकार किया था फिर भी शरीर और बुद्धि में वह जैसी थी वैसी ही मोहक बनी रही। वह पहले के ही समान गर्विष्ठा थी, पहले से भी अधिक विद्वान। जिन-जिन लोगों से उसका परिचय हुआ उन सभी पर उसकी मोहिनी प्रभाव कर गई थी।

उसका पांडित्य विद्वानों में उसके प्रति मान पैदा करता था, परदेशी विद्वान भृगुकच्छ में आते तो इससे भेंट करने अवश्य जाते और प्रशंसा से आर्द्र हुए हृदय से पराजय स्वीकार कर उसकी तुलना सरस्वती से करते हुए श्लोक लिखते। चारों ओर से जो योद्धा आते और दुर्गपाल का आतिथ्य स्वीकार करते वे उसके मुखसदीपन को भूलकर उसकी स्त्री के पुजारी हो जाते थे। भृगुकच्छ के साधारण लोग उससे परिचय होने पर उसे देवी मानते,वृद्ध उसे रेवा मां का अवतार मानकर उसके दर्शन कर कृतार्थ होते थे, अधेड़ वय वाले अपने घर के झंझटों को भूलने के लिए इसके निकट बात करने बैठ जाते थे, और एक अमृत-भरी दृष्टि की याचना करने वाले युवक उसकी एक अर्थहीन दृष्टि से प्रोत्साहन पाकर उसको प्रसन्न करने के लिए भवसागर पार करने लिए तत्पर हो जाते थे।

इस गर्विष्ठा, स्वस्थ और सुन्दर रमणी के प्रति एक अस्पष्ट तिरस्कार की भावना वे ही पुरुष और नारियाँ रखते थे जो इसके सम्पर्कमें न आ पाते थे। मंजरी यह बात जानती थी,किंतु ऐसों को वह भी स्पष्ट तिरस्कार से देखती थी।

'जीते-जी तो लाट को चुल्लू-भर पानी भी नहीं देता और मरते समय श्मशान में गाय लाने की बात करता है।'

'आप चाहे ऐसा ही समझें; किन्तु गुरुदेव! भाई से इतना-सा वरदान दिलाकर मुझे चिन्ता से तो मुक्त कर दीजिए।'

'रेवा! काक की स्त्री तेरी भाभी है। उसकी रक्षा करने का वचन दे दे।'

'मैं कैसे दूं? इस पापी को तो मेरे हाथों मरना है।'

'तो मैं कहां ना कहता हूं। किन्तु बाद में मेरी स्त्री सेर-भर धान के लिए भूखों न मर जाय भाई! निराधार होकर न रोए, मेरा पुत्र निराश्रय होकर कुम्हला न जाय—बस इतना ही वचन दे दे।'

'दे दे रेवा! इसमें कुछ भी अनुचित नहीं है।'

'अच्छा, काक! अपना सोचा तूने किया ही। तेरी पत्नी और पुत्र को निराधार कभी न होने दूँगा। अब तो ठीक? अब जा आज तो तुझसे थक गया हूँ। इस जन्म में अब अपना मुंह न दिखाना।'

'भाई! विधि ने क्या-क्या लिख रखा है कौन जाने?' कहकर काक ने दोनों को नमस्कार किया।

'काक! जहाँ कहीं रहे, काम तेरे गुरु को शोभा दे वैसा ही करना।'

'निश्चिन्त रहिए, गुरुदेव! अच्छा, अब आज्ञा?'

'हाँ, बेटा!'

काक पुनः नमस्कार करके चला गया।

'रेवा! यह लड़का है विलक्षण!' ब्रह्मानन्द ने कहा।

'स्वार्थ साधने में एक ही है।' रेवापाल ने उत्तर दिया।

मुख की अपूर्व रेखाओं और उसके हास्य की विद्युत्प्रभा की ओर हर्ष से देखता रहा। फिर उचित उत्तर दे दिया; उसने मंजरी का चुम्बन कर लिया।

गर्विष्ठा मंजरी मान छोड़कर काक की बाहुओं में लिपट गई।

'भटराज!' उसने धीरे-से अंतर की अभिलाषा प्रकट की, 'शीघ्र लौटोगे न?'

'तुरंत। घबराओ नहीं। मुझे कुछ न होगा।'

दोनों आत्मश्रद्धा के आनन्द में चिन्ता भूल गए।

दूसरे दिन दुर्गपाल विदा हुआ। बंदर तक आम्रभट, नगरसेठ, माधव और मणिभद्र पहुंचाने गये। एक मन्दिर की छत पर से मंजरी क्षितिज में अंतर्धान होते हुए पोत पर खड़े हुए काक को देखती रही। पोत के अदृष्ट हो जाने पर आँचल से आँसू पोछे और बाँसरि को छाती से चिपका लिया।

उसकी दो-तीन सखियाँ साथ में थीं। वे चुपचाप इस स्नेही हृदय की व्यथा को देखती रहीं; मंजरी से एक शब्द भी कहने का किसी को साहस न हुआ।

उसने बाँसरि को एक सखी को दिया और दर्शन करने के लिए मन्दिरकी ओर घूमी। एक विद्यार्थीने आकर दीपक जलाया। वृद्ध पुजारी लँगड़ाता-लँगड़ाता आया और हंस-हंसकर समाचार पूछने लगा। हास्य की किरणें प्रकीर्ण करती हुई मंजरी अपने तेज से अंधेरे मन्दिर को भी प्रकाशमान कर रही थी।

वह मन्दिर से बाहर निकली ही थी कि वेनां के साथ नगरसेठ के यहाँकी अन्य स्त्रियाँ आईं। रेवापाल उसको तिरस्कारकी दृष्टि से देखता था यह मंजरी को मालूम था। वेनां को भी उसका संसर्ग पसंद न था। अतः उसकी ग्रीवा की भंगिमा में गर्व बढ़ गया, उसके हास्य में तनिक अभिमान प्रकट हुआ।

'मंजरी भाभी, कैसी हो?' वेनां ने कहा।

अपने पति और स्वयं की शक्ति में उसे इतनी श्रद्धा थी कि जब काक ने उसे रेवापाल द्वारा दिये हुए वचन की बात कही तो उसकी आँखों से चिनगारियाँ निकल पड़ीं।

'क्यों उसके पास भीख मांगने गए ?' उसने होठ-पर-होंठ दबाकर पूछा, 'तुम्हें—महारथियों के शिरोमणि को—ऐसी याचना करते लज्जा न आई ? इतने अधिक अधीर क्यों होगए हो ?'

काक स्नेह में पली सुन्दरी का क्रोध देखकर मधुर हास्य कर उठा।

'मैं न होऊँ और कुछ उपद्रव हो जाय तो ?'

'तो मुझे क्या हो सकता था ? किसकी मजाल कि मेरा कुछ कर सके ?'

काक पुनः हँस दिया, 'हाँ, यह तो मुझे मालूम है। भृगुकच्छ का प्रत्येक नवयुवक तेरे लिए प्राण तक देने को तैयार हो जायगा।'

'नहीं। जैसे सब लोग तुम्हीं पर मोहित हो पड़ते हों !' मंजरी ने भी हंसकर उत्तर दिया। 'किन्तु रेवापाल के गर्व की तो कोई सीमा ही नहीं है। उसकी शरण माँगने से पहले मैं मर जाना अच्छा समझूंगी।'

'पगली ! रही न वैसी-की-वैसी। मेरे कानों में उपद्रवों की भनक पड़ रही है। और इस सम्पूर्ण लाट में वचन का पक्का कोई है तो रेवापाल ! आंबड़ को सौंपना तो निरर्थक है।'

'आँबड़ ! जैसा बाप वैसा बेटा। मुझे तो उसका नाम ही अच्छा नहीं लगता। तुम व्यर्थ की चिन्ता कर रहे हो। सोमेश्वर हैं, मणिभद्र हैं, और क्या चाहिए ? तुम अपनी चिन्ता करो। और जिस प्रकार पंद्रह वर्ष पहले पाटण विजय करके लौटे थे इस बार भी वैसे ही विजय पाकर लौटना।'

'साथ में किसी को लेता आऊ ?'

'मंजरी से अधिक सरस मिल जाय तो—अवश्य ! मेरी सौगन्ध है,' मंजरी ने हंसकर कहा। तेजस्वी, सुकुमार, स्फटिक-सी श्वेत इस मोहिनीके शब्द सुनकर वह सब कुछ भूल गया। वह पल-भर तक उसके

मुख की अपूर्व रेखाओं और उसके हास्य की विद्युत्प्रभा की ओर हर्ष से देखता रहा। फिर उचित उत्तर दे दिया; उसने मंजरी का चुम्बन कर लिया।

गर्विष्ठा मंजरी मान छोड़कर काक की बाहुओं में लिपट गई।

'भटराज!' उसने धीरे-से अंतर की अभिलाषा प्रकट की, 'शीघ्र लौटोगे न?'

'तुरंत। घबराओ नहीं। मुझे कुछ न होगा।'

दोनों आत्मश्रद्धा के आनन्द में चिन्ता भूल गए।

दूसरे दिन दुर्गपाल विदा हुआ। बंदर तक आम्रभट, नगरसेठ, माधव और मणिभद्र पहुंचाने गये। एक मन्दिर की छत पर से मंजरी क्षितिज में अंतर्धान होते हुए पोत पर खड़े हुए काक को देखती रही। पोत के अदृष्ट हो जाने पर आँचल से आंसू पोंछे और वोसरि को छाती से चिपका लिया।

उसकी दो-तीन सखियाँ साथ में थीं। वे चुपचाप इस स्नेही हृदय की व्यथा को देखती रहीं; मंजरी से एक शब्द भी कहने का किसी को साहस न हुआ।

उसने वोसरि को एक सखी को दिया और दर्शन करने के लिए मन्दिरकी ओर घूमी। एक विद्यार्थीने आकर दीपक जलाया। वृद्ध पुजारी लँगड़ाता-लँगड़ाता आया और हंस-हंसकर समाचार पूछने लगा। हास्य की किरणें प्रकीर्ण करती हुई मंजरी अपने तेज से अंधेरे मन्दिर को भी प्रकाशमान कर रही थी।

वह मन्दिर से बाहर निकली ही थी कि वेनां के साथ नगरसेठ के यहाँकी अन्य स्त्रियाँ आईं। रेवापाल उसको तिरस्कारकी दृष्टि से देखता था यह मंजरी को मालूम था। वेनां को भी उसका संसर्ग पसंद न था। अतः उसकी ग्रीवा की भंगिमा में गर्व बढ़ गया, उसके हास्य में तनिक अभिमान प्रकट हुआ।

'मंजरी भाभी, कैसी हो?' वेनां ने कहा।

'अच्छी हूं। तुम कैसी हो ?'

'मेरे देवर गए न ?'

'हाँ'

'मंजरी, इधर आओ, एक बात कहूं ?'

'क्या ?' कहकर मंजरी कुछ दूर बेनां की ओर गई।

मंजरी तनकर सीधी खड़ी हो गई। उसकी आँखें अधिक बड़ी हो गईं। वह एक शब्द भी न बोली।

'कहलाया है,' पतिपरायण बेनां मंजरी के गर्व को देख उत्पन्न हुए अपने क्रोध को दबाकर बोली, 'कि कुछ काम हो तो उन्हें कहला भेजना।'

क्षण-भर के लिए मंजरी के होंठ कांप उठे। उसने उत्तर दिया, 'बेनां देवी! उनसे कहना कि भटराज की स्त्री को किसी के संरक्षण की आवश्यकता नहीं।'

मंजरी की आखों में तलवार की धार जैसी तीक्ष्णता थी; उसके संस्कृत स्वर में अपमान के सरगम के सभी सुर थे।

बेनां को इन शब्दों से गहरी चोट लगी। पतिभक्ति करते-करते सीखी नम्रता भूल गई; और अपमानित स्त्री के हृदयमें निवास करते—विषैली नागिन के विष से भी भयंकर विष उसके अन्तःकरण में घुस गया।

'हाँ, मैं भूली। तुम्हारे यहां कमी ही किस बात की है कि उनके संरक्षण की आवश्यकता पड़े,' कह बेनां वहाँ से चली। शब्द निर्दोष थे; किन्तु उनमें छिपा विष मंजरी ने देख लिया। एक भयंकर दृष्टि बेनां पर डाली और गर्व से सिर ऊंचा करके वहां से चली गई। उसकी आंखों से क्रोध के आँसू निकल आए।

उसकी सखियां कुछ जान न पाईं। वे भी मन्दिरसे बाहर निकलीं। साम्या बृहस्पति के बाड़े में प्रवेश करने से पहले उन्हें एक स्थान पर मुख्य पथ पार करना पड़ता था। वे जैसे ही मुख्य पथ पर गईं वैसे ही

उन्होंने पथ के दूसरी ओर से कुछ गुरुओं सहित एक नवयुवक साधु को आते हुए देखा। मंजरी अपनी सखियों को लेकर त्वरित गति से गलीमें चली गई, किन्तु उसने उस साधुका तेजस्वी मुख देख लिया था। एक सखी से बोली, 'यह जो नया साधु आया है न, बड़ा विद्वान् माना जाता है।'

'हां! मैंने भी सुना है। बड़े-बड़े पंडितों की इसके सामने नहीं चलती।'

हेमसूरि की चंचल दृष्टि मंजरी पर पड़ गई थी। काक द्वारा दिया हुआ परिचय उसे याद आया—बचपन में खंभात में जिस युवती के पड़ोस में रहा था और जिसे काक उठा ले गया था वही।

उसकी विस्मृत तेजस्विता का उसे स्मरण हो आया।

दुर्गपाल को कैसे यह स्त्री मिली और उसके पांडित्य के विषय में लोकोक्ति क्या थी यह तो उसे ज्ञात था। उसने निकट ही चल रहे एक श्रावक से पूछा, 'दुर्गपाल को यह भार्या बड़ी शास्त्र-विशारद मानी जाती है न?

'जी हाँ।' युवक साधु की सर्वज्ञता पर मोहित होकर श्रावक ने कहा।

: २१ :

अपरिचित की खोज

आंबड़, तेजपाल, माधव और सोमेश्वर काक को विदा करके लौटे। आंबड़ में अब कुछ-कुछ साहस आया। काक से उसे भय लगता था अतः उसकी उपस्थिति में वह निःसहाय बना रहता था। अब तो जहाँ तक जूनागढ़ न हार जाय और कोई दूसरा दण्डनायक या दुर्गपाल न

आ जाय तब तक वह लाट का एकछत्र स्वामी था। उसके आनन्द का पार न रहा। सोमेश्वर काक के घर गया, अन्य भटराज माधव के यहां भोजन करनेके लिए जाने वाले थे इसलिए अपनी-अपनी पालकीकी ओर बढ़े। आम्रभट की पालकीके आस-पास कतिपय चाटुकार और कुछ लोग नये दुर्गपाल को देखनेकी उत्सुकतासे खड़े हुए थे। एक सैनिक ने धक्के मारकर इन सबको दूर खदेड़ा और आम्रभट अपनी पालकीमें बैठा। कहारों के पालकी उठाने से पहले आस-पास की भीड़ को चीरता हुआ एक मोटा मनुष्य पालकी तक आया और झुक-झुककर अभिवादन करने लगा

आम्रभट ने नेरा तोतला को पहचान लिया। उसे काक द्वारा दी गई चेतावनी का स्मरण हो आया। नेरा लहजे में बोल रहा था, 'घ-घ घणीखमां महाराज! दु-दुर्गपाल म-महाराज की ज-ज-जजय। ब--बापु को नमस्कार!' झाड़ के धड़ जैसा उसका मोटा शरीर नीचे झुकते समय कुछ-कुछ आनन्द में झूमते हुए हाथी के बच्चे का स्मरण करवा रहा था। आस-पास खड़े हुए लोग हंसने लगे।

आम्रभट को तुरन्त वही अपरिचित सुन्दरी याद आई। हमीर मृत्युशैया पर लेटा था और वीरा उतना बुद्धिमान न था। नेरा के बिना उसे और कौन खोज सकेगा?

आम्रभट ने काक की चेतावनी की चिन्ता न की। वह नेरा के सामने देखकर मुस्करा दिया, 'क्यों नेरा?'

'घ···बणीखमां बापू! आपकी कृपा से आनन्द है।'

आम्रभट को लगा कि नेरा कुछ कहना चाहता है। उस अपरिचिता का समाचार तो नहीं लाया है?

'मेरे साथ चल।'

'ब—बापू की आज्ञा। चि....चिरंजीव हो, सौ....सौ वर्ष तक। घ....घणीखमां अन्नदाता।' कहता हुआ वह पालकी के एक ओर चलने लगा।

पालकी थोड़ी दूर ही गई होगी कि नेरा ने आँवड़ के कान में कहा, 'म''''महाराज ! प....प....प....पता मिल गया ।'

'अच्छा!' हर्षित होकर आंवड़ बोला । उसका हृदय उछल पड़ा ।

नेरा ने आंख-ही-आंख में उसे सावधान रहने के लिए कहा ।

'लम्बी है ?'

आंवड़ ने गर्दन हिलाई ।

'दू...दूध जैसा श्वेत रंग ?'

आंवड़ ने ज़ोर से गर्दन हिलाई ।

'औ....और म....मन हर ले ऐसी जादू भ·—भरी आंखें—'

नेरा अपनी वाक्पटुता की परीक्षा करने लगा ।

आंवड़ को बुरा लगा किन्तु चुप रहा । उसकी प्रियतमा के विषय में इस नौकर का इस प्रकार बातें करना उसे खटका ।

'औ....और ब....बाएं हाथ में रुद्राक्ष का क....कड़ा है ।'

आंवड़ ने आँखें मींच लीं, और अपनी प्रियतमा की प्रतिमा मस्तिष्क के सामने लाया ।

'क....क्यों ठी....ठीक है न ?' नेरा ने चिंतित होकर पूछा ।

'नहीं । अच्छा फिर ?'

'भू...भूल गया ब....बापू ! एक रुद्राक्ष और एक स्फटिक ।'

आँवड़ पालकी में उछल पड़ा, 'हां ।'

'त...तो मिल गई ।'

'कहां है ?'

'ब....बापू, मैं ग-ग-गरीब मारा जाऊंगा। म''''मेरे छ....छ शत्रु हैं।'

आंवड़ अधीर हो गया।

'हरामखोर, बोल !'

'अन्नदाता ! स—सरस्वती के समान विद्वान् है ।'

'सचमुच ?'

'ब....बापू ! मैं तो अब त....तक भ...भ...भट भी नहीं बना ।'

'तू भट बनना चाहता है ?'

'हाँ, ब....बापू ! आपकी सेवा करते-करते ही मरना चाहता हूं।'

'अच्छी बात है।'

'अन्नदाता, व....वचन दीजिए, मैं कहीं ब....बीच में ही न मारा जाऊं।'

'बोल, कायर ! घबराता क्यों है ?'

'ब....बापू ! मुझे भट बनाएंगे न ?'

'हाँ, हाँ, हाँ।'

'तो कहता हूं। कि....किन्तु ब....बापू ! हाथ लग सके, ऐसी नहीं है।'

'इससे तुझे क्या 'पंचात' ?' आँबड़ ने कहा।

'तो आप जानें ! म...महाराज ! वह तो भटराज की विवाहिता है।

'हैं ? किसकी, माधव की ?'

'श...शां....शी ब....बापू ! उस द....दूसरे की।'

आम्रभट का हृदय मानो रुक गया, 'वह गया उसकी ?'

नेरा ने ज़ोर से गर्दन हिलाई।

आँबड़ मौन रहा। वह ठगा-सा हो गया। उसके कानों में धमधम आवाज़ होने लगी।

अन्नदाताओं के अंतर को पहचानने का नेरा ने विशेष अध्ययन किया था। वह मन-ही-मन मुस्कराया। उसके बिना इस नए दुर्गपाल का चल ही नहीं सकता।

'म....महाराज ! ब....बात ब....बनने जैसी नहीं है।' उसने धीरे से कहा।

'नेरा ! कुछ भूल हुई है।' मणिभद्र का रूप और रंग याद आते ही आम्रभट के हृदय में शङ्का उत्पन्न हुई।

'स''''स्वयं चलकर द''''देख लीजिए।'

'म....महाराज ! अ....आप अब दुर्गपाल हो गए हैं। भ....भट-राज के घर के भीतरी हाल-चाल जान लेना चाहिए ।'

आम्रभट ने अनुग्रह-भरी दृष्टि से नेरा की ओर देखा, 'तू मुझसे संध्या को मिलना।'

'ज''''ज''''जैसी आज्ञा।'

आम्रभट के मस्तिष्क में दो बातें तैर गईं। एक तो अपरिचित रमणी का पता मिलने का हर्ष—और दूसरी उसे सिंह के पंजे से छीनना होगा इस बात से उत्पन्न भय। भृगुकच्छ आने से पहले उसने नए नगर के स्त्री-पुरुषों के विषय में छान-बीन की नहीं थी; जितनी कुछ जानकारी थी वह उसके पिता उदा द्वारा प्राप्त हुई थी; और वह जिह्वा मंजरी के विषय में जानकारी देने के लिए हिल भी सके ऐसा तो था नहीं, मणिभद्र भी विशेष कुछ बता सकें ऐसी स्थिति में नहीं थे। इन्हीं कारणों से आँबड़ महेता ने मंजरी को एक सामान्य स्त्री समझ लिया था। अतः नेरा की बात ऐसी अविश्वसनीय लग रही थी कि उसे मानने को जी न किया।

इस अपरिचित मोहिनी का वह ऐसा दास हो गया था कि इस अनिश्चित दशा से छुटकारा पाने के लिए वह छटपटा उठा। जैसे ही माधव का घर आया वैसे ही आम्रभट ने माधव और तेजपाल से कहा—'यदि समय हो तो मैं एक काम पूरा कर आऊँ।'

'क्या ?'

क्षण-भर के लिए आँबड़ हिचकिचाया, 'काकभट चले गए अतः मुझे तनिक उनके घर हो आना चाहिए। उनके घर वालों को सभी की प्रसन्नता होगी।'

'भोजन करके चले जाना।' माधव ने कहा।

'फिर तो सेठ के यहाँ हेमचन्द्रसूरि आने वाले हैं। और फिर बहुत संध्या हो जाने पर जाना भला नहीं लगता।'

तेजपाल सेठ अपनी कानी आँख से 'शिष्टाचार के इस समर्थक की

ओर देखने लगे। फिर कुछ गम्भीर और कुछ विनोद-भरी वाणी में कहा, 'बात सच है। काक की स्त्री भी अपने आपको एकदम निराधार न समझेगी। तुम्हारे जैसे भले पुरुष यदि परिपाटी की रक्षा न करेंगे तो करेगा कौन? निस्सन्देह जाओ।'

आम्रभट वृद्ध की ओर देखने लगा। क्या यह रहस्य पा गया? नगरसेठ के मुख पर से कुछ भी प्रकट न हो रहा था।

'अच्छी बात है। मैं यह आया।' कहकर आम्रभट पुनः पालकी में जा बैठा। 'जल्दी चलो—साम्बा बृहस्पति के बाड़े में, मेरे साथ किसी को आने की आवश्यकता नहीं।' उसने अपने अश्वारोहियों को आज्ञा दी।

: २२ :

मंजरी को धोखा

आँबड़ महेता को यदि प्रतिष्ठा को धक्का पहुंचने का भय न होता तो वह कहारों को दौड़ने के लिए कहता, यदि वह समझता कि लोग उसे पागल न कहेंगे तो वह स्वयं दौड़ता, यदि उसके पर होते तो वह उड़ जाता। माधव के घर से साम्बा बृहस्पति के बाड़े तक का पथ उसे योजनों लंबा लगा।

इतने थोड़े समय में ही मदांध प्रणय का मोह उसके मस्तिष्क में व्याप्त हो गया था। इस पर से, काक का घर उसका ही तो है, कुछ-कुछ ऐसा विचार भी उसे हुआ। जिस घर के सामने सैनिकों और चाटुकारों की भीड़ रहा करती थी वहाँ आज निर्जनता देखकर मनुष्य जीवन की असारता पर दो-चार बहुत ही सुन्दर विचार

सुंदरी पर दया आई। उस बेचारी के हृदय पर क्या बीत रही होगी ?

वह घर के सामने के चौक में गया जहाँ कोठरी में इक्के-दुक्के मनुष्य निश्चिन्त होकर लेटे पड़े थे।

एक कोने में गेरूई ध्वजा पर स्वर्ण-खचित कुक्कुट-पाटण की पताका भूमि पर रखी हुई थी, दूसरी ओर धौंसे की साँड़नी धीरे-धीरे पागुर कर रही थी। आम्रभट को अपनी नई सत्ता का भान हुआ। कल से जहाँ वह रहेगा वहाँ यह पताका फहरायगी और ये नगाड़े बजेंगे।

वह चौक में होकर अंदर के कमरों के बन्द द्वार तक आया और हिचककर खड़ा रह गया। उसका हृदय धड़कने लगा। विदेश में, अन्य नगर में, लोकप्रिय, और प्रतापी वीरश्रेष्ठ के घर में, ठीक दुपहर को, अकारण ही उसकी स्त्री से भेंट करने के लिए वह खड़ा हुआ था। काक की स्त्री को उसकी सहायता या उसके आश्वासन की आवश्यकता ? कितना हास्यास्पद कारण। माधव और तेजपाल मन में क्या समझे होंगे ? उसका मन वहाँ से लौट जाने को हुआ।

किन्तु लौटे कैसे ? कहार क्या सोचेंगे—माधव और तेजपाल क्या धारणा बनाएँगे ? नागरिक क्या समझेंगे ? ऐसी डूबती-उतराती स्थिति में वह खड़ा रहा।

अंदर कोई बोल रहा था। उसकी आवाज़ एक जाली में से आ रही थी। लकड़ी की नन्हीं जाली में से उसने देखने का प्रयत्न किया, किन्तु स्पष्ट कुछ दिखाई न पड़ा। चार-पाँच मनुष्य-भर बैठे हुए दिखाई दिए।

किन्तु आम्रभट के हृदय में उस स्वर ने विचित्र झंकार उठा दी—अविमुक्तेश्वर के मंदिर वाली सुंदरी का स्वर !

'भगवान् पार्श्वनाथ !' उसने धीरे-से निःश्वास लिया। उस मँजी हुई वाणी की मिठास, उसके भाव कुछ निराले ही थे।

'पुराणी काका! वह गूहक की प्रशंसा याद है न? सोमेश्वर कभी से मेरा सिर खा रहा है। उसे सुनाओगे? मैं भूल गई हूँ।'

एक वृद्ध वाणी हास्य कर उठी।

'किसलिए सिर खा रहा है?' उस स्वर ने प्रश्न किया।

'यह कहता है कि आपका भतीजा लाट की सत्ता भोगना छोड़कर पाटण की सेवा कर रहा है।' उस सुन्दरी का स्वर सुनाई पड़ा।

'इसीलिए जयदेव महाराज जब चाहें एक घड़ीमें उन्हें बुला सकते हैं। क्यों? वे कोई साधारण पुरुष नहीं हैं। सोमेश्वर का स्वर सुनाई पड़ा। 'इनके हाथ में राजदंड तो शोभा देता है—लकड़ी नहीं।'

'तू समझता क्या है?' पुनः उस स्त्री का स्वर सुनाई पड़ा। 'ऐसा होता तो भीष्मपितामह धृतराष्ट्र को सिंहासन क्यों सौंपते? श्री कृष्ण उग्रसेन को यादवाधीश क्यों बनने देते?'

'तभी तो धृतराष्ट्र ने राज्य किया और अठारह अक्षौहिणी सेना का निकंदन हो गया और उग्रसेन के लिए यादवास्थली बनी।' सोमेश्वर कहता सुनाई पड़ा।

वह स्त्री हँसी। कैसा मधुर हास्य! आम्रभट के मुंह में पानी आ गया।

'काका! इस बालक को आदि कवि वाल्मीकि के वचन सुनाओ तो!'

थोड़ी देर तक पुराणी गला खखारता रहा और फिर अपनी कर्कश आवाज़ में बोला:

धन्यस्त्वं न त्वया तुल्यं पश्यामि जगती तले।
अयत्नादागतं राज्यं यतस्त्वं त्यक्तुमिच्छसि॥*

'समझा?' उस स्त्री की आवाज़ आई। 'भरत ने बिना प्रयत्न

---

*धन्य है तू कि, तेरा जैसा दूसरा संसार में नहीं देखा क्योंकि बिना माँगे मिले हुए राज्य को भी तू छोड़ना चाहता है—रामायण।

किये हुए हाथ आया राज्य त्याग दिया इसीलिए वह महान् बन गया। उन्हीं जैसे व्यक्ति धन्य हैं, तेरे जैसे लोभी नहीं। वह हंसी। पुनः उस मधुर हास्य को सुनकर आम्रभट अधीर हो गया।

'अच्छी बात है।' हंसकर सोमेश्वर ने कहा, 'हम लोभी हैं तो लोभी ही सही। हमारे भाग्य में न भरत होना लिखा है न रामचंद्र।'

'कैसे जाना?' उस स्त्री ने पूछा।

आम्रभट का अधीर मन अब और अधिक न रुक सका। उसने आगे बढ़कर कड़ा खटखटा दिया। उसके मस्तिष्क में उस सुंदरी के शब्द घूम रहे थे।

इतने में उसकी दृष्टि उस सांड़नी के हाँकनेवाले पर पड़ी। वह साँड़नी को खड़ा करने का प्रयत्न कर रहा था। संभव है वह धौंसा निशान यहाँ से ले जा रहा हो। जिस प्रकार आदि कवि को काव्य की प्रेरणा हुई थी उसी प्रकार उसका श्लोक सुनकर आँबड़ महेता को एक प्रेरणा हुई, यहाँ आने का कारण सूझ गया। 'बिना प्रयत्न किये हुए हाथ आया राज्य त्याग दे वही महान् होता है।' वह गुनगुनाया।

'हो—हो—कौन आँबड़ भाई! तुम किधर से?' कहकर मणिभद्र ने द्वार खोलकर उसका स्वागत किया।

कल जिस कमरे में काक से भेंट की थी उसी कमरे में आँबड़ बैठा। हिंडोले पर पुराणी काका और सोमेश्वर बैठे हुए थे। अन्दर के कमरे की देहली पर शाक काटती हुई वह सुंदरी बैठी हुई थी।

आम्रभट ठगा-सा देखने लगा। वही मुख, वे ही आंखें, वही भंगिमा, वही रेखाएँ! संपूर्ण प्रकोष्ठ में अनंत यौवन के अधिकारी देवों के नृत्य में विभोर स्वर्गलोक का-सा उल्लासजनक, मादक वातावरण था। दो विशाल, तेजस्वी नयन उस पर टिके हुए थे। मंजरी का संगमरमर-सा श्वेत भाल दुविधा से आकुंचित हो गया।

दो दिन से जिसके लिए प्रतिक्षण प्राण व्याकुल थे उसी रमणी को यहाँ देखकर उसे रोमांच हो आया। वह अपने आप पर वश न रख सका;

और आगे भी न बढ़ सका। वह अपनी सुध-बुध खो बैठा।

सोमेश्वर लाट का युवक, रूपवान योद्धा था। वह काक को शंकर और मंजरी को पार्वती समझता था। इन दोनों के बीच उसकी भक्ति, उसका हृदय, उसकी सेवा बंटे हुए थे, और शंकर की अनुपस्थिति में अरक्षित पार्वती का अपमान करने के लिए आने वाले की ओर जिस प्रकार नंदी देखता है उसी प्रकार वह आँबड़ की ओर देखने लगा। वह काक का शिष्य था; गुरु की कृपा से वह समय और रुचि परख सकता था। उसने मंजरी के भाल पर पड़ी सिकुड़न देखी। वह हिंडोले पर से उठा, द्वार तक आया और आँबड़ और मंजरी के मध्य में खड़ा हो गया।

'कहिए भटजी! इस समय यहाँ?'

डूबता हुआ तारा जैसे प्रबलता से चमक उठता है वैसे ही आँबड़ में साहस आया।

'सोमेश्वर! मुझे देवी से बात करनी है।' वह देहली के अन्दर आगया! जैसे-जैसे वह बोलने लगा वैसे-वैसे उसमें साहस बढ़ता गया। 'देवी! क्षमा करना कोई बाहर था नहीं इसलिए पहले से सूचना न भिजवा सका।'

संस्कारी स्त्री की स्वाभाविक सभ्यता से मंजरी बोली, 'आओ भाई, बैठो। इस समय कैसे?'

आँबड़ जाकर हिंडोले पर बैठ गया। उसने अपनी प्रेरणा का उपयोग किया, 'देवी! मैं एक याचना करने आया हूं।'

'क्या?' गर्व से ऊपर देखते हुए मंजरी ने पूछा। आम्रभट उसकी आँखों की चमक को ध्यान से देखने लगा।

'भटराज कुछ ही दिनों में लौट आयंगे और मैं तो उनका दास मात्र हूं। ये धौंसानिशान यहीं रहने दूं तो कैसा? मैं नगरसेठ के यहाँ भी तो मात्र अतिथि हूँ। आपकी आज्ञा हो तो मैं और माधव प्रतिदिन प्रातःकाल यहाँ आ जाया करें और थोड़े-बहुत लोगों से मिल-

मिला लिया करें। सारी शोभा तो काक भटराज के यहां भली लगती है। मैं तो उनके पुत्र के समान हूं।'

मंजरी और सोमेश्वर ने एक-दूसरे के सामने देखा। दोनों में से एक भी इस सौजन्य का अर्थ न समझ पाया। वास्तविक अर्थ तो दोनों में से एक भी नहीं समझ सकता था।

'भाई!' मंजरी बोली, 'जहां तुम निवास करते हो वहीं यह सब ठाठ शोभा देगा।'

'मैं यहां से यह ठाठ ले जाऊंगा तो लोग कहेंगे कि इस विदेशी ने आकर लाट का गौरव छीन लिया। मेरा काम लाट को प्रसन्न करना है—उसके हृदय को कष्ट पहुंचाना नहीं।' आम्रभट की जिह्वा में अप्रत्याशित चतुरता आ गई। जैसे-जैसे वह बात कर रहा था वैसे-वैसे उसके मुंह पर निर्मलता और सच्ची लाग के भाव निखरते जा रहे थे।

'बाहर जहां काक भट जी बैठते थे वहीं कुछ समय तक हम बैठेंगे। आपको तनिक भी असुविधा न होने देंगे।' आंबड़ ने पुनः याचना की।

'सम्भव है देवी को अच्छा न लगे।'

'नहीं! मुझे कोई असुविधा न होगी। मैं तो सामने का चौक काम में लाती ही नहीं।'

'तो फिर मेरी प्रार्थना स्वीकार कर कृतार्थ कीजिए।'

'अच्छी बात है, अभी जैसा चलता है वैसा ही चलने दो।' आम्रभट की बांछें खिल गईं। वह अपने उद्देश्य में सफल हो गया।

'तो, सोमेश्वर, निशानदार को कह दो कि धौंसानिशान यहीं रहने दें। मैं दूसरा आज्ञापत्र लिख दूंगा। देवी! अब आज्ञा लूंगा। क्षमा कीजिएगा।'

'आंबड़ भाई, पान तो लेते जाओ।' मणिभद्र ने कहा।

'लाइए। माधव बाट जोहता होगा। मुझे उसके यहां भोजन करना

है।' कहकर वह मंजरी के सामने देखकर मुस्करा दिया।

मंजरी नीचे देखती शाक काटती रही।

आँबड़ ने पान लिया और नमस्कार करके विदा ली।

'जो कुछ भी हो, आँबड़ भाई है आदमी लाख रुपए का।' मणिभद्र ने प्रमाण-पत्र दिया।

'लड़का लगता भला है।' मंजरी ने कहा।

'जो यह कहता है यदि वह सब सच है तो बुरा नहीं है,' सोमेश्वर बोला। 'एक और बात अच्छी होगी। महाराज समझते थे कि हेमचन्द्र और यह मिले हुए हैं। यहाँ बैठक होगी तो मेरी भी दृष्टि रहेगी।'

: २३ :

हेमचन्द्र चकित हो जाता है

आँबड़ के मस्तिष्क में प्रथम बार गाड़ी में जुते हुए नए घोड़े का-सा ताव आया। उसे लगा कि वह महान् पुरुष है, लाट का सत्ताधीश है, ये सब लोग उसकी आज्ञा के आधीन हैं। मंजरी जैसी मोहक स्त्री के लिए उत्पन्न मोह का उत्साह उसकी रग-रग में समा रहा था, और आज प्रथम प्रयास ही में विजय पाई थी। उसके प्राण मदोन्मत्त थे। प्रथम बार ही उसे अपनी शक्ति में पूरा-पूरा विश्वास हुआ।

वह बिलकुल ही कच्चा न था। माधव और तेजपाल को सारी योजना बता देना उसे जँचा नहीं। किन्तु आनन्द उसके मुख पर से टपका पड़ता था। तेजपाल और माधव ने उसे नई सत्ता के मद का परिणाम समझा।

अन्त में माधव के यहाँ भोजन समाप्त हुआ, और तीनों व्यक्ति तेजपाल सेठ के यहाँ आए।

वे तीनों सेठ के घर पहुंचे उससे कुछ ही समय पहले हेमचन्द्र सूरि आगए थे। रेवापाल घर में था। उसीने इस युवक साधु का स्वागत-सत्कार करके उसे चौकी पर विठाया। सूरि के साथ आने वाले आस-पास बैठ गए।

रेवापाल इस नए साधु से पिछले दिन भेंट कर आया था, और वह भृगुकच्छ किसलिए आये थे इसका रहस्य जानने का भी उसने प्रयत्न किया था। किन्तु इस बालक दिखाई पड़ने वाले साधु का व्यक्तित्व विचित्र था। वाक्य वह ऐसे बोलता था कि उनका अर्थ स्पष्ट समझ में नहीं आता था। उसकी बातचीत में कुछ इस प्रकार की अस्पष्ट विद्वत्ता होती थी कि सुनने वाले को उसके ज्ञान की अगाधता का तुरन्त भान हो आता था। उसके बात करने के शांत और अपरोक्ष ढंग में सत्ता और गर्व दिखाई तो नहीं पड़ते थे किन्तु थे अवश्य—यह सुननेवाला तुरन्त समझ जाता था।

'रेवापालजी! आपकी ख्याति सुनकर मैं प्रसन्न हुआ हूं। आपके कुल और आपके पिता की कीर्ति को आपने उज्वल किया है। असंतोष इतना ही है कि जितने आप रणवीर हैं उतने धर्मवीर नहीं।'

'मुझसे जितना बन सकता है मैं करता हूं।' रेवापाल ने कहा। उसे साधुओं के साथ बात करने से चिढ़ थी।

'किन्तु शिवमन्दिर की ओर तनिक पक्षपात अवश्य है न?' हेमचंद्र सूरि ने प्रश्न किया। इस बात से उन्होंने जैन और शैव संप्रदाय के बीच विरोध है इस वाद-विवाद को बड़ी चतुरता से छेड़ दिया।

'आप जैसे योद्धा में वैराग्यात्मक शुद्ध वृत्ति आते समय लगेगा, राज्य-धर्म की ओर भी झुकाव होगा। किन्तु आप तो लाट के श्रावक-श्रेष्ठ हैं, आपको तो पहले अपने धर्म का पोषण करना चाहिए।'

रेवापाल इस समझदार युवक की बातें अधीर होकर सुनने लगा, उसने उत्तर नहीं दिया। सूरि आगे बढ़े, 'अच्छा तो आप शस्त्र किसलिए धारण करते हैं? आप तो अहिंसा-धर्म सहज में ही ग्रहण कर सकते हैं।'

'मुझे अहिंसा धर्म रुचता नहीं।'

'अरेरे!' मृदुलता से हँसकर साधु ने कहा।

'आप एक बार खंभात पधारिए, आपके संकल्प में परिवर्तन हो जायगा।'

'लाट न छोड़ने का मैं प्रण कर चुका हूं।'

'अच्छा! किसलिए?'

'लाट का सौभाग्य लुट चुका है। उसकी दुर्दशा में कैसे उसे छोड़ दूँ? यदि लाट की विजय-सेना खंभात आती तो मैं भी अवश्य आता।' निराशा-भरी वाणी में रेवापाल ने कहा।

'जयदेव महाराज के राज्य में कोई कमी हो सकती है यह मेरी समझ में नहीं आता।'

'स्वाभाविक ही है।' तनिक कठोरता से रेवापाल ने कहा। दूसरे ही क्षण उसे ध्यान आया कि सूरि बात करना नहीं चाहते थे वरन् उससे बात निकलवाना चाहते थे। उसने तुरन्त बात फेर दी, 'आप कब तक ठहरेंगे?....लीजिए यह पिताजी और आँबड़ महेता आगए।' कहकर वह चुप हो गया और ऊंचा खिसककर बैठ गया।

'अरे, प्रभू! क्षमा कीजियेगा! माधव भट ने तो ऐसा भोजन कराया कि समय का भान ही न रहा। मुझ रंक का घर पवित्र हो गया।' तेजपाल सेठ ने दण्डवत् प्रणाम किया। माधव ने नमस्कार किया। सूरिजी ने सभी को 'धर्म-लाभ' कहा। पाटण की राज्य-सत्ता के प्रतिनिधि इस त्रिगुट की ओर एक तिरस्कार-भरी दृष्टि डालकर रेवापाल वहाँ से चला गया।

'सूरिजी महाराज! आप ऊपर पधारिएगा? मुझे कुछ पूछना है।'

तेजपाल ने वहाँ बैठे हुए अपरिचितों को हटाने के उद्देश्य से कहा।

'नहीं। ऊपर क्यों? हम लोग अब जायंगे।' कहकर सब उठ खड़े हुए और सूरिजी के चरण-स्पर्श करके चले गए।

'आँबड़!' हेमचन्द्र बोला, 'अब बोल! क्या करना है?'

'करना क्या है? जैसा चलता है चलेगा।'

हेमचन्द्र ने तनिक चकित होकर आम्रभट की ओर देखा।

'अर्थात्?'

'सेना तो इन भटराज के आधीन है। शेष कार्य सेठ और मैं करेंगे।'

'किन्तु तुम्हें किस कारण यहाँ भेजा है यह तुम्हें मालूम है?'

'हाँ।'

'तो अब लाट की सत्ता काक के हाथ से अपने हाथ में लो। देखो न—' हेमचन्द्र ने तेजपाल और माधव की ओर घूमकर कहा, 'त्रिभुवन ने काक की सत्ता यहाँ ऐसी जमने दी कि लगता है लाट वास्तव में काक का है महाराज का नहीं। इसीलिए महाराज ने काक को बुला लिया और आम्रभट को नियुक्त किया। अब आप तीनों पाटण की सत्ता के प्रतिनिधि हैं। अब आपको ऐसी युक्ति करनी चाहिए जिससे काक के हाथ में केन्द्रित सत्ता फिरसे महाराज के हाथ में आ जाय।'

किन्तु अब वह है ही कहाँ?' माधव बोला।

'वह चला गया, महाराज तो समझते थे कि उनकी आज्ञा का अनादर कर यहाँ से निकलेगा ही नहीं।'

'हाँ। इसीलिए मुझे भी आज्ञा-पत्र मिला था कि बल से या छल से काक को यहाँ से रवाना करना है।' माधव ने कहा।

'आँबड़ महेता मेरे नाम भी ऐसा ही आज्ञा-पत्र लाए थे।' तेजपाल ने कहा।

'काक तो गया,' आँबड़ बोला, 'अब और क्या रह गया है?'

'उसकी अनुपस्थिति-मात्र से क्या होने का है? उसकी सत्ता जड़ से उखाड़ फेंकना है। मान लो वह कल फिर आजाय तो?' सूरि ने पूछा।

वृद्ध तेजपाल की कानी आँख हेमचन्द्र से आँबड़ और आँबड़ से हेमचन्द्र पर डोलती रही। ऐसे समय पर एक अक्षर भी बोलकर अपना अभिप्राय प्रकट करे ऐसा कच्चा बनिया वह न था।

'किन्तु अब करना क्या रह गया है?' तनिक अधीर होकर आँबड़ ने पूछा।

'पहले तो उसके आदमियों को हटाकर उसके हाथ की सत्ता अपने हाथ में करो।'

'किन्तु अब सत्ता है किसके हाथ में?'

'सोमेश्वर नए गढ़ का गढ़रक्षक है। उसका मित्र भाभासेठ कोठारी है। उसके घर का आदमी रुद्रमल्ल लाट सेना का नायक है। इन तीनों को हटाना होगा।' हेमचन्द्र ने कहा।

तेजपाल इस बालक-से सूरिकी जानकारी और शक्ति देखकर धक् रह गए। केवल आँबड़ के मस्तिष्क में सोमेश्वर का नाम सुनकर मंजरी की बात आई। उसे लगा मंजरी उसीकी है, उसकी मान-प्रतिष्ठा बढ़ाने का उसने निश्चय किया था। और ये तो उसके आदमियों को हटाने की, उसके ठाठ को नष्ट करने की, उसके पति की प्रतिष्ठा भंग करने की बात कर रहे थे। उसे लगा मानो उसीकी प्रतिष्ठा लूटने की बात हो रही हो, कोई उसीका अपमान कर रहा हो, ऐसा उसे लगा।

'और धौंसानिशान' शांत सूरि की बात आगे चली, 'काक के यहां है उसे भी मंगवा लो।'

आँबड़ के सिर पर मानो चोट लगी। धौंसानिशान तो काक के यहां रहेगा ऐसा वचन वह मंजरी को दे आया था। वहां से वह कैसे मंगाले? मंजरी के घर को क्यों शोभाहीन बनाया जाय? लाट की साम्राज्ञी जैसी सुन्दरी को कैसे एक साधारण घर की गृहिणी बना दिया जाय? आंबड़ के मस्तिष्क में उसके घर के कमरे का मादक वातावरण रमा हुआ था।

उसी वातावरण में दो विशाल, तेजस्वी और जादू-भरे नयनों ने उसकी ओर निःसहाय होकर किन्तु गर्व से देखा था। वे नयन उससे स्पष्ट पूछ रहे थे—'आँबड़ महेता! मुझे वचन देने के बाद मेरे वर को निस्तेज कर दोगे? लाट में प्राप्त मेरा स्थान छीन लोगे?' अधीर प्रणयी का, उसका उत्साही हृदय इस प्रार्थना को अस्वीकार न कर सका। जब तक वह है तब तक किसकी मजाल कि उसकी-हाँ-उसकी मंजरी के ठाठ के सामने उंगली तक उठा सके।

'आँबड़! किस विचार में पड़ गए?' सूरि का शान्त स्वर सुनाई पड़ा। आँबड़ कल्पनासृष्टि से लौटा, किन्तु उस सृष्टि में किया हुआ निश्चय साथ लेता आया।

'अभी-अभी आपने क्या कहा था?' उसने तनिक ताव में पूछा।

'काक के यहां से धौंसानिशान मंगवा लो। हेमचन्द्र के स्वर में तनिक कठोरता का पुट था।

'किसलिए?' आँबड़ ने क्रोध से कांपते हुए स्वर में पूछा।

'महाराज की आज्ञा है इसीलिए।'

'महाराज ने मुझे ऐसी आज्ञा नहीं दी।'तेजपाल और माधव दोनों की ओर देखने लगे। इन दोनों ने हेमचन्द्र और आँबड़ को एक ही समझ रखा था।

'अर्थात्? धौंसानिशान तुम काक ही के यहां रहने दोगे?'

'निश्चय ही।'

'क्या कहते हो तुम? तो लोग यही मानेंगे कि काक ही सत्ताधीश है।'

'इससे बिगड़ेगा क्या?' आँबड़ ने पूछा। 'महाराज को भ्रम है कि काक विश्वासघाती है। उसीने महाराज को लाट दिलवाया और अब पाटण उपकार न मानकर उलटी उसकी सत्ता ही ले ले?'

'किन्तु उदा महेता ने यही करने को कहा है।' दुःखित स्वर में हेमचन्द्र ने कहा।

'भृगुकच्छ का दुर्गपाल मैं हूँ, उदा महेता नहीं।' आँबड़ ने कहा।

हेमचन्द्र का मुख फीका पड़ गया। तेजपाल काक का शत्रु न था अतः आँबड़ का अभिप्राय समझकर वह भी बोला, 'आँबड़ महेता की बात तो सच है। ऐसा न होगा तो लाट में लोग तहलका मचा देंगे।'

'आँबड़!' सूरि कहने लगे। किन्तु फिर कुछ सोचकर वे नगरसेठ और माधव की ओर मुड़े, 'आप थोड़ा हमें एकान्त में छोड़ सकेंगे? आँबड़ समझ नहीं रहे हैं कि वे क्या कर रहे हैं।'

आँबड़ का इस ओर ध्यान न था। वह तो किसी सुन्दरी के युगल नयन में से झरते हुए आभार को स्वीकार कर रहा था। सेठ और माधव दोनों उठकर दूर चले गए।

'पागल! तू क्या बक रहा है इसका भी भान है?'

'सूरिजी! दुर्गपाल मैं हूं, आप नहीं। आप मेरे बीच में न पड़िए।'

'किन्तु इसी के लिए तो मैं खंभात से यहां आया।'

'बुलाया मैंने नहीं था,' आँबड़ ने उत्तर दिया; 'पिताजी ने भेजा है। उन्ही से पूछ आइये।'

'ध्यान है, तू राज-द्रोह कर रहा है?' कठोरता से सूरिजी ने कहा।

'मैं तो केवल एक पुराने राज-सेवक की प्रतिष्ठा लुटने नहीं दे रहा हूँ।'

'तो उसके आदमियों को भी रहने देगा?'

'जैसा चलता आया है वैसा ही चलने दूँगा।' आँबड़ ने आश्वासन दिया।

'तो मैं अब यहाँ से चला जाऊंगा।' सूरि ने अन्तिम धमकी दी।

'जैसी इच्छा हो।'

'अच्छा!' तनिक तिरस्कार से हेमसूरि ने कहा। उनके मधुर स्वर में तुरन्त परिवर्तन हो गया। जैसे कुछ हुआ ही न हो इस तरह शांत होकर स्वर को ऊंचा करके कहा, 'भाई, तुम जानो। जैसा तुम्हारे ध्यान में आए वैसा करो। मुझे जो ठीक लगा मैंने तुम्हें कहा।'

नगरसेठ और माधव यह सुनकर निकट आए। आंवड़ को लगा मानो उसने बड़ी विजय पा ली हो। उसने कहा, 'महाराज ! कल प्रातः-काल हमारी भेंट होगी किन्तु साम्बा बृहस्पति के वाड़े ही में।'

सूरि हँसा। 'हाँ, लोगों को यदि वहीं जाने की टेव हो तो वहीं मिलना। अच्छा, अब मैं चला। तेजपाल सेठ ! कुछ दिन पश्चात् मैं यहां से प्रस्थान करूंगा।'

'यह क्यों ? एकाएक ?'

'हां। तनिक इधर आओ तो !' सूरि ने उठकर तेजपाल सेठ को बुलाया। सेठ गये।

'ये यति यदि बीच-बीच में माथा न मारे तो अधिक अच्छा !' माधव नागर ने उद्गार प्रकट किए।

'इससे क्या ?' आँवड़ ने उत्तर दिया। उसकी कल्पना में दो ललित, मनोहर अधर उसे साधुवाद देते दिखाई पड़े।

'प्रातःकाल के पश्चात् आँवड़ ने किसी से भेंट की थी ?' सूरि ने प्रश्न किया।

'यह काक की स्त्री मंज़रीसे भेंट कर आया है।' सेठ ने उत्तर दिया।

दोनों मौन रहे। सूरि ने उस स्त्री से भेंट करने का निश्चय किया।

: २४ :

भृगुकच्छ का नवीन गढ़

आँवड़ महेता के कोमल मुख पर संतोष छाया हुआ था। अन्ततः भृगुकच्छ आना असफल नहीं हुआ। वह सचमुच में दुर्गपाल बन गया था, मंजरी के समान अपूर्व सुन्दरी भी मिल गई थी। वह एकांत

में लेटे-लेटे हँस दिया। विधि को जो करना होता है वह क्या नहीं कर सकती ?

कैसा उसका रूप था ! कितनी मोहक उसकी वाणी थी ? उसने उस से बात की थी, उसके निकट बैठा था। वह कुछ-कुछ हँसी भी थी ! कल प्रातःकाल ही वह उसके यहाँ जाकर अपनी नई सत्ता की चमक भी दिखा सकेगा।

ऐसा लग रहा था मानो चारों ओर स्वप्नमय वातावरण छाया हुआ हो। उसकी रग-रग में जादू-भरी झंकार हो रही थी। सूर्य और व्योम के वर्ण में सृष्टि की रचना में कुछ विचित्र आकर्षण लग रहा था। पूर्ण विलासी की रसिकता से वह इस सबका अनुभव कर रहा था। एकाएक उसकी आँखों के सम्मुख मंजरी की लम्बी सुन्दर देह आकर खड़ी हो गई। उसके अंग-अंग से झरते हुए आकर्षण ने उसे चकाचौंध कर दिया। वह उसकी खुली हुई आँखों की ओर इस प्रकार देखने लगा मानो धीरे-धीरे संज्ञा खो रहा हो।

उसकी कल्पना सृष्टि में प्रातःकाल की मंजरी आ गई—गर्विष्ठा, प्रतापी, विद्वान्, किन्तु यह उसके समान न चकित हुई, न लजाई और न संकोच में ही मरी। उसके लिए प्रशंसा करने वाले अनेक युवकों में से वह भी एक था।

उसके मोहाच्छन्न हृदय पर पानी पड़ा। उदा महेता के पुत्र के पद का इस सुन्दरी के लिए कोई मूल्य नहीं था। श्रावक-श्रेष्ठ के सम्मान की उसे चिन्ता न थी। खम्भात की तरुणियों के हृदय का हार बनने की उसे चिन्ता न थी। पाटण की सेना के महारथी उसकी सेवा करते थे, भृगुकच्छ के पंडित शिरोमणि उसकी पूजा करते थे। इसके और उसके मध्य में एक अभेद्य व्यवधान था और इस पारदर्शी व्यवधान में से देख-देखकर—दूर रखी हुई शक्कर की एक अद्भुत मूर्ति देखकर किसी मूर्ख लड़के के मुँह में जैसे पानी आ जाता है, वैसी ही दशा आम्रभट की हो रही थी।

उसका आत्म-संतोष जाता रहा, उसका हर्ष नष्ट हो गया, उसके आशा के महल ढह गए। उसकी एक मीठी दृष्टि के लिए अनेक युवतियाँ प्राण देने के लिए तत्पर थीं, किंतु यह युवती यदि वह स्वयं भी उसके चरणों पर जाकर गिर जाय तो भी एक पलक न हिलायगी ऐसी थी। आँबड़ पसीने से लथपथ हो गया।

थोड़ी देर के लिए उसका अभिमान जाग पड़ा। उसे इस बात का भान हुआ कि प्रणयी की कला प्रतापी को नहीं आती। किन्तु रसीली सुन्दरियां महत्ता के पीछे ही प्राण नहीं देतीं इस सिद्धांत ने उसे आश्वासन दिया। हृदय रिझाने की कठिन कला तो उसके जैसे किसी अद्भुत कलाकार ही के भाग्य में लिखी होती है। उस कला की इस समय सचमुच कसौटी आ गई है, ऐसा उसे लगा।

ऐसे ही तर्क-वितर्क में आम्रभट ने दुपहर व्यतीत कर दी। वह मंजरी के पुनः दर्शन करने के उपाय सोच रहा था। इतने में एक पार्श्वग ने सूचना दी कि सोमेश्वर भट भेंट करने के लिए आए हैं। आलसी आम्रभट तत्काल उठ बैठा। उसकी मंजरी का आदमी! विधि की अनुकूलता! क्या मंजरी ने नए दुर्गपाल को बुलाने भेजा है? उसने सोमेश्वर भट के हाथ क्या संदेशा भेजा होगा?

जहां वह बैठा हुआ था वहां सोमेश्वर आया और नमस्कार करके विनय से बैठ गया। आम्रभट ने नमस्कार का उत्तर दिया। थोड़ी देर तक दोनों एक-दूसरे की ओर देखते रहे।

'कहिए भटजी!' आम्रभट ने पूछा।

'महाराज!' शांति और विनय से सोमेश्वर ने कहा, 'आपको नया गढ़ दिखाने के लिए लेने आया हूं।'

'अच्छा।' हँसकर आम्रभट बोला। 'गढ़ की कुञ्जियां आपके पास हैं यह मैंने सुना है। चलिए।' कहकर आंबड़ वस्त्र धारण करके तैयार हो गया। जो सोमेश्वर मंजरी के निकट रहता था उसके साथ फिरना भी उसे सुखदायक लगा।

'सोमेश्वर जी!' जब वे पालकी में बैठकर गढ़ की ओर चले तब आँबड़ ने बात छेड़ी, 'आप भटराज काक के सम्बन्धी हैं?'

'बहुत दूर का, वे मेरे गुरु हैं।'

'बहुत प्रभावशाली व्यक्ति हैं न?' काकसे मंजरी की बात पर किस प्रकार आया जाय इसका विचार करते हुए आम्रभट ने पूछा।

'आप सब उन्हें सामान्य व्यवहार ही से जानते हैं। अतः उनकी वास्तविक महत्ता की आप कल्पना भी न कर सकेंगे।'

'नहीं, नहीं, ऐसी क्या बात है?'

'महेता जी! उनका सचमुच का मूल्य जानने के लिए तो मेरी तरह आपको भी उनके चरणों की सेवा करनी चाहिए। उनकी युद्ध-कला और बुद्धि, उनके आचार और विचार तभी समझ में आ सकेंगे। यह तो कलयुग है, और भृगुकच्छ पराधीन है इसलिए काकभट दुर्ग-पाल बने सड़ रहे हैं।'

'तो पाटण क्यों नहीं आ जाते?'

सोमेश्वर ने एक तीक्ष्ण दृष्टि आंबड़ पर डालकर कहा, 'आपके राजा और मंत्रियों में साहस कहां है कि उन्हें वहां आने दें। उन बिचारों का भागना कठिन हो जायगा।'

आम्रभट खड़खड़ हंस पड़ा। इस लड़के में कितना अभिमान और अज्ञान! सोमेश्वर तनिक दया से हंसकर देखता रहा।

'सोमेश्वर! तुमने पाटण देखा है?'

'नहीं।'

'महाराज को, मेरे पिताजी को, और मुंजाल महेता को देखा है?'

'नहीं, देखा तो नहीं, किन्तु उनके विषय में सुना बहुत है।'

'तो तुम समझते हो तुम्हारे गुरु इन सबसे बढ़कर हैं?'

'मैं तो इतना जानता हूं कि इतने वर्ष होगए आपसे न जूनागढ़ जीता गया, न लिया गया। और जिसने लाट लिया, अकेले नवघण रा'को पकड़ा, और शेषनाग के पास से मुंजाल महेता के पुत्र को ले आए उस महा-

रथी को पाटण में रखने का आपके महाराज और मंत्रियों में साहस नहीं है, और उनका अपमान करने की योग्यता भी नहीं है।'

'तुम भी अपने गुरु के ही समान सरस बोलते हो', आँबड़ ने हंसकर कहा, 'या अपनी गुरुपत्नी से यह सब सीखकर आए हो?'

एक क्षण के लिए सोमेश्वर की आँखों में शंका झलकी।

'कभी देवी की विद्वत्ता देखी भी है?' तिरस्कार से सोमेश्वर ने पूछा।

'नहीं, सुना बहुत है।'

'किसी पण्डित को पूछ लीजिएगा।'

आम्रभट के मुंह में पानी आया।

'तुम तो गुरु और गुरुपत्नी दोनों के बड़े भक्त हो?'

सोमेश्वर के अंतर में का पूज्य भाव प्रकट हुआ 'भटजी! इन दोनों के चरणों की सेवा करने के सिवा मेरा और कोई इच्छा नहीं है।'

'तो, इन दो में से बढ़कर कौन है? तनिक मुस्कराकर आम्रभट ने पूछा।

'इस प्रश्न का उत्तर आज बारह वर्ष होने पर भी मुझे नहीं सूझा। आम्रभटजी! भटराज निर्जीव को भी महारथी बना देते हैं और देवी पत्थर को भी पण्डित बना देती हैं। इनमें बड़ा कौन, यह किस प्रकार कहा जाय?'

आम्रभट को हेमचन्द्रसूरि का स्मरण हो आया। उन्होंने उस पर अपनी सत्ता जमाने का प्रयत्न किया था यह आम्रभट को खल रहा था, और हो सके तो उनकी तनिक हँसी उड़ाने का उद्दांत विचार उसके मस्तिष्क में उपजा।

'तुम्हारी देवी पंडितों से विवाद करती हैं?'

'हाँ, यदि उनकी रुचि हो जाय तो।'

'हमारे खंभात के एक शास्त्र-विशारद यहाँ आये हुए हैं। वे देवी से भेंट करने के लिए कह रहे थे।' आँबड़ ने गप मारी।

'देवी यों किसीसे भेंट नहीं करतीं।' सोमेश्वर ने उत्तर दिया।

'हमें यहाँ उतर पड़ना है क्या?' पालकी के गढ़ और प्राचीन नगर के मध्य की खाई के सामने आ जाने पर आम्रभट ने कहा।

'हाँ'

इतने में प्राचीन और नूतन नगर के मध्य की खाई के सामने के घाट पर वे आ पहुँचे। पालकी खड़ी हो गई, और ये दोनों आस-पास खड़े लोगों के नमस्कार को स्वीकार करते हुए खाई के सामने खड़ी नौका में जा बैठे। थोड़ी देर में वे नए गढ़ की ओर उतर पड़े, और और गढ़ में जाने के लिए टीलों पर चढ़ने लगे।

सोमेश्वर पथ जानता था इसलिए वेग से चढ़ने लगा। पीछे हांपता-हांपता आँबड़ आया।

'सोमेश्वर! यह नया नगर तो अभी बसा है न?'

'जी, हाँ। पहले छोटा गढ़ था उसे गिराकर भटजी ने यह नया नगर बसाया।'

'मज़बूत दिखाई देता है।'

'महाराज! यह गढ़ चालीस वर्ष तक घेरा सहन कर सकता है।'

'हैं!' चकित होकर आम्रभट ने पूछा।

'हाँ।' थोड़ी देर तक दोनों मौन होकर चढ़ते रहे। अन्त में वे द्वार तक पहुँचे—'यह द्वार अभी बन्द क्यों है? प्रातःकाल तो खुला हुआ था।'

'भटराज गये तब केवल उस ओर का द्वार खोलने के लिए कह गए हैं।'

'उनको भृगुकच्छ की बड़ी चिन्ता है।' तनिक कटकर आँबड़ ने कहा।

'उनको न हो तो किसे हो?' तिरस्कार-भरी दृष्टि से सोमेश्वर ने पूछा।

'ठीक है। किन्तु दुर्गपाल तो मैं हूं अब !' हँसकर आम्रभट बोला।

'आप नए जो हैं।' शांति से सोमेश्वर बोला।

सोमेश्वर के द्वार की खिड़की खोलने पर एक सैनिक दौड़ता हुआ आया।

'देखा ! यह तो मैं सोमेश्वर,' सोमेश्वर ने कहा, 'और ये हैं नए दुर्गपाल। पधारिए आम्रभट जी।'

वे अन्दर गए, सोमेश्वर उन्हें कोट पर होकर ले गया।

आँबड़ नए भृगुकच्छ की इस कोट को देखकर आश्चर्य में आ गया। नया भृगुकच्छ नदी के ढाल की ओर के एक विशाल और ऊँचे टीले पर बसाया गया था। और टीले पर से बांधी गई कोट नदी की धारा से इतनी ऊंची थी, कि इस गढ़ को जीतने की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

'इस गढ़ को इतना बड़ा क्यों बनवाया ?'

'चारों ओर चक्कर काटती हुई रेवा माँ ने ऐसा किया है।' सोमेश्वर ने कहा, 'आवश्यकता पड़ने पर आधा ग्राम इसमें आ सकता है। इस समय इसमें तीन हज़ार सैनिक निश्चिंत होकर रह सकते हैं।'

'किन्तु कोई घेरा डाले तो इतने बड़े गढ़ में लोग भूखों मर जायँगे !'

'नहीं। इसकी बनावट ही ऐसी है कि तीन ओर से कोई भय ही नहीं है। आवश्यकता पड़ने पर पांच-सात मनुष्य ही इसकी महीनों तक रक्षा कर सकते हैं।'

'वह क्या है ?' एक घर की ओर हाथ करके आम्रभट ने पूछा।

'वह कोठार है।'

'इतना बड़ा ?'

'हाँ ! और इसे सदा भरा हुआ रखा जाता है।'

'अभी कोई घेरा डालने वाला था ?'

'जानता आदमी सदा सुखी।' कहकर दोनों आदमी गढ़ का चक्कर लगाने के लिए निकले।

: २५ :

देवा नायक

सोमेश्वर और आम्रभट गढ़ देख रहे थे। देवा नायक मौन होकर पीछे-पीछे चल रहा था। उसकी सफेद दाढ़ी पवन में लहरा रही थी। उसकी आंखें सम्मान से नीचे की ओर झुकी हुई थीं, किन्तु उसने अपने वृद्ध किन्तु सशक्त हाथ में अपना भाला अस्वाभाविक कठोरता से पकड़ रखा था। उसके आकुंचित कपाल पर इस समय बहुत सिकुड़नें थीं। कुछ देर पश्चात् उसने छिपकर आम्रभट की ओर देखा।

वह ध्रुवसेन का पुराना सैनिक था और काक के अनुचर के रूप में पाटण की सेना में आया था। ध्रुवसेन हारा, लाट की स्वतन्त्रता गई, पाटण की प्रभुता फैली इसकी उसे कुछ भी चिन्ता न थी। प्रतिदिन संध्या को वह अपनी झोंपड़ी में से निकलता और काक के चबूतरे पर जा बैठता और जैसे ही काक घर में आता वैसे ही वह पूछता—'भाई! कैसे हो ?' काक मुस्कराकर उत्तर देता, 'क्यों, देवा! प्रसन्न तो है ?' तब वह उत्तर देता, 'हां, भाई!' और चुपचाप वापस चला जाता। सम्पूर्ण सृष्टि में केवल इतनी-सी वस्तु में उसे रस था।

इस एकांतवासी प्राणी को संसार के साथ जोड़ने का एक-मात्र सूत्र काक था और वह उस सूत्र को पकड़कर भवसागर पार करने के लिए भी तत्पर था। उसके 'एकलदर्या' मस्तिष्क में काक का स्थान

ऐसा बन गया था कि उसकी स्थिति में कुछ भी हेर-फेर उसे रुचता नहीं था। काक दुर्गपाल हुआ, ब्याह किया, भटराज बना, यह सब कुछ उसे अच्छा न लगा। प्रति परिवर्तन के साथ काक उसका न रहकर दूसरों का होता जा रहा था, ऐसा उसे लगता था।

काक ने उसे गढ़ के कोठार का नायक नियुक्त किया यह भी उसे अच्छा न लगा। किन्तु अपने भाई की आज्ञा का अनादर भी न कर सका।

कल वह सदा के समान साम्या बृहस्पति के बाड़े में गया था। काक से भेंट हुई।

'देवा! मैं वंथली जा रहा हूँ।'

देवा ने ऊपर देखा। उसकी आंखों में व्याकुलता थी।

'मैं आऊं, भाई?'

काक स्नेह से हंस दिया।

'अरे देवा! फिर यहां कौन रहेगा?'

'जी।'

'देवी को देखते रहना।'

'जी।' देवा ने कहा और बैठ गया। उसके वृद्ध हृदय में एक अस्पष्ट वेदना जाग पड़ी। काक थोड़ी देर तक उसकी ओर देखता रहा। वह वृद्ध हृदय की व्यथा समझ गया।

'देवा! मैं शीघ्र आजाऊंगा, तू गढ़ को संभालना।'

'भाई! मैं जाता हूं।'

'अच्छा! देखते रहना।'

देवा मौन होकर बैठा रहा और घर में जाते काक की ओर देखने लगा। थोड़ी देर पश्चात् वह निःश्वास लेकर सिर हिलाता वापस गढ़ में चला आया। तब से उसका बोलना बन्द हो गया और उसका सिर सदा झुका ही रहने लगा। उसे लगा कि उसके 'भाई' से पुनः भेंट नहीं होगी। अतः नए दुर्गपाल को देख कर उसकी आंखों में विष

उतर आयी। उसके 'भाई' के सिवा और कोई दुर्गपाल हो जाय यह यह नहीं देख सकता था।

वह मौन ही चलता रहा। कोठार के सामने आकर आम्रभट और सोमेश्वर दोनों नदी की ओर देखने लगे। धीमे-से देवा सोमेश्वर के पास गया।

'सोमेश्वर!' देवा ने पूछा, 'आपको देर लगेगी?'

सोमेश्वर मुस्कराकर घूमा। काक के सभी आदमियों का देवा के प्रति स्नेह था।

'देवा, क्या बात है? आज भी 'भाई' के बाड़े जाना है?'

'हां, समय हो गया है।'

'किन्तु आज तेरे 'भाई' तो नहीं हैं।'

'इससे क्या?'

'तो जा।' सोमेश्वर ने कहा।

'सोमेश्वर! कोठार देखना हो तो देख लो।'

'आपको कोठार देखना है?' सोमेश्वर ने आँबड़ को पूछा। आँबड़ को इस नायक की असभ्यता और सोमेश्वर से बात करने का ढंग पसंद नहीं आए।

'यह कौन है?' आँबड़ ने तिरस्कार से पूछा।

'यह भटराज का विश्वासपात्र नायक है और यहाँ के कोठार का रखवाला है।'

'कहां जाने के लिए इस प्रकार अधीर हो उठा है?' तनिक रोष में नए दुर्गपाल ने पूछा।

देवा की नीचे झुकी हुई आंखें तनिक उठीं।

'भटराज के बाड़े जाना चाहता है। प्रतिदिन जाता है।'

तुम्हारे आदमी बहुत मुंह लगे हुए हैं।' आम्रभट ने कहा। देवा ने ऊपर देखा।

सोमेश्वर के भाल पर सिकुड़न पड़ी।

'महाराज ! देवा साधारण सैनिक नहीं, घर के आदमी जैसा है। जा देवा !' सोमेश्वर ने कहा।

देवा बिना कुछ बोले चला गया।

'प्रत्येक सैनिक यदि घर का आदमी होने लगेगा तो इस गांव का क्या होगा ?'

'भटजी !' सोमेश्वर ने कहा 'इसके जैसा विश्वासपात्र दूसरा नहीं। इसका अपमान करने से लाभ ?'

'लगता है यहाँ दुर्गपाल के मान के सिवा संपूर्ण गाँव का मान भस्म हो चुका है।'

'देखिए न, आज पन्द्रह वर्ष से प्रतिदिन यह भटराज के यहाँ जाता है। वह जायगा, थोड़ी देर तक चबूतरे पर बैठेगा और लौट आयगा। गए बिना यह रह नहीं सकता।'

'मुझे ऐसे नौकर अच्छे नहीं लगते।'

'ऐसे नौकर आपको मिलेंगे भी नहीं।' तनिक मुस्कराकर सोमेश्वर ने कहा। वे आगे बढ़े।

देवा नायक चुपचाप गढ़ से उतरकर पुराने नगर में होकर साम्बा बृहस्पति के बाड़े में आया और काक के चबूतरे पर इस तरह मौन होकर बैठ गया मानो किसी के आने की बाट देख रहा हो। अँधेरा होने लगा। उसने ऊपर देखा और यह सोचकर कि काक की बाट जोहना निरर्थक है वहां से चला।

'कौन है ?' द्वार खोलते हुए मणिभद्र ने पूछा।

'मैं देवा नायक।'

'क्या बात है ?'

'कुछ नहीं, यों ही।'

'कौन, नायक ?' अंदर से मंजरी की आवाज़ आई। वह बाहर आई। 'आओ, देवा ! बाहर क्यों बैठ गया ?'

'कुछ नहीं, यों ही।' कहकर उसने निःश्वास ली।

'देवा ! तेरे भाई थोड़े दिनों में आ जाएंगे ।'

वृद्ध ने गर्दन हिलाई; 'नहीं देवी ! अब भेंट न कर सकूंगा ।'

'क्यों ?' फीकी हँसी हंसकर मंजरी ने कहा ।

'कल मेरी झोंपड़ी पर उल्लू बोल रहा था ।'

'अरे तो इससे क्या हो गया ?' मंजरी ने साहस से कहा । 'तेरे भाई तो बस आए समझ ।'

'भाई तो आएंगे, किन्तु मुझसे भेंट न होगी । देवी ! 'कीकाभाई' को दिखाओगी ?'

इस वृद्ध का स्नेह देखकर मंजरी की आंखों में पानी आगया; 'आ, अंदर आ जा ।'

देवा अंदर गया और कौसरि को देखकर पुनः बाहर आया। जिस समय वह धीमी गति और भारी हृदय से गढ़ की ओर मुड़ा उस समय रात गहरी हो चुकी थी। वह नीची दृष्टि किये गढ़ की ओर चला ।

खाई के निकट आते-आते उसे गढ़ की ओर देखते हुए दो पुरुष दिखाई दिए । उसने ऊपर देखकर खाँसा ।

'कौन है ?' उसने पूछा ।

एक आदमी के सिर और कंधों पर दुशाला पड़ा हुआ था । वह आगे आया ।

'क्या है ?'

'यहां क्या कर रहे हो ?'

'ओहो ! कौन देवा ?'

देवा ने ध्यान से देखा, 'तुम कौन ?'

'खेंगार, मुझे नहीं पहचाना ?' खेंगार ने तनिक दुशाला हटाकर कहा ।

'भाई, आप यहाँ कैसे ?'

'थोड़ा घूमने आए हैं। अभी कहाँ काक के घर हो आया? तेरा 'भाई' तो गया न?' रेवापाल ने तिरस्कार से कहा।

'इससे क्या? थोड़े दिनों में वापस आ जायँगे।'

'क्या पागल हो गया है?'

'क्यों?'

'वह तो अब आने का ही नहीं।'

'कैसे?' फटी आंखों से देवा ने पूछा।

'जयदेव महाराज उसे भृगुकच्छ नहीं आने देंगे।'

'कैसे जाना?'

'उसने स्वयं मुझसे कहा था।'

'और यह नया दुर्गपाल यहीं रहेगा?'

'हाँ, देवा। तेरे-मेरे दुर्भाग्य! काक समझ बैठा था कि उसे कोई कुछ नहीं कह सकता। अब वह पछताएगा। देवा! तुझे भी गढ छोड़ना पड़ेगा।'

'क्यों?'

'नया दुर्गपाल इसमें पट्टणियों को बसाएगा।'

'अरे, कैसी बात करते हो?'

'देखना! तुम मेरी नहीं मानते लेकिन तुम्हारा बनाया गढ़ ही तुम्हारा सत्यानाश करेगा, देखना।'

देवा मौन रहा।

'दो हज़ार पट्टणी इसमें आजायंगे तो तुम्हारा सम्पूर्ण देश त्राहि-त्राहि कर उठेगा।'

'ऐसी किसकी मजाल है कि सम्पूर्ण देश को दुःख दे सके।'

'तुम्हारे महान् दुर्गपाल को तो घड़ी के छठे भाग में देश से हटा दिया, अब तुम्हारा कौन है? आँबड़ खंभाती और माधव नागर?' रेवापाल तिरस्कार से हंस पड़ा, 'हाँ, एक को तो भूल ही गया!'

'कौन?'

'नेरा सोतला।'

देशनायक स्तब्ध हो गया, 'क्या कहते हो ?'

'देवा !' रेवापाल ने नरम पड़ते हुए कहा, 'मैं कभी असत्य कहता हूँ ? तेरे भाई में और मुझमें वैर है। किन्तु वह, जैसा भी था, लाट का हितेच्छु था। वह भी गया—और देखना, वह लौटकर आने का नहीं।'

देवा को कंपकंपी छूट गई।

'आँबड़ केवल अवसर की बाट देख रहा था, आज मेरे सुनते नेरा को भट बनाया और कल से गढ़ में रहने की आज्ञा दी। बोल, आगए लाट के दिन कि नहीं ?'

देवा बोला नहीं। उसका रोम-रोम खड़ा हो गया। कल उल्लू बोला था, किसी उद्देश्य से ही !

'देवा ! एक ही मार्ग है,' रेवापाल ने कहा।

'कौनसा ?'

'एक वर्ष तक चल सके इतना अनाज तो गढ़ में है !'

'आपने कहाँ से जाना ?'

'इच्छा हो जहाँ से। तुझे पट्टणियों को निराश करने का एक ही मार्ग है।'

'कौनसा ?'

'यहाँ से अनाज हटा देना होगा।'

'कहाँ ?' चकित होकर देवा ने पूछा।

'जहाँ इच्छा हो।'

'और भाई आएं तो ?' देवा ने पूछा।

'देवा ! मेरा दूसरा कोई अभिप्राय नहीं है। मैं गंगानाथ भगवान् की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि मेरा अभिप्राय यही है कि यह पट्टणी सेना गढ़ में आनन्द से न रह सके। एक काम करेगा ? अभी अनाज

निकाल दे। यदि तेरे भाई आगए तो दूसरे दिन मैं कोठार फिर-से भरवा दूंगा।'

'कोई जान जायगा तो?'

'जानेगा कौन?'

'किन्तु निकाला किस प्रकार जाय?'

'देख, प्रतिदिन रात को नवदेवी के घाट के सामने मेरे आदमी नौका लेकर आयेंगे। तू ऊपर से थैले गिरा देना।'

'मेरे भाई डाँटेंगे तो?'

'पागल! तेरे भाई आने के नहीं।' रेवापाल ने कठोरता से कहा। देवा कांप उठा। उसे कल का उल्लू बोलता सुनाई दिया।

'हाँ!'

'तुम्हारी सात पीढ़ी की सौगन्ध?' देवा ने पूछा।

'हां। मेरी सात पीढ़ी की सौगन्ध।'

देवा थोड़ी देर चुप रहा। उसने एकाएक ऊपर देखकर कहा, 'महाराज! कल रात को नाव भेजना। यदि मेरा तोतला की बात ठीक हुई तो थैले गिराऊँगा।' कहकर वह जल्दी से चला गया।

रेवापाल हँसा। 'लाट का भाग्य चमक रहा है,' वह बोला, और साथी को लेकर चला गया।

: २६ :

सूरि का आत्मनिरीक्षण

तेजपाल उपाश्रय में हेमचन्द्रसूरि मौन धारण किये हुए थे। वे कुछ ही दूर पर रखे हुए अपने 'प्रोंछन' की ओर देख रहे थे। इस युवक सूरि को ध्यान करने के सिवाय इस प्रकार बैठने की आदत न थी। आज की यह स्थिति उन्हें तनिक असाधारण लग रही थी।

जिस समय और लड़के झूले में खेलते हैं उस समय इन्होंने वीतराग होने की इच्छा प्रकट की थी; जिस समय युवक जीवन में फूटते नूतन आह्लादों का अनुभव करने को छटपटाते रहते हैं उस समय इन्होंने गुरुपद पाया, जब और साधु अभ्यास करना प्रारम्भ करते हैं उस समय ये शास्त्र-विशारद होने आए थे। प्रत्येक मनुष्य इनके अपूर्व चरित्र, निःसीम ज्ञान और अगाध चतुरता को देखकर चकित हो जाता था। इतने थोड़े समय में ही जैनविद्या और यश के व्योम में एक अद्‌भुत अरुणोदय का भास लोगों को होने लग गया था।

बहुत वर्षों पश्चात्—यौवन आगमन के बाद—जीवन में प्रथम बार उन्हें सावधानी से आत्मनिरीक्षण करने की आवश्यकता पड़ी। उन्हें विश्वास था कि उनका मस्तिष्क अन्य लोगों से निराले ही प्रकार का था। उन्हें संयम रखने के लिए प्रयत्न करने की आवश्यकता न पड़ी थी; विकार क्या वस्तु है इसका अनुभव किया न था। उनकी यह निश्चल श्रद्धा थी कि वे आजन्म अधिकारी हैं।

कई लोगों के मस्तिष्क कीचड़-भरे पोखर के समान होते हैं, कई के सरसी, नाम मात्र लहरियों से अलंकृत, स्थिर, बंधे हुए, जल से भरे तालाब जैसे होते हैं। कई-एक प्रवहमान नदी के समान होते हैं। जिसमें उछलती लहरियां भी होती हैं और शांत सरलता भी। कुछ के मस्तिष्क समुद्र के समान होते हैं—शांत सरोवर की अगाधता, उठती-गिरती लहरों का आनन्द, हृदय और उछलता हुआ उन्माद, प्रलय तरंगों का तांडवनृत्य।

इस युवक का मस्तिष्क इनमें से किसी प्रकार का न था। उसमें सागर की स्वच्छता, शांति, उदासीनता और सर्वग्राह्यता थी।

लोगों को वीतराग या निर्द्वन्द्व होने में कठिनाई होती है; जितेन्द्रिय होने के लिए कठोर वर्जना का पालन करना पड़ता है, किन्तु इस शांत, स्थिर, आत्मलीन हृदय को जितेन्द्रिय अथवा निर्विकार बनने के लिए प्रयत्न करना ही न पड़ा। ज्ञात है कि इसमें विकार अनुभव करने की शक्ति ही

थी। जिनशासन के स्तंभ विकार ग्रहण करने की इस शक्तिहीनता को देखकर स्तब्ध रह जाते और पूर्वजन्म के सुसंस्कार और क्षयोपशमन का ही परिणाम समझकर स्पर्द्धा करना छोड़ देते।

यह निर्मल आरसी-सा मस्तिष्क जिधर सूरि की इच्छा होती उसी दिशा में घूम जाता था, और इच्छित विषय का प्रतिबिम्ब उसमें पड़ने लगता था। इस प्रकार वह बिना प्रयत्न किए ही अपूर्व था, इसका हेमचन्द्र को पूरा-पूरा भान था।

इस उम्र में प्रथम बार उनके मस्तिष्क में संशय उत्पन्न हुआ। क्या इसके मस्तिष्क पर विकार की छाया पड़ी है? अन्य लोगों में तो ऐसा संशय उत्पन्न ही न होता; किन्तु यह अद्भुत नवयुवक इतना-सा संशय होते ही उसके अनुसंधान में लग गया।

कल उसने वर्षों पहले देखी एक स्त्री का मुख देखा, एक मूर्ख द्वारा उसकी सोची हुई बाजी को उलटते देखा, और यह बाजी यह मूर्ख उस स्त्री की सलाह से ही उलट रहा था ऐसी उसे शंका हुई। उसने कई स्त्रियाँ देखी थीं, कई मूर्खों को बाजी उलटते हुए देखा था, कई स्त्रियां बाजी उलटने में समर्थ होती हैं इसका भी अनुभव किया था। तो यह विकार तो नहीं ही था, किन्तु विकार का संशय ही अशुभ होता है। विकार का संशय उत्पन्न हुआ है ऐसा भ्रम ही मस्तिष्क में क्योंकर हुआ? अडिग नैयायिक की तीक्ष्णता से सूरि ने प्रश्न किया।

जिस समय उसने दीक्षा ली थी उस समय इस स्त्री को देखा था ऐसा कुछ-कुछ स्मरण था, तत्पश्चात् इसे काक ले गया और उससे ब्याह कर लिया यह भी उसकी जानकारी के बाहर न था, और इस विद्वान् और सजग स्त्री ने आँबड़ जैसे को मात दी थी इसमें ऐसा कुछ न था जिससे उसके स्थिर चित्त को किंचित् मात्र भी अस्थिर होने का कारण मिले। 'तो यह संशय उत्पन्न हुआ कैसे?' हठी बनकर हेमचन्द्र सूरि ने अपने आरसी जैसे निर्मल मस्तिष्क से प्रश्न किया।

'महाराज ! प्रणाम !' आम्रभट को तनिक उपहास करता-सा स्वर सुनाई पड़ा। उसने आकर प्रणाम किया।

'कौन आँबड़ ! आओ, धर्मलाभ।' सूरि ने कहा।

आम्रभट और हेमचन्द्र बचपन के मित्र थे, एक घर में बढ़े हुए थे, और उदा महेता के सर्वव्यापी खेल के खिलौने थे। फिर भी, इस प्रतापी बालसूरि को सर्वोपरि बनाने के उदा महेता के प्रयत्न के कारण खंभात में हेमचन्द्र सूरि ने ऐसा आडम्बर रच रखा था मानो वह कोई तीर्थंकर हो। इसलिए साधारणतया आम्रभट को उसे इस प्रकार संबोधित करने का साहस न होता। किन्तु कोंचे हुए नाग से कोंचा हुआ प्रणयी बुरा होता है। उसके सम्मान को धक्का पहुंचाया होता तो आँबड़ सहन कर लेता, किन्तु अब सूरि ने उसकी हृदयेश्वरी के मान को ही तोड़ने का काम आरम्भ किया तो उससे कैसे सहन हो सकता था !

उसके मस्तिष्क में एक बहुत ही विनोद-भरी योजना आई। मंजरी पंडित शिरोमणि है इसमें तो कोई संशय था ही नहीं। यदि यह सूरि उससे हार जाय तो इसे शिक्षा मिले। उदा महेता का पुत्र ऐसा विचार करे यह आकाश-पाताल को एक करने जैसा था, किन्तु इस समय आँबड़ के मोह का पार न था। क्षणिक संतोष, एक क्षण-भर के लिए उसकी हृदयेश्वरी की विजय का विचार उसके लिए अतिशय प्यारा हो उठा था।

यहाँ आने में उसका एक स्वार्थ था। वह प्रातःकाल माधव के पास मंत्रणा करने काक के यहाँ गया था। बाहर के बाड़े के दालान में वह बैठा, भृगुकच्छ के अग्रगण्य लोगों से भेंट की और उनसे वार्तालाप किया, कुछ थोड़ा-बहुत सूझा वैसा प्रबंध किया। किन्तु प्रतिपल उसका मस्तिष्क मंदिर जाने का बहाना ढूँढ रहा था। अंत में जब जाने का समय हुआ तो उसने बड़े मार्दव से सोमेश्वर से कहा—'देखी है ?'

'हाँ !' सोमेश्वर की आँखों में तनिक शंका झलकी।

'हेमचन्द्रसूरि का संदेशा कहना है। पूछो, पल-भर के लिए भेंट क

सकेंगी ?' आंबड़ ने धड़कते हुए दिल से पूछा। या तो दुर्गपाल की सत्ता या फिर मंजरी के सान्निध्य के कारण उसका साहस बढ़ता जा रहा था।

सोमेश्वर ना न कह सका। वह मंजरी से पूछ आया और आंबड़ को अंदर ले गया। मोह से चकराए हुए मस्तिष्क से आम्रभट ने नमस्कार किया, और संकेत से दिखाए हुए आसन पर बैठकर बोला—'देवी, हमारे खंभात के हेमचन्द्रसूरि यहां पधारे हुए हैं और शीघ्र ही जाने वाले हैं। बड़े समर्थ विद्वान् और तपस्वी हैं।'

'मैं जानती हूँ।' कहकर मंजरी मुस्करा दी। आम्रभट दंतावलि के सौंदर्य को देखने में क्षण-भर के लिए बात करना चूक गया। फिर कहा, 'जाने से पहले दुर्गपाल महाराज के यहां 'गोचरी' के लिए बुला लें तो उन्हें भी अच्छा लगेगा और भृगुकच्छ की भी शोभा रह जायगी।'

एकाएक मंजरी और सोमेश्वर की आँखें एक हुईं।

'भटजी ! किन्तु हम तो निपट मिथ्यादृष्टि हैं।' मंजरी ने मुस्कराकर कहा।

'आप भूलती हैं। हमारे यहां हम ऐसे अवांछित भेद नहीं रखते। और सूरिजी की उदारता के तो क्या कहने !' सम्भव है योजना सफल न हो इसलिए आम्रभट आगे बोला, 'और आपकी विद्वत्ता के विषय में सुनकर आपसे भेंट करने की उनकी बड़ी इच्छा है।'

पल-भर मंजरी मौन रही।

'अच्छी बात है तो उन्हें आप दुपहर को बुलाइए। उन्होंने जबसे दीक्षा ली तबसे उनसे भेंट हो नहीं हुई। सोमेश्वर ! तू वह आयगा ?'

'व्यर्थ में' आम्रभट ने कहा, मैं वहीं जा रहा हूं। मैं कह दूंगा।' उसने विदा ली और मंजरी तैयारी करने के लिए उठी। सोमेश्वर के अंतर में संशय की ज्वाला प्रकट हुई—यह छोकरा यहां आया क्यों था ?

और वहाँ से सीधे आम्रभट जी तेजपाल उपाश्रय में चले आया और हेमचन्द्र से भेंट की।

'महाराज ! आज दुर्गपाल के यहाँ 'गोचरी' का न्यौता है।'

स्वस्थ सूरि चमका; उसके तेजस्वी नेत्र स्थिर हो गए। ऐसा लगा मानो विकार-ग्रसित हृदय प्रतिध्वनि कर उठा हो।

'काक के यहाँ?'

'उसकी स्त्री आपके दर्शन करना चाहती है। मेरे हाथ संदेशा भेजा है।'

हेमचन्द्रको विश्वास हो गया कि यह लड़का दुर्गपाल की स्त्री के पीछे पागल हो गया है। उसे आम्रभट को उपदेश देने का जी हुआ कि वह शीघ्रातिशीघ्र जाकर चौथा अणुव्रत करने बैठ जाय। किन्तु उसकी जिह्वा न खुली। स्वयं उसकी क्या दशा है? वह स्वयं अभी क्यों चमक उठा। इस तीव्र बुद्धि वाले युवक ने अपने मस्तिष्क से हिसाब मांगा।

पहले उसे विचार आया कि नहीं जाना चाहिये। हेमचन्द्रने आंखें मींच लीं। क्या सचमुच विकार आ गया है? या इस डर से कि कहीं विकार बढ़ न जाय इस स्त्री को न देखने की यह उचित प्रेरणा हो रही है? क्या उसे भी और साधुओं के समान, साधारण श्रावकों के समान ऐसे प्रसङ्गों में मनोनिग्रह करने की आवश्यकता पड़ेगी? क्या वह ऐसी अधोगति को पहुँच गया है कि जिसे इन्द्रियों के जीतने की कभी आवश्यकता न पड़ी, जो अपने पूर्व जन्म के प्रताप से अपने को वीतराग मानता था उसे आज इन्द्रिय जीतने का प्रयत्न करना पड़ेगा? नहीं—उसके अन्तर ने उत्तर दिया। संशय करने के लिए कोई कारण ही न था। उसने स्थिर होकर आम्रभट की ओर देखा।

'[illegible]! तुझे [illegible] कुछ मत कहना पड़ेगा। तेरा मस्तिष्क ठिकाने नहीं है।'

आम्रभट हँस पड़ा, 'आप तनिक भी चिन्ता न कीजिए। आप चलेंगे न?'

'हाँ!' सोच के हेमचन्द्र बोला, 'मैं चलूँगा।'

'अच्छी बात है। [illegible] दोनों [illegible] में [illegible] आपको भी साथ

होगा !' अन्तिम बार दागकर आँबड़ उठा और प्रणाम करके विदा हुआ।

'धर्मलाभ !' सूरि ने कहा और आत्मनिरीक्षण में रत हो गया।

: २७ :

वागीश्वरी के दर्शन

काक के यहां खंभात के सुविख्यात सूरि 'गोचरी' के लिए जा रहे हैं यह सुनकर लोग कुछ विस्मित हुए।

जिस समय हेमचन्द्र सूरि अपने छः शिष्यों सहित साम्बा बृहस्पति के वाड़े में आए उस समय आम्रभट भी साथ था। सोमेश्वर, मणिभद्र और पुराणी काका साधुओं का अभिवादन करने के लिए आये और स्वागत करके उन्हें अन्दर ले गए।

हेमचन्द्र आवश्यकता से अधिक नहीं बोलते थे। उनका सिर कुछ झुका हुआ था। वे अपने क्षीण और भावनाविहीन मस्तिष्क को कठोरता से अपनी अविकारी स्वस्थता की रक्षा करने का आदेश-दे रहे थे। उनके लिए उनके जीवन की परम कसौटी आ रही थी। अब तक निर्विकार होने को वह बहुत तुच्छ मानते थे क्योंकि स्वयं अविकारी होकर अविकारीपन को श्रेष्ठ मानते थे। विकार को निर्मूल करने के लिए किसी तप की आवश्यकता पड़े यह उनके लिए निर्बलता का चिन्ह था। वासना जीतने के स्थान पर एक ऐसी स्थिति प्राप्त करना उसके जीवन का महान् लक्ष्य था जहाँ पहुँचकर वासना का अनुभव ही न हो सके। और ऐसी स्थिति प्राप्त करने में उन्हें अब तक कोई प्रयत्न करने की आवश्यकता न पड़ी थी।

जिनशासन की रक्षा करना और उसके उत्कर्ष के लिए प्रयत्न करना, उसके अहिंसा-मंत्र का प्रचार करना और उसके लिए किसी-न-किसी प्रकार से राज्यसत्ता हस्तगत करना ये तो जिस सृष्टि में वे बढ़े हुए थे उसका परम ध्येय ही था। जीवन के साथ उनका संसर्ग मात्र इस आकांक्षा को सिद्ध करने के प्रयासों तक ही सीमित था। मानव-हृदय के उत्साह, आनन्द या व्यथा की ओर अनुकम्पा या स्नेह-भीनी दृष्टि से देखने में वे असमर्थ थे। उनके विचार में यह सब तुच्छ जंतुओं की विकारी लीला थी; उनकी ओर वह किसी महामोह की ठंडी पीड़ाओं का दमन करने वाले शस्त्रोपचारी वैद्य के समान देखते थे।

'पधारिए, महाराज!' मंजरी का सुसंस्कृत स्वर सुनाई पड़ा, 'विराजिए।'

नीची दृष्टि करके खड़े हुए सूरि ने ऊपर देखने से पहले धीरे-से रजोहरण से धूल बुहारकर 'धर्मलाभ' का उच्चारण किया। जब उन्होंने ऊपर देखा तो द्वार में श्वेत वस्त्र में अप्सरा के समान कांतिवान्, लम्बी और चित्ताकर्षक सुन्दरी खड़ी हुई दिखाई दी। उसके मधुर होठों पर स्वागत की मुस्कराहट थी; उसकी तेजस्वी आंखों में स्नेही हृदय के उल्लास का प्रतिबिम्ब था। सूरि का जैसा मस्तिष्क था वैसी ही उनकी निरीक्षण-शक्ति भी थी। अलंकार शास्त्र और काव्य में याद किया शब्द-समुच्चय धीरे-धीरे खुलने लगा। 'मदालसा', 'चन्द्रानना', 'शरीरयष्टि', 'जघन गौरव'......इस सम्पूर्ण योजना में शब्द और वस्तु को रचने वाले का विरल अधिकार था। उसमें था न सौन्दर्य भक्त का उत्साह और न कवि की भावना। भक्ति के भार से सोमेश्वर की दृष्टि झुक गई, मोह की पराकाष्ठा में आम्रभट की आंखें फट गईं। दूसरे साधुओं पर इस दर्शन की जो प्रतिक्रिया हुई उसे वे केवल मुंह फाड़कर ही बता सके।

मंजरी ने वंदना की, 'गुरुजी! आप और साधु-मण्डल को मेरी वंदना।'

मंजरी वस्त्र सिकोड़कर पुरानी काका और मणिभद्र के मध्य में बैठ गई और गर्व-भरी दृष्टि से दिग्दिगंत में जिसकी ख्याति फैली हुई थी उस बालसूरि की ओर देखने लगी।

'देवी !' आँबड़ ने कहा, 'सूरिजी हमारे भारत के माथे के मुकुट हैं।'

'मैंने इन्हें बहुत वर्ष हुए देखा था।' मंजरी ने मुस्कराते हुए कहा, 'कहिए महाराज ! याद है ? आपने दीक्षा ली उससे पहले हम एक ही उपाश्रय में थे। आपने मुझे भी दीक्षा लेने के लिए कहा था, याद है ? आप उस समय आठ वर्ष के थे।'

'मुझे याद है।' अविकत्थन भिक्षु के ढंग से हेमचन्द्र ने कहा।

'ऐसा ? यह तो मुझे मालूम ही नहीं।' आँबड़ बोला।

आँबड़ को देखकर उदा की याद आते ही मंजरी के मुख पर रेखाएं खिंचकर मिट गईं। उसने आँबड़ के सामने देखकर कहा, 'तुम्हें कैसे मालूम हो ? सूरिजी के साथ मुझे भी दीक्षा देने वाले थे।'

'फिर ?' आँबड़ के कानों उड़ती बात आई अवश्य थी किन्तु मंजरी के मुंह से सुनने के लिए उसने पूछा।

'फिर ?' मंजरी नीचे देखकर हँस पड़ी। उसके हास्य की तरंगें कमरे में प्रसरित हो गईं। सूरि के अविकारी कान को यह स्वच्छन्दता खटकी। उसके मस्तिष्क ने केवल इतनी-सी टीका की—'इस हास्य को विद्युल्लेखा कहा जा सकता है।'

'फिर क्या ?' मंजरी ने बात आगे बढ़ाई, 'मैं भाग गई। महाराज ! दीक्षा लेने के पश्चात् जिस शांति की खोज में आप थे वह मिली ?'

'मेरे मन में अशांति थी ही नहीं।' हेमचन्द्र ने कहा। 'किन्तु जिन-शासन का श्रेयस्कर पथ छोड़ देने के पश्चात् तुम अपना ब्राह्मणत्व तो रख सकीं न ?'

मंजरी के कानों को इन शब्दों में कर्कशता लगी। इस प्रश्न में उसे ताना लगा। उसने सावधान होकर ऊपर देखा।

'मेरे ब्राह्मणत्व को—आपकी बोली में मेरी मिथ्यादृष्टि को—हरने की किसी में शक्ति थी ही नहीं।'

सूरि मुस्करा दिए, 'तुमने दीक्षा ली होती तो जिनशासन की आभूषणरूप साध्वी बनतीं।' मंजरी का सुडौल सिर गर्व से ऊंचा उठा। उसकी आंखों की चमक बढ़ गई। उसने आंखें तनिक खोलीं, उनमें चमक लाने की उसकी दक्षता सभी देखने लगे।

'मैं भाग गई तो आपका सम्पूर्ण शासन भी जो मुझे न दे सकता था वह मुझे मिला।'

'क्या?' आंबड़ के मुंह से निकल गया।

मंजरी यह प्रश्न सुनकर हँस पड़ी। उसकी आंख में दया और वाणी में मृदुलता आ गई, 'तुम्हारे दुर्गपाल।'

'काक भटराज।' सूरिजी इस प्रकार बोले मानो आम्रभट को उत्तर दे रहे हों। मंजरी ने इसमें छिपा हुआ कटाक्ष भांप लिया।

'हाँ।' उसकी वाणी में दुर्जेय गर्व की झंकार थी। उसकी सुन्दर ग्रीवा की नसें कुछ फूलकर उठ आईं, 'गुरु द्रोणाचार्य और कौटिल्य दोनों का दर्प भंग कर दिया भटराज!' वह हँस दी। उस हंसी में विजय-दुन्दुभी की प्रतिध्वनि थी।

हेमचन्द्र सूरि को लगा कि उनके जैसे साधु के सामने मंजरी आडम्बर दिखाए यह उचित नहीं था। उन्हें भास हुआ मानो उन्हें [illegible] करने के लिए ही सुनाया गया था।

'भगवती! लगता है शास्त्र-प्रमाणों में बहुत रुचि है तुम्हारी!' हँसकर सूरि ने कहा।

उसकी हँसी में विजय का उन्माद था। यह देखकर मंजरी [illegible] हो गई। 'आम्रभट [illegible] हेमचन्द्र [illegible] आए [illegible] था क्या उनका [illegible] करने के लिए!'

'[illegible]!' [illegible] [illegible] गया था। इसलिए यह

बीच ही में बोला, 'सूरिजी ! आप देवी की शास्त्रज्ञता से परिचित नहीं हैं।'

आँबड़ को सहारा मिला। मंजरी की प्रशंसा करके हेमचन्द्र को नीचा दिखाने का यही अवसर दिखाई दिया, 'सोमेश्वर ! हमारे सूरिजी अन्य शास्त्रज्ञों के समान नहीं हैं। ये हमारे गुजरात के अद्वितीय विद्वान् हैं। और देवी, ये आपके साथ विवाद करेंगे।'

मंजरी ने चमककर ऊपर देखा। क्या इस विदेशी सूरि और उसके मित्र आंबड़ ने उसकी परीक्षा लेने, उसकी विद्वत्ता की हँसी उड़ाने के लिए यह प्रपंच रचा है ? उसने कई सभाएं देखी थीं, कई-एक में विजय भी पाई थी, जैसे-जैसे उसका जीवन काक के जीवन में समाता गया त्यों-त्यों हर-किसी पण्डित के साथ विवाद न करने का उसने दृढ़ सङ्कल्प कर लिया था। क्या उसके गौरव का अपमान करने के लिए ये आये थे ? क्या उसके वीर पति के शत्रु इसकी पत्नी की हँसी उड़ाकर उसका अपमान करने का प्रयत्न कर रहे थे ? उसे उदा महेता—आंबड़ का पिता, हेमचन्द्र का सहायक और उसका और उसके पति का शत्रु—याद आया। काश्मीर के कवि-कुल-शिरोमणि की कन्या, नवघण विजेता काक की अर्द्धांगिनी का रक्त खौल उठा। उसके मोहक रक्तिम अधर काँपे और बन्द होकर कठोर हो गए। कामदेव के धनुष-सी उसकी भवें तनिक निकट आईं, उसकी नाक गर्व से तनिक तिरछी हो गई। वह हँसी—इस प्रकार कि नरपति भी क्षुद्र लगने लगें—और बोली, 'गुजराती विद्वान् !' और रण के लिए तत्पर वीर की भांति सुधि खोकर, मानो पण्डितों की सभा में हो इस प्रकार गर्व-वचन बोली—

या पाणिनीयमुपजीवति शब्दशास्त्रम्
या मम्मटोदितमलंकरणं प्रयुङ्क्ते ।

'मेरे ब्राह्मणत्व को—आपकी बोली में मेरी मिथ्यादृष्टि को—हरने की किसी में शक्ति थी ही नहीं।'

सूरि मुस्करा दिए, 'तुमने दीक्षा ली होती तो जिनशासन की आभूषणरूप साध्वी बनतीं।' मंजरी का सुडौल सिर गर्व से ऊंचा उठा। उसकी आंखों की चमक बढ़ गई। उसने आंखें तनिक खोलीं, उनमें चमक लाने की उसकी दक्षता सभी देखने लगे।

'मैं भाग गई तो आपका सम्पूर्ण शासन भी जो मुझे न दे सकता था वह मुझे मिला।'

'क्या?' आँबड़ के मुंह से निकल गया।

मंजरी यह प्रश्न सुनकर हँस पड़ी। उसकी आंख में दया और वाणी में मृदुलता आ गई, 'तुम्हारे दुर्गपाल।'

'काक भटराज।' सूरिजी इस प्रकार बोले मानो आम्रभट को उत्तर दे रहे हों। मंजरी ने इसमें छिपा हुआ कटाक्ष भांप लिया।

'हाँ।' उसकी वाणी में दुर्जय गर्व की झंकार थी। उसकी सुन्दर ग्रीवा की नसें कुछ फूलकर उठ आईं, 'गुरु द्रोणाचार्य और कौटिल्य दोनों का दर्प भंग करे ऐसा भटराज!' वह हँस दी। उस हंसी में विजय-दुन्दुभी की प्रतिध्वनि थी।

हेमचन्द्र सूरि को लगा कि उसके जैसे साधु के सामने मंजरी आडम्बर दिखाए यह उचित नहीं था। उसे भास हुआ मानो उसे प्रशंसा करने के लिए ही बुलाया गया था।

'भगवती! लगता है काव्य-पुराणों में बहुत रुचि है तुम्हारी!' हंसकर सूरि ने कहा।

उसकी हंसी में पिता का वात्सल्य था। यह देखकर मंजरी क्रोधित हो गई। आम्रभट के कथनानुसार हेमचन्द्र उससे भेंट करना चाहता था तो क्या उसका अपमान करने के लिए!'

'रुचि!' सोमेश्वर को भी तनिक खटक गया था इसलिए वह

बीच ही में बोला, 'सूरिजी ! आप देवी की शास्त्रज्ञता से परिचित नहीं हैं।'

आँबड़ को सहारा मिला। मंजरी की प्रशंसा करके हेमचन्द्र को नीचा दिखाने का यही अवसर दिखाई दिया, 'सोमेश्वर ! हमारे सूरिजी अन्य शास्त्रज्ञों के समान नहीं हैं। ये हमारे गुजरात के अद्वितीय विद्वान् हैं। और देवी, ये आपके साथ विवाद करेंगे।'

मंजरी ने चमककर ऊपर देखा। क्या इस विदेशी सूरि और उसके मित्र आंबड़ ने उसकी परीक्षा लेने, उसकी विद्वत्ता की हँसी उड़ाने के लिए यह प्रपंच रचा है ? उसने कई सभाएं देखी थीं, कई-एक में विजय भी पाई थी, जैसे-जैसे उसका जीवन काक के जीवन में समाता गया त्यों-त्यों हर-किसी पण्डित के साथ विवाद न करने का उसने दृढ़ सङ्कल्प कर लिया था। क्या उसके गौरव का अपमान करने के लिए ये आये थे ? क्या उसके वीर पति के शत्रु उसकी पत्नी की हँसी उड़ाकर उसका अपमान करने का प्रयत्न कर रहे थे ? उसे उदा महेता—आंबड़ का पिता, हेमचन्द्र का सहायक और उसका और उसके पति का शत्रु—याद आया। काश्मीर के कवि-कुल-शिरोमणि की कन्या, नवघण विजेता काक की अर्द्धांगिनी का रक्त खौल उठा। उसके मोहक रक्तिम अधर काँपे और बन्द होकर कठोर हो गए। कामदेव के धनुष-सी उसकी भवें तनिक निकट आईं, उसकी नाक गर्व से तनिक तिरछी हो गई। वह हँसी—इस प्रकार कि नरपति भी क्षुद्र लगने लगें—और बोली, 'गुजराती विद्वान् !' और रण के लिए तत्पर वीर की भांति सुधि खोकर, मानो पण्डितों की सभा में हो इस प्रकार गर्व-वचन बोली—

या पाणिनीयमुपजीवति शब्दशास्त्रम्
या मम्मटोदितमलंकरणं प्रयुङ्क्ते।

तस्या नु गुर्जरगिरः परिचारकस्य
कस्ते मया सह विवादकथावकाशः ॥*

हेमचन्द्र में जितनी साधु की निर्लिप्तता थी; उतनी ही चतुर व्यक्ति की दृष्टि भी थी। वह तुरन्त समझ गया कि कुछ भ्रम होने के कारण ही मंजरी ऐसे शब्द कह रही है। उसने एकदम आँबड़ के सामने देखा और उसके मुस्कराते हुए मुख का रहस्य जाना। इसी मोहांध ने यह सब किया है यह वह समझ गया। और मंजरी को देख, उसके भावहीन मस्तिष्क में अपरिचित के समान, प्रशंसा करने का विचार उठा। उसने नम्रता से हाथ जोड़े और अत्यन्त आदरपूर्ण मुखमुद्रा में सम्मान से उत्तर दिया—

शब्दानु शासन मधः कृत पाणिनीयम्
निर्धूत माम्मटमलंकृति तन्त्र मन्यद्।
निर्माय गुर्जरगिरां गुरुतां दधानः
धन्योऽचिरात्तव हरिष्यति कोऽपिगर्वम् ॥†

पल-भर तक मंजरी देखती रही। उसे लगा कि इस बाल-सूरि का अभिप्राय उसका अपमान करने का न था। वह युवक सूरि को भूल गई, उसकी दृष्टि के सामने वर्षों पहले देखा वीतराग होने के लिए व्याकुल बालक आ गया। उसका क्रोध उतर गया। अपना

---

* जो पाणिनी द्वारा रची हुई व्याकरण की शरण लेता है, और जो मम्मट की बताई अलङ्कार-योजना अपनाता है, ऐसे गुर्जर-भाषा के परिचारक को मेरे साथ विवाद करने का अवकाश हो सकता है?

† पाणिनी के शास्त्र को भी तुच्छ बना देने वाला व्याकरण-शास्त्र और मम्मट के अलंकार-शास्त्र को भी टकटने वाला अलङ्कार-शास्त्र रचकर गुर्जर-भाषा के गौरव को बढ़ानेवाला कोई धन्य-पुरुष निकट भविष्य में तेरा गर्व-हरण करेगा।

गर्व उसने समेट लिया। वह हँस पड़ी—नन्हीं बालिका के समान, 'महाराज! मुझे क्षमा कीजिए। एक बार दीक्षा लेने से पहले मैंने आशीर्वाद दिया था। आज मैं स्त्री हूँ—फिर भी, आशीर्वाद देती हूँ। मम्मट और पाणिनी दोनों का पद आप ही को प्राप्त हो। मेरा गर्व घटेगा नहीं—बढ़ेगा।' मंजरी के स्वर में उत्साहप्रेरक संगीत था। उसके मुख पर अन्तर की आशाओं से उत्पन्न अनोखी तेजस्विता छा रही थी। उसने आवेश में आकर हाथ लम्बा कर दिया—अपूर्व और अवर्णनीय छटा से।

हाथ लम्बा करते समय मंजरी का पल्ला सिर से खिसक गया, और एक क्षण के लिए उसका सम्पूर्ण सिर दिखाई दे गया। उसके ज्वलंत सौंदर्य से भभक-पड़े मुख की मोहकता दुर्जेय हो उठी।

सूरि ने आशीर्वाद सुना, स्वर का संगीत सुना, सौंदर्य का दर्शन किया। संस्कृतमें इसके लिए क्या शब्द है यह स्मरण नहीं आया, उसको आत्मा की अपरिचित सी सनसन् सुनाई दी। इस स्त्री को संतोष देने के लिए पाणिनी बनने का उत्साह हुआ। इस स्त्री को देखने—वह आगे विचार न कर सका। उसकी आँखों में अँधेरा छा गया, उसके मस्तिष्क में कड़कड़ाहट हुई—उसके स्थिर और भावनाविहीन मस्तिष्क के चौरस धरातल पर उत्साह से उछलती मानवता की गगनचुंबी लहरें मानो पुनः लौट रही हों ऐसा उसे भान हुआ। उस भयंकर क्षण में सूरिपद, वीतरागपद, अविकार दृष्टि के सामने से लुप्त होते दीख पड़े। शुष्क और स्नेहहीन जीवन में युद्ध की भयानक निर्जनता चारों ओर फैलती हुई दिखाई दी।

यह सब एक निमिषमात्र में हो गया। उस निमिष में उसे विश्वास हो गया कि अविकार का गर्व मिथ्या है। उसे लगा कि एक प्रतापी महाप्रयत्न के बिना उसकी रक्षा न हो सकेगी। उसने महाप्रयत्न किया, अपनी प्रबल इच्छाशक्ति को एकाग्र करके मस्तिष्क में स्थिरता लाया; और एक चतुर खिलाड़ी जिस प्रकार एक लोह शलाका को टेढ़ी

कर देता है उसी प्रकार उसने अपने चंचल मस्तिष्क को घुमा दिया। उसने मनुष्य-शरीर की अपवित्रता का ध्यान किया, स्त्री के सौंदर्य में पाप की जड़ का स्मरण किया। वह अनित्यादि वैराग्य की भावनाओं पर विचारने लगा, तीर्थंकर भी दुष्कर्म को नष्ट करने के लिए घोर तपस्या करते हैं, इसका विचार किया।

दूसरे ही क्षण उसने कामदेव को नष्ट करने वाले परमतीर्थंकर वीर परमात्मा का ध्यान किया।

उसे लगा उसका मस्तिष्क फट जायगा—किन्तु उसकी इच्छाशक्ति ने अपना दबाव न छोड़ा। उसने धीरे-से मंजरी की ओर देखा और उसके मुख को ध्येय मानकर शुक्ल ध्यान में मग्न हो गया।

भावनाओं से अपरिचित उसके मस्तिष्क में उठी नाम की आँधी को लुप्त होते देर न लगी। आजन्म अविकारी के मस्तिष्क के पल-भर के विकार को वश में करते देर न लगी।

सूरि स्थिर नयनों से मंजरी को देखने लगा। उसकी एकाग्रदृष्टि के कारण उसका मानुषी सौंदर्य और उसकी मोहकता पलट गए। उसने मंजरी के नयनों में दिव्य तेज देखा, उसके स्फटिक भाल पर अगाध ज्ञान की रेखाएँ देखीं; उसके सौंदर्य में से विशुद्ध ज्ञान की शांत रश्मियां फूटती देखीं। सूरि की एकाग्रता व्यापक हुई। उसने मंजरी की गोद में वीणा पड़ी देखी। उसके चरणों के सामने मयूर बैठा देखा। उत्साह प्रेरित करने के लिए उसके आगे बढ़ाए हुए हाथमें उसने कमल देखा। रूप मंजरी का ही रहा, किन्तु उसने दर्शन किये सरस्वती के।

हेमचन्द्र ने साष्टांग दंडवत किया, 'माता! तुम्हारा वरदान अवश्य फलीभूत होगा।'

एक क्षण उसने दृष्टि ठहराई। उतने समय में सूरि ने योगबल से निर्विकारता साध ली थी। उसने प्रणाम किया, आँखें मींचीं और खोलीं। सभी उसकी ओर देख रहे थे। भाग्य से ही कोई नम्रता का अर्थ समझता हो। सूरि ने शांत वाणी में कहा—

काश्मीरान् गन्तुकामस्य शारदाराधनेच्छया ।
यात्राभूत् पुनरुक्ता मे वीक्ष्य त्वां शारदामहि ॥*

मंजरी की आँखें हँस रही थीं। सूरि के अन्तर में जितना संभव है उतना उत्साह आया।

'सूरिजी! आप यहाँ कब तक ठहरेंगे?'

'मैं कल जाऊँगा।'

'माँ!' कहता हुआ लुढ़कता-फिसलता वोसरि अन्दर आया। वह आकर मंजरी के गले से लिपट गया। सभी उसकी ओर देखने लगे। मंजरी की आँखों में स्नेह उभर आया।

'माता! यह तुम्हारा पुत्र है?'

'हाँ, महाराज!'

हेमचन्द्र लड़के की ओर एकटक देखता रहा और फिर गम्भीर मुख से कहा—'माता! इस पुत्र की माता को मैं पुनः प्रणाम करता हूं।'

'क्यों?'

'जिनशासन का संरक्षण इसीके प्रताप से होगा।'

सभी चकित होकर सूरि की ओर देखने लगे। केवल हेमचन्द्रसूरि बालक की मुखमुद्रा को ध्यान से देखता रहा। उसकी वाणी में शांति थी।

'महाराज! क्या कहते हैं?' अनजाने ही मंजरी को कंपकंपी छूट गई।

'हाँ! मुझे स्पष्ट दिखाई दे रहा है।'

'तो महाराज! एक बात पूछूं?' आतुरता से मंजरी ने कहा।

---

* शारदा की आराधना करने की इच्छा से मैं काश्मीर जाना चाहता था। किन्तु आप स्वयं शारदा हैं। आपको यहाँ देखने के पश्चात् मेरी यात्रा का कोई प्रयोजन नहीं रह जाता।

'क्या ?'

'भटराज कब लौटेंगे ?'

सूरि ने शंकित होकर मंजरी की ओर देखा ।

'मेरी विद्या इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकती । माता ! अब हमारे जाने का समय हो गया ।'

'हाँ, ठहरिए । भिक्षा दे दूं ।' मंजरी उठी । उसके हृदय में खिन्नता व्याप्त हो गई । समुद्र की यात्रा करते हुए पोत का वियोग दुःसह हो उठा ।

दूसरे दिन जब हेमचन्द्रसूरि ने भृगुकच्छ से प्रस्थान किया उस समय उनके मुख पर सरस्वती से वरदान पाने का गर्व था ।

दूसरा खण्ड

: ? :

सोरठ का किनारा

सूर्यास्त होने आया था। अस्ताचल पर अंशुमाली का अन्तर्धान होता हुआ स्वर्णिमय बिम्ब पल-भर के लिए विश्राम करने क्षितिज पर ठहर गया। ऊपर आकाश और नीचे जलधि स्वर्ण में मढ़ गए। लहरें चारों ओर से उठकर अन्त में क्षितिज की ओर जाकर अदृष्ट हो जाती थीं।

पवन चलने लगा था। भरी हुई सरिता में एक पुराना और छोटा पोत झूल रहा था।

सभी कुछ अस्थिर था। केवल पोत में बैठे हुए दुर्गपाल का मुख निश्चल था। वह उत्तर की ओर स्पष्ट और श्याम क्षितिज की ओर देख रहा था।

वह तनिक मुस्करा दिया। 'सामंत !' उसने पुकारा।

'बापू !' एक सैनिक ने उत्तर दिया।

'यह उस ओर पाटण ही है न ?'

'जी हाँ।'

'और चोरवाड़ उससे आगे ?'

'हाँ।'

'और ये सामने क्या आया ?'

'लाटी।'

'ठीक !' काक ने कहा और वहाँ से उठकर पोत के चालक के निकट गया।

'बाबा !'

'बापू !'

'देख !' पतवार लाटी की ओर घुमा दे।'

'क्यों ?'

'सुन,' सख्त-सी स्वर में काक बोला, 'मैं जो कहता हूँ वह सब याद रखना।'

'जी।'

'यहां मैं, सामंत, और दामा नायक उतर जायंगे। तेरे खलासी भी वहां हमारे साथ ही उतरेंगे। फिर तू और खेमाभट पोत को पाटण तक ले जा सकोगे?'

'जी हां। वह तो बहुत दूर नहीं है।'

'ठीक। कल प्रातःकाल जब पाटण का किनारा दीख पड़े तो पोत डुबो देना। और तू, मानो बहाव में बह रहा हो इस प्रकार तैरकर लाटी लौटकर आना और दामा नायक से मिलना। खेमाभट फिर अपना काम करेगा।'

'और कोई पूछे तो कहना कि चट्टान से टकराकर पोत डूब गया। मनुष्यों का क्या हुआ यह मालूम नहीं। समझा? तनिक भी भूल न हो।' काक बोला, 'बहारा* के नाविक के नाम को बट्टा न लगे।'

'बापू! ऐसा कभी हो सकता है?'

'और आधीरात को मैं लौटकर आऊं तो भृगुकच्छ की ओर चलने की तैयारी कर रखना। खलासी सब विश्वासपात्र हैं न?'

'यह भी बापू कोई पूछने की बात है?'

'देख, मेरे प्राण तेरे हाथ में हैं,' काक बोला।

'बापू! आपका वचन और मेरा सिर। क्या समझे?'

काक हँस दिया। इन सबके भक्ति-भाव में उसे श्रद्धा थी।

काक ने पतवार किनारे की ओर घुमा दिए और पोत वेग से उस ओर बह चला।

काक वहाँ से चला गया और दामा नायक को बुलाया। 'दामा! तुझे मेरे साथ यहां से तैरकर किनारे जाना है। ये सब खलासी तेरे साथ होंगे। [illegible] रखना। मैं किसी भी तरह आऊं,

---

*नर्मदा के उद्गम के आस-पास का स्थान बहारा कहलाता है।

यहां से निकलने के लिए तैयार रहना।'

दामा दुर्गपाल की गति-विधि जानता था। समय पर एक से दूसरी बार कहने की प्रतीक्षा वह नहीं करता था। वह खलासियों को आदेश देने के लिए चला गया।

'खेमा!' काक ने खेमा को बुलाया। 'देख, मैं, सामंत, दामा और खलासी नौका में से उतर जायेंगे। खेमा! मैं अपने प्राण और प्रतिष्ठा तेरे हाथों सौंपता हूं। तेरी चतुराई पर सम्पूर्ण लाट निर्भर है। देख तू मेरे वस्त्र पहन ले और अपने वस्त्र मुझे दे दे।'

'जो आज्ञा।'

'फिर तू और काथा नाविक दोनों पोत लेकर पाटण की ओर जाना। पाटण के दीखते ही पोत डुबो देना। काथा मानो वह रहा हो इस प्रकार आकर यहां दामा से मिलेगा और तू तैरकर पाटण के बंदर में जाना।'

'जी!'

'देख, ध्यान रखना। मुझसे परिचित कोई मिले तो कहना कि पोत डूब गया और मेरा क्या हुआ यह मालूम नहीं। किन्तु जहां तक मेरा अनुमान है कोई नया आदमी ही आएगा। नए पट्टणी योद्धाओं ने मुझे नहीं देखा है। तेरा और मेरा शरीर समान है; अतः अगर कोई तुझे काक समझ ले तो ना मत करना।'

खेमा तनिक चकित होकर देखने लगा।

'खेमा! हमारा एक-दूसरे से दस वर्ष का सम्बन्ध है, और तेरी चतुराई में मुझे विश्वास है। देख, यदि वे तुझे काक समझ लें तो भ्रम-भंग मत करना। संभव है तुझ पर असहनीय दुख टूट पड़े, वैसी दशा में एक बात याद रखना। यदि उदा महेता के आदमी तुझे कष्ट पहुँचायें तो कहना कि तुझे भाभी संबंधी बात करनी है। वे तुरन्त तुझे उसके पास ले जायंगे। और तू काक नहीं है यह उदा महेता देखते ही समझ जायगा। यदि महाराज के आदमी पकड़ें तो कहना मुंजाल

महेता से शेषनाग के श्राप की बात करनी है। समझा? आवश्यकता पड़ने पर दो में से कोई एक तुझे पहचान लेगा और तेरा बाल भी बांका न होगा। मैं जीवित रहा तो पाँच-सात दिन में आ पहुंचूंगा।'

'जी।'

'खेमा! तू सब बात जानता है अतः कुछ ऐसा करना कि इतने दिनों तक यह भ्रम बना रहे।'

'इसकी चिन्ता न कीजिए।'

'और खेमा!' काक की शांत वाणी तनिक कांप उठी, 'मुझे कुछ हो जाय तो—' काक ने गला साफ किया, तू और सोमेश्वर अपनी भाभी और बच्चों को देखना।'

'अरे, बापू!' आंखों से जल पोंछते हुए खेमा बोला, 'किसकी मजाल कि कोई आपका बाल भी बांका कर सके। अधिक 'पंचात' करेंगे तो इन पहाड़ियों को उखेड़ फेंकूंगा।'

काक मुस्करा दिया।' बात इतनी सहज नहीं है।'

'बापू आप बुद्धिमानों को ऐसा ही लगता है। हम तो तुरन्त दान महाकल्याण में विश्वास करते हैं।'

'अच्छा' कहकर काक ने खेमा का आलिंगन किया।

पोत के किनारे के निकट पहुँचने पर काक, दामा नायक, सामंत और सगामी लकड़ी के पाट डालकर पानी में कूद पड़े और किनारे की ओर चले गए। सिनामट और कावा ने धीरे-धीरे पोत को पुनः नदी के मझधार की ओर बढ़ाया।

: २ :

प्रभात

उषा का स्वच्छ प्रकाश बढ़ने लगा था। प्रकाश में सोमनाथ पाटण समुद्र से निकली रंभा के समान शोभित हो रहा था। सुन्दर वस्त्र के घेर के समान नगर की कोट समुद्र तक आती थी और जहां वह जलधि को स्पर्श करती थी वहां बंदर में पड़ी नौकाओं की झालर मन्द-मन्द पवन में झूल उठती थी। इस घेर के ऊपर अप्सरा की अमर देह के समान सोमनाथ का भव्य मन्दिर दिखाई दे रहा था। और मन्दिर का स्वर्ण-कलश और उसके चारों ओर फहराती हुई ध्वजा ऐसी लग रही थी मानो उज्वल, दिव्य सुन्दरी अपने मुख को ओढनी में छिपाने का निरर्थक प्रयत्न कर रही हो। प्रभास मे आज जिस मन्दिर के भग्नावशेष दीख पड़ते हैं वही कभी पृथ्वी से प्रदक्षिणा करवाते मेरु के समान, सम्पूर्ण छटा में स्थित था। आज भी उसकी प्रत्येक शिलाकी अपूर्व कारीगरी, उसके स्तंभों का गौरव और उसके गुम्बजों के अवशेष—इन सबसे यह मन्दिर कैसा रहा होगा इसका अनुमान किया जा सकता है। किन्तु इस कथा के काल में तो वह नया था। और नवयौवन की मोहकता में बढ़ा हुआ था।

महमूद गज़नवी ने पाटण लूटकर और सोमनाथ के प्राचीन मन्दिर को तोड़कर यह मान लिया कि उसने गुजरात की शक्ति और समृद्धि को सदा के लिए लूट लिया। किन्तु वह धर्म-विनाशक विदेशी गुजरात से परिचित नहीं था। उसके पीठ फेरते ही शूरवीर भीम ने पुनः पाटण ले लिया, और जहां प्राचीन मन्दिर के जले हुए पत्थर पड़े हुए थे वहां नए मन्दिर की रचना प्रारम्भ हो गई। देश-देश के कारीगरों ने वर्षों तक एकाग्र होकर साधना की। देश-देश के नरपतियों ने अतुल धन का उपहार दिया। और जिस मन्दिर का निर्माण शूरवीर भीम ने आरम्भ किया, निर्माणादि में रुचि रखने वाले कर्णदेव ने जिसे अलंकृत किया,

तीन पीढ़ी पश्चात् उसी पर जयदेव ने अनमोल स्वर्ण-कलश चढ़ाकर महमूद ग़ज़नवी की विनाशक वृत्ति का उपहास किया।

यह मन्दिर नहीं वरन् पत्थर में तराशा हुआ महाकाव्य था और उसकी प्रेरणा-शक्ति उससे भी अधिक थी। चारों दिशाओं से आये हुए यात्री कैलाश के समान गगनचुंबी और अमरावती के समान अपूर्व शंकर के इस सदन को देखकर ऐसा समझते मानो उन्हें सदेह मुक्ति-लाभ हो गया हो और भवभव के ताप मिट गए हों।

यह मन्दिर पृथ्वी पर खड़ी की हुई अनहिलवाड़ के प्रभाव की अमरमूर्ति की रक्षा करता था। खंभात, भड़ौंच और प्रभास; गुजरात के इन तीन विशाल द्वारों में से प्रभास सबसे छोटा था। फिर भी विदेशी पोत यहां की पवित्रता और मन्दिर की भव्यता से आकर्षित होकर यहां लंगर डालना न चूकते थे। बन्दर के निकट आते हुए यात्रियों की प्रशंसा-भरी दृष्टि क्षितिज पर सोमनाथ भगवान् के गगन-भेदी गुम्बज पर पड़ती थी। जितनी ही उनकी भक्ति-भावना बढ़ती थी उतना ही पाटन का मान बढ़ता था।

पाटन के लोगों की दृष्टि में भी यह मन्दिर उनके प्रताप की जीवित प्रतिमा था। मूलराज सोलंकी की गम्भीर चतुराई ने प्रभास-पाटन को अनहिलवाड़ का पुण्यक्षेत्र बना दिया था। इसीसे सोरठ में गुजरात का प्रभाव फैला और सम्पूर्ण हिन्द के पुण्यधाम के रक्षक गढ़-स्वामी का गौरव सोलंकियों को प्राप्त हुआ। भीम ने गुजरात के रुधिर से इस भूमि को सींचा, इसकी पवित्रता को उज्ज्वलता प्रदान की और समग्र संसार पर विजय प्राप्त करने को व्याकुल जयसिंहदेव भी यही मानता था कि इस देश के वैभव में ही उसका वैभव समाया हुआ है।

[illegible] प्रासाद से चलते घोड़ों की टाप से जाग उठा। तीन अश्वारोही आगे ही दौड़ते हुए मन्दिर के सामने आए। इनमें से आगे का अश्वारोही छलांग से धरती पर कूद पड़ा और पीछे देखे बिना ही पवन के वेग से मन्दिर में घुस गया।

यह आगन्तुक पट्टणी सैनिक था। उसके वस्त्र और आभूषणों से लगता था कि वह बहुत सम्पन्न है और उसके मुख से लगता था कि वह बुद्धिशाली है। वह त्वरित् गति से मन्दिर में गया। ध्यान दिये बिना ही घण्टा बजाया और महादेव की ओर देखे बिना ही नमस्कार किया। मन्दिर की एक खिड़की के सामने एक व्यक्ति खड़ा हुआ था। नवागन्तुक ने उसे देखा और देवता को अवकाश के अनुकूल मान देकर उसकी ओर गया। खिड़की के सामने खड़ा हुआ आदमी खलासी जैसा लग रहा था।

'नायक !' उस नवागन्तुक युवक ने कहा।

'बापू !' उस व्यक्ति ने बड़े सम्मान से नमस्कार करते हुए कहा।

'क्या हाल है ?'

'बापू ! खलासी अभी-अभी चारों ओर होकर आए हैं। ऐसा लगता है केवल एक पोत आ रहा है।'

'यहाँ से दिखाई देता है ?' उस युवक ने पूछा।

'वह है ?' खलासी ने कहा।

थोड़ी देर तक कोई कुछ न बोला। क्षितिज पर एक बिन्दु आकार में बड़ा होता जा रहा था।

'चल बाहर चलें' युवक ने कहा, और बाहर निकल गया। खलासी पीछे-पीछे आया और दोनों मन्दिर की कोट पर चढ़कर खड़े हो गए।

युवक चौबीस-पच्चीस वर्ष का था फिर भी उसके, मुख पर गांभीर्य की छाप थी। वह स्वाभाविक गर्व से चलता था और रह-रहकर अधीरता से क्षितिज की ओर देखता था। थोड़ी देर में सूर्योदय हुआ और सूर्य का स्वर्णिम बिम्ब ऊपर आया। दृश्य प्रतिदिन के समान होते हुए भी अपूर्व था। सुन्दर लगते हुए इस बिम्ब की ओर क्षण भर तक वह युवक देखता रहा। फिर धीरे-से उसने मन्दिर के शिखर की ओर देखा और पोत पर मस्ती से उड़ती हुई ध्वजा की ओर प्रसन्न होकर

देखने लगा । उसने पुनः अपनी दृष्टि सरिता की ओर की और मानो उछलती तरङ्गों से कोई संदेशा सुना हो, वह बड़बड़ाया—

'तरङ्ग भ्रूभंगा'—

'बापू !' उस खलासी ने इस कविताप्रेमी युवक की विचार-माला को क्रूरता से भङ्ग कर दिया ।

'क्यों ?'

'वह गया— ' खलासी ने हाथ लम्बा करके आवाज़ दी ।

'क्या ?'

'वह पोत चट्टान पर चढ़ गया है । देखिए, डोल रहा है ।'

'हां । अब क्या होगा ?'

'टूटा........अरेरे—वह टूटेगा ।' खलासी ने टूटे हुए शब्दों में कहा ।

'यह भरोंच से आ रहा था वही पोत है क्या ?' युवक ने पूछा ।

'हाँ, बापू !'

'हाय, हाय !' उस युवक का कपाल संकुचित हो गया, 'नायक ! इसमें के सभी व्यक्तियों की रक्षा करनी होगी ।'

'जो भोलानाथ करें वही ठाकुर !'

'यही भोलानाथ तो करेंगे ही ।' अधीरता से पग पटककर युवक बोला ।

'तू दूसरे मल्लाहों को लेकर पहुँच और उसमें जितने यात्री हों उन्हें किसी न किसी प्रकार मेरे पास ला । देखता क्या है ?' युवक ने क्रोधित होकर पूछा । 'जा जल्दी, और मंदिर पर जाता हूँ मैं—कोई भी तैरकर आए तो उसे पकड़कर मेरे पास लाया जाय ।'

'और न लाए तो ?'

'तुम लोगों के पास बाँधने के लिए रस्सियाँ हैं या नहीं ?' उछलकर युवक ने कहा, 'जा जल्दी जा ।'

इतने ही क्षण में वह मल्लाह मंदिर की ओर भागा और अन्य मल्ला-

सियों को एकत्रित कर नौकाएं खोलने में लग गया। वह युवक थोड़ी देर तक नायक की गति-विधि देखता रहा, फिर डूबते हुए पोत की ओर देखा। अन्त में हतोत्साह होकर धीमी गति से वह मन्दिर की ओर मुड़ा। उसके मुख पर निराशा स्पष्ट प्रकट हो रही थी।

वह थोड़ी दूर जाकर पुनः लौटा और मन्दिर में प्रवेश किया। उसने पुनः घण्टा बजाया और मध्यद्वार तक जाकर साष्टांग प्रणाम किया। 'भोलानाथ! अवज्ञा की हो तो क्षमा करना।' उसने गद्गद् कण्ठ से प्रार्थना की।

चिंतातुर मुख से वह उठा, मन्दिर से बाहर गया, और अश्व पर बैठकर अपने निवास-स्थान की ओर मुड़ गया।

: ३ :

वाग्भट

युवक धीमे-धीमे अपने स्थान पर गया और पगड़ी उतारकर इधर-उधर फिरने लगा। उसके मुख पर ग्लानि थी और वह जब-तब कान लगाकर आते-जाते लोगों की पग-ध्वनि सुन रहा था।

जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया वैसे-वैसे उसकी अधीरता बढ़ती गई। अन्त में उसने एक आदमी को बुलाकर बन्दर की ओर भेजा।

बहुत समय व्यतीत हो गया। युवक का मुख निस्तेज और निरुत्साह होने लगा। होठों को दबाकर वह अधीरता को दबा रहा था। उसने एक निःश्वास ली। उसे ऐसा लग रहा था कि उसके जीवन की आशा नष्ट होती जा रही है।

इतने में बाहर अश्व की टाप सुनाई दी। युवक एकदम आगे बढ़ आया। अश्व पर से नायक और एक अधेड़ वय के योद्धा को उतरते

हुए देखकर उसके मुख पर मुस्कराहट छा गई। नायक के साथ आने वाले योद्धा का मुख उसे तेजस्वी लगा। आंखों में चमक भी थी—अस्पष्ट—क्योंकि वह थका हुआ था। उसके चलने की छटा में गर्व था। नाक तीखी कही जा सकती है, स्नायु भी दृढ़ थे। युवक को संतोष हुआ। 'ससरथ ! मैं जीता। तू हारी, अब तू मेरी—'

किन्तु युवक का यह स्वच्छन्द प्रलाप अधिक न चल पाया। वह योद्धा भीगे वस्त्रों सहित आया।

'कौन, भट्टजी ?' उस युवक ने आगे बढ़कर पूछा।

उस योद्धा ने कपाल को आकुंचित कर सिर ऊपर उठाया। 'मुझे ये लोग यहाँ क्यों लाए ?' तनिक गर्व से उसने पूछा।

'क्षमा करो महाराज !' युवक ने कहा, 'जयसिंहदेव महाराज ने आपका सत्कार करने के लिए मुझे भेजा है। आपके पोत को विकट परिस्थिति में देखकर मैंने इस नायक को भेजा था।'

'तुम कौन हो ?' गर्व से उस योद्धा ने पूछा।

'आपने मुझे नहीं पहचाना ?'

'कभी देखा हो ऐसा स्मरण नहीं आता।'

'मैं उदा महेता का बालक हूं।' उस युवक ने कहा।

'उदा महेता का पुत्र वाग्भट, महाराज और पण्डित।' धीरे-से वह योद्धा बोला। वाग्भट की बोलने की इस आडम्बर-भरी रीति से प्रति[illegible] हो गया।

'हां हां ! आप हमारे [illegible] कर लीजिए। [illegible] हम [illegible] चलेंगे।'

'मैं तुम्हारे साथ नहीं चलूंगा।'

'क्यों ?'

'ऐसी इच्छा।'

वाग्भट की आशा [illegible] हो गई। उसने वाग्भट की [illegible]

सुनी थी कि उसने उसके विषय में वास्तविक काकभट से भी हज़ार गुणा अधिक ऊँची कल्पना कर रखी थी।

'आपको आना ही पड़ेगा।'

'क्यों?'

'महाराज की आज्ञा है।'

'और यदि न आऊँ तो?' तनिक विचित्र ढङ्ग से हँसकर वह योद्धा बोला।

'आपको ले जाना पड़ेगा। यहाँ से वंथली जाने का रास्ता नहीं है। और मुझे विशेष आज्ञा दी गई है।'

'तो ठीक है।' काकभट को एकदम स्वीकार करते देखकर वह और आश्चर्य में पड़ गया।

'अभी प्रस्थान कर दें?' वाग्भट ने पूछा।

'जब तुम कहो।'

'आप विश्राम कर लीजिए, तब चलेंगे।' विनयी वाग्भट बोला। उसका मन वंथली जाने के लिए कूद रहा था।

: ४ :

गिरनार

जिस समय काक को पकड़कर अपने आपको भाग्यशाली मानता हुआ वाग्भट फूला न समा रहा था उस समय काक सरपट भागते हुए घोड़े पर जूनागढ़ की ओर बढ़ रहा था। लाठी जाकर उसने खवासियों और दामा को वहीं छोड़ दिया और स्वयं तुरन्त चोरवाड़ गया। थोड़ी ही देर में चोरवाड़ का मोतिया अहीर और काक दोनों ने जूनागढ़ का

मार्ग लिया। रात होते हुए भी वे जूनागढ़ जाने की मुख्य सड़क से न आ सके। इस मुख्य सड़क की रक्षा पाटण की सेना करती थी अतः उधर होकर जाना विपत्तियों से भरा हुआ था। इसी कारण उन्हें लंबा, टेढ़ा-मेढ़ा मार्ग पकड़ने की आवश्यकता पड़ी।

सोरठ के निर्मल व्योम में चमकते हुए तारागण के प्रकाश में वे मार्ग काट रहे थे। किन्तु सोरठ के हवा से बात करते हुए घोड़ों के लिए अंधकार या पथ की कठिनाइयाँ कुछ भी न थीं। योजन-पर-योजन पार होते चले जा रहे थे, फिर भी मोतिया और काक अधीरता से एड़ी का उपयोग करते ही चले जा रहे थे।

काठियावाड़ी घोड़े में जब साहस आता है तो उसके पंख लग जाते हैं, उसके पांव थकते नहीं, उसकी श्वास भरती नहीं और उसको एड़ियों की आवश्यकता नहीं होती। वह पशु न रहकर वेग की मूर्ति बन जाता है। उसका स्थूल देह समीर की सूक्ष्मता प्राप्त कर लेता है। इन वेगवती घोड़ियों को उनकी इच्छा-शक्ति की तन्मयता से भागते देखकर काक को भी उत्साह हुआ। उषःकाल के समय जब उसने घोड़ियों को थामा उस समय क्षितिज पर गिरनार शोभित हो रहा था। पर्वतों से परिचित यात्री को गिरनार खिलौना मालूम होता है, और यह शंका होने लगती है कि इसे पर्वत क्यों कहा जाता है। किंतु सोरठ भूमि में रहने वाले गुजराती के लिए तो गिरनार गिरिराज था।

छोटे पहाड़ों के बीच खड़े कद्दावर की भांति यह सोरठ की [illegible] भूमि पर शोभित हो रहा था और शताब्दियों से जूनागढ़ की [illegible]

समुद्रगुप्त, और विदेशी होते हुए भी आर्य-धर्म के गर्व से मत्त बना रुद्रामन—इन तीनों ने इसे अपनी सत्ता का सीमादर्शक विजय-स्तंभ माना था। चूड़ासमा की सत्ता के स्थापक ने भी इसकी अभेद्यता की सहायता से सोरठ का साम्राज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया था, और इसकी प्रेरणा से प्रबल बनकर खेंगार पाटण की सर्व-विजयी सत्ता को वर्षों से छका रहा था।

निर्वाण की खोज में लगे हुए बौद्धभिक्षु-की शांति और स्थिरता प्रकट करती हुई पदरेखा, संस्कार के विजय की निरन्तर साधना में रत और आर्यधर्म की धुरि को सीधी रखने वाले ब्राह्मणों की निडर निश्चयात्मकता की साक्षी देने वाले पदचिह्न, हिंसा के मोह में फंसी हुई मनुष्य-जाति को अहिंसा धर्म की शिक्षा देने के लिए व्याकुल जैन साधुओं की सहनशीलता की छाया से शोभित पदचिह्न, पवित्रता के ये सभी पादस्पर्श वहीं पत्थर-पत्थर में दिखाई पड़ते हैं। तनिक अधिक ध्यान से देखने पर दो और रेखाएँ दिखाई देंगी।

एक नन्हीं और सुघड़—नर केसरियों की विस्मृत होती हुई वीरता को सुकुमार हाथों से टिकाए रखनेवाली, सतियों में श्रेष्ठ राणक की, और दूसरी विशाल और कठोर—जिसके शिशुहृदय में उपजी संत-जीवन की पवित्रता, भक्ति-योग की महत्ता और साहित्य-प्रेम की रसिकता—त्रिवेणी-संगम के प्रताप से गुजरात की रसाल भूमि पुनः रसमय हो गई थी उस कृष्ण-विह्वल नागर की!

किन्तु इस सब पर विचार करने के लिए काक के पास न समय था और न शक्ति। उसके लिए गिरनार उसके मित्र खेंगार—केसरी की गुहा थी और इसीलिए था उसकी यात्रा का लक्ष्य।

सूर्योदय होने लगा। गिरनार के शिखरों पर भूरापन हटकर तनिक स्वर्ण के तेज की चमक छा गई थी। और निकट ही पर्वत के शृंगों से ही विश्वकर्मा ने मानो गढ़ बना लिया हो ऐसा जूनागढ़ भी दिखाई दिया।

'मोतिया!' काक ने कहा।

'बापू !'

'हम जूनागढ़ कब पहुँचेंगे ?'

'बापू ! अभी पहुंच जाते, किन्तु इधर पट्टणियों का प्रबन्ध कुछ विशेष है इसलिए शीघ्रता नहीं की जा सकती। संध्या को पहुंच जायंगे।'

दोनों थोड़ी देर तक चलते रहे और फर घोड़ियों को छोड़कर एक वृक्ष के नीचे विश्राम करने बैठ गए। किन्तु उनके भाग्य में अधिक विश्राम करना न लिखा था।

'बापू ! उठो, घोड़ी संभालो।'

'क्यों ?'

'वहाँ धूल उड़ती दिखाई दे रही है। कोई आया है।'

काक ने देखा। कुछ दूर पर धूल उड़ती दिखाई दी। वे लपक कर घोड़ियों पर चढ़ गए और वेग से टेढ़े-मेढ़े मार्ग से भागने लगे। दिन-भर वे इसी प्रकार गाँवों और मुख्य सड़क से दूर चलते रहे। संध्या होते-होते वे गिरनार आ पहुंचे।

'बापू ! अब निश्चिन्त हो जाइए। इस पथ पर अब कोई न मिलेगा।'

'क्यों ?'

'यह पथ केवल मुझी को मालूम है।'

काक ने चारों ओर देखा। 'मोतिया ! अब मेरी आँखों पर पट्टी बाँध दे।'

'क्यों ?' चकित होकर अहीर ने पूछा।

'मैं शत्रु-पक्ष का आदमी हूं। मैं इस पथ से परिचित न होऊं तो अच्छा।'

मोतिया ने गर्व से काक की ओर देखा और वस्त्र लेकर उसकी आँखों पर पट्टी बाँध दी।

काक ने नाम-मात्र की लगाम पकड़ रखी थी। उसकी चतुर घोड़ी वे। से अहीर की घोड़ी के पीछे-पीछे चली आ रही थी। पथ में स्थान-

स्थान पर उतार और चढ़ाव आते, कई बार घोड़ी एकदम खड़ी हो जाती। एक बार वह चमक भी गई।

काक को पट्टीमें से लगा कि चारों ओर अँधकार होगया है। थोड़ी देर पश्चात् मोतिया बोला।

'बापू ! उतरिए, गढ़ आ गया।'

'ऊपर जाने से पहले पट्टी मत खोलना।'

'जैसी बापू की इच्छा।'

मोतिया थोड़ी दूर तक काक का हाथ पकड़कर ले गया। वहाँ कोई खड़ा हुआ था। मोतिया ने उससे बात की, और पुनः काक का हाथ पकड़कर पत्थर की एक संकरी पगडण्डी से चढ़ने लगा। पग-पग पर मोतिया काक को सावधान रहने की सूचना देता रहता था। बहुत देर पश्चात् वे गढ़ पर आगए। मोतिया ने पट्टी खोल दी।

चारों ओर अंधकार था। कभी-कभी मशाल का क्षीण प्रकाश दिखाई देकर अदृष्ट हो जाता था। इस अँधकार में भी मोतिया काक को बहुत शीघ्रता से ले चला।

थोड़ी दूर चलकर महल के पिछले द्वारसे उन्होंने अन्दर प्रवेश किया जहाँ मोतिया ने किसी मनुष्य के कान में कुछ कहा। वह तुरन्त ऊपर जाकर लौट आया और काक को ले गया। महल की छत के एक किनारे काक को खड़ा करके वह चला गया।

रात अँधेरी थी। काक तारों के क्षीण प्रकाश में भी चारों दिशाओं में अच्छी प्रकार देख सकता था। थोड़ी दूर पर सैनिकों की हुंकार और वेदना की चीत्कार स्पष्ट सुनाई पड़ रही थी। कोट की खाई से दूर अश्वों की हिनहिनाहट या कभी-कभी उत्साह-भरी गर्जना से पट्टणी और सोरठी सैनिकों के लड़ने के स्थानका ज्ञान करवा देते थे। चारों ओर के अंधकार में दीपक के प्रकाश के कारण विजय-सेना की छावनी थली स्पष्ट दिखाई पड़ती थी। स्थान-स्थान पर दिखाई पड़ने वाली आग की लपटें या धुंआ विदेशियों द्वारा किये हुए व्यवहार की साक्षी दे रहे थे। सबसे

तटस्थ, अंधकार में भी काला लगता हुआ गिरनार सभी पर अपना भयंकर प्रभाव डाल रहा था। और इस सबसे अलग दूर किसी गुहा में पड़े केसरी की गर्जना का गम्भीर नाद उस त्रासमय वातावरण को और भी त्रासदायी बना रहा था। काक विचार-मग्न होकर देखता रहा, और मौन ही उसने जूनागढ़ के दुर्जय खेंगार की अडिग वीरता को अर्घ्य अर्पण किया।

पीछे से कोई दौड़ता हुआ आया। 'कौन काक ?' आगन्तुक का स्वर सुनाई पड़ा।

काक को स्वर परिचित लगा। आगन्तुक को वह देख सके उससे पहले तो आगन्तुक ने उसे अपनी बाहुओं में भर लिया।

काक चमका, किन्तु पहचानते ही बोला, 'कौन रा' ?'

: ५ :

सशक्त भी निर्बल हो जाता है

राणकदेवी के स्थान पर रा' क्यों आए, उसे किस काम बुलाया, रा' क्या काम सौंपेंगे, इस प्रकार के अनेक विचार काक के मन में उठे। रा' के आलिंगन समाप्त कर लेने पर उसने उसे ध्यान से देखा। उसे देखकर उसके मस्तिष्क के आगे पन्द्रह वर्ष पहले का खेंगार खड़ा हो गया। उसके सबल और छटा-भरे अंग जैसे-के-तैसे थे। मात्र सोम-सुन्दरी के प्रणयी के सुन्दर अंगों पर इस समय कवच और पट्टियां थे। उसके सिंह-से भव्य मुख पर सुन्दर दाढ़ी शोभित हो रही थी, और दो घावों की रेखाएं इस भव्यता को अनुपम शोभा प्रदान कर रही थीं। उसकी चमकती हुई आँखों में निश्चल किन्तु अस्वाभाविक तेजस्विता दिखाई पड़ रही थी। उसका हास्य पहले जैसा ही मोहक था।

'काक ! तू आ ही गया ।' खेंगार ने भाव-भरे स्वर में कहा।'

'महाराज !' काक ने विशेष मान से कहा। 'मुझे आपने बुलाया था ?'

'धीरे,' खेंगार ने कहा, 'हां, मैंने बुलाया था।'

'मुझे तो देवी का संदेशा मिला था।'

'नहीं, मैंने भेजा था।'

'किन्तु मणिभद्र तो कहता था कि वह देवी से मिला था।'

'वह तनिक पागल है। मैंने दूसरी रानी के द्वारा कहलवाया था। किन्तु वह भंगेड़ी भ्रम में यह समझ बैठा कि वह गणक से मिला था।'

'ऐसा क्यों किया ?' काक ने पूछा।

'वरना तू आता जो नहीं।'

'आपने कहलाया होता तो भी मैं आजाता।'

'क्यों, पाटण की चाकरी छोड़ दी ?' तनिक तिरस्कार से खेंगार ने पूछा।

'नहीं। अब तक तो हूँ। कल की बात शम्भू जाने।'

'क्यों ? फिर तेरे स्वामी क्रुद्ध होगए हैं क्या ?' कृष्णदेव ने हँसकर पूछा। उसकी हँसी में पहले जैसा ही विनोद झलकता था।

'बापू ! अपनी पीड़ा मैं स्वयं सँभाल लूँगा। कहिए मुझे क्यों बुलाया ?'

खेंगार ने सावधानी से चारों ओर देखा और फिर धीमे-से कहा—

'काक ! मुझे तेरी सहायता की आवश्यकता है।'

'मैं प्रस्तुत हूँ।'

'मुझे पाटण के साथ संधि करनी है।'

'सं...धि !' काक आश्चर्यचकित होगया।

'धीरे बोल। कोई सुन लेगा। काक ! आश्चर्य की इसमें नई बात क्या है ?' शांत और विनोद-भरे स्वर में खेंगार ने कहा, 'खेंगार ने जयसिंहदेव को पंद्रह वर्ष तक छकाया और अब भी जूनागढ़ के कँगूरे

अखंड हैं। फिर भी सोरठ का रा' संधि की याचना क्यों करता है ?'

'मैं भी यही पूछना चाहता हूँ।' काक ने कहा।

'काक ! कोई रा' कभी नतमस्तक नहीं हुआ और जूनागढ़ ने विजेता का स्वागत नहीं किया। इसलिए संधि की बात करते हुए मेरे प्राण काँप रहे हैं। गत वर्ष मुझे मुंजाल ने संधि की सलाह भेजी थी तो मैंने सलाह लाने वाले को गधे पर बिठाकर घुमाया था।'

'तो अब क्या होगया ?'

खेंगार ने एक गहरी साँस ली—'भाई ! मुझे मालूम न था कि जयदेव स्वयं रण में भाग लेंगे।'

काक आंखें फाड़कर देखने लगा। खेंगार जैसे अडिग वीर के हृदय में कायरता ?

'तो उससे क्या ?'

'उससे क्या ? काक ! मैं वीर राजपूत हूं, और वीर राजपूत का सामना करने से मैं कभी डरा नहीं। किन्तु तुम्हारा जयदेव न टेक का ही दृढ़ है और न राजपूत ही।' खेंगार ने कटुतापूर्वक कहा।

'बापू ! मैं यह नहीं समझ पाया।'

'काक ! जयदेव युद्ध के लिए निकला है किन्तु जूनागढ़ लेने नहीं।' दर्द-भरे स्वर में खेंगार ने कहा।

'तो ?'

'वह रानक को पुनः लेना चाहता है।'

काक पीछे हटा, 'क्या पागल हुए हो ?'

'नहीं, उसकी दृष्टि तो वहां है। उसे राजपूत की टेक की क्या चिंता ? वह कोई मनुष्य है ? राक्षस और पिशाच के बल पर जो राजपूत लड़ता है वह कोई आदमी है ?'

'बाबराभूत की बात कर रहे हो ?'

'तुम्हारे महाराज की प्रत्येक विशेषता निराली है। बाबराभूत उनका सेवक है सो तो ठीक। किन्तु जब से यह चंथली आया है तब से

स्वयं घावराभूत हो गया है। गाँवों में आग लगा दी जाती है, चारों ओर लोग त्राहि-त्राहि कर रहे हैं। वापदादा यवनों की कथा कहा करते थे वैसी ही दशा हो रही है। मुझसे अपनी असहाय प्रजा की विपत्ति नहीं देखी जाती। इससे तो संधि करके नाक कटाना अधिक अच्छा।'

'महाराज! आप सम्पूर्ण कुल के कलंक बन जायँगे।'

'हाँ। किन्तु अपनी निःसहाय प्रजा और अपनी राणक की रक्षा कर लूँगा।'

'महाराज! संधि करना मुझे तो अच्छा ही लगता है। लाट का विग्रह भी मैंने ऐसे ही समाप्त किया। किन्तु प्रश्न तो यह है कि जयदेव महाराज मानेंगे या नहीं।' काक ने कहा।

'उससे भी बड़ी कठिनाई एक और है।'

'कौनसी?'

'राणक की।'

'राणक देवी की?' काक ने पूछा।

'हाँ, काक! तुझे बुलाने का मुख्य हेतु इसे समझाने का ही है। भाई! राणक स्त्री नहीं, जगदंबा का अवतार है। लोग मुझे यश देते हैं किन्तु जूनागढ़ यदि टिका रह सका है तो उसीके प्रताप से। उसीके उत्साह से हम जीवित हैं। उससे संधि की बात कौन कर सकता है?'

'आपने उनसे बात नहीं की?'

'नहीं, साहस नहीं होता। काक! यह न होती तो मैं युद्ध में कभी का हार जाता—और जूनागढ़ भी भूमिसात् हो गया होता। किन्तु मेरी राणक दे—' खेंगार ने स्नेहभीनी वाणी में कहा, 'के साहस ने हमें खड़ा रहने दिया। अब उसके दृढ़ संकल्प के विरुद्ध कौन जाय? संभव है तू उसे समझा सके।'

'किन्तु मेरी बात मानेंगी?'

'सम्भव है मान ले। वह तेरा अत्यंत मान करती है और मुझे तुझ में बहुत श्रद्धा है।'

काक मुस्कराया, 'जो सती आपकी नहीं मानती वह मेरी मानेगी ?'

'काक ! प्रयत्न करके तो देख । मुझे मृत्यु का डर नहीं—और न राणक ही को है । किन्तु मैं खेत रहूँ और वह महाराज के हाथों में पड़े—'खेंगार के शरीर में कंपकँपी छूटी यह काक ने देख लिया ।

'बापू ! आप मुझे बहुत कठिन काम सौंप रहे हैं ।'

'क्यों ?'

'राणकदेवी से कुल का नाम डुबोने के लिए कहना और जयदेव महाराज के क्रोध को रोकना—ये दो काम त्रिपुरारी से भी नहीं हो सकते तो मुझसे कैसे होंगे ?'

'मुझे विश्वास है कि बनेगा तो तुझ ही से बनेगा ।'

'किन्तु महाराज ! देवी को यहाँ आने का कारण क्या बताऊंगा ?'

'कहना, मैंने मंत्रणा करने बुलाया है ।'

'अच्छा ! किधर हैं ?'

'अभी आती हैं । तू स्नान करके भोजन तो कर । चल, हाँ, अपने मुख पर वस्त्र बाँध ले ।'

'जो आज्ञा' कहकर काक वस्त्र बांधकर रा' के पीछे हो लिया ।

: ६ :

राणक देवड़ी

काक के भोजन कर चुकने पर खेंगार उसे रनिवास में ले गया । कमरा छोटा और अँधेरा था । एक बड़े दीपक का प्रकाश फैला हुआ था । वहाँ पांच-सात स्त्रियाँ बैठकर हथियार साफ कर रही थीं । एक

दूर की ताक में भवानी की मूर्ति के सामने घी का दिया जल रहा था। सभी स्त्रियां काले वस्त्र पहने हुए थीं। एक छोटी स्त्री दीपक के पास बैठी-बैठी एक ढाल पर से रक्त के धब्बे साफ कर रही थी। वह धीमे-धीमे कुछ गा रही थी, और शेष स्त्रियां धीरे-धीरे उसे दोहरा रही थीं। गीत भी असामान्य था। गानेवालियाँ यमराज से कह रही थीं कि कल आना क्योंकि आज तो उनका पति शत्रु का हनन करने गया हुआ है।

ऐसा लग रहा था मानो जोगमाया खप्पर निकालने से पहले तैयारी में लगी हों। कमरे में अपार्थिव गांभीर्य छाया हुआ था। रा' और काक धीमे-धीमे आए। काक के अंतर में अजाने ही पूज्य भावना उदित हो रही थी। उसे लगा कि एक प्रकार का दैवी और क्षुब्ध वातावरण चारों ओर फैला हुआ है।

'दे!' खेंगार ने धीमे और सम्मान से कहा।

रा' का स्वर सुनकर आस-पास बैठी स्त्रियाँ चमकीं और रा' को पहचानकर शीघ्रता से घूँघट निकालती हुई वहाँ से चली गईं। दीपक के सामने बैठी हुई छोटी स्त्री ने हाथ रोककर ऊपर देखा। दीपक के प्रकाश में उस मुख को देखकर ही काक को विश्वास हो गया कि इस स्त्री को डिगाना असंभव है।

काली ओढ़नी की किनारी में अद्‌भुत रीति से मढ़ा हुआ मुख छोटा और क्षीण था—कभी सुन्दर रहा होगा! उसके अधरों में निश्चलता थी, उसकी आँखों में तेजस्विता; किन्तु यह सब होने पर भी उस मुख पर एक ऐसी गहनता थी जो न समझी जा सकती थी और न सहन ही की जा सकती थी।

उसके चारों ओर फैला तेज दुःसह था। ऐसा लग रहा था मानो यमराज को हराने वाली सावित्री या वेणीसंहार करने के लिए उत्सुक द्रौपदी के मुख का तेज सदा के लिए इस मुख पर आकर बस गया हो। जिस प्रकार उस कमरे का वातावरण अपार्थिव था वैसा ही यह

तेज भी अपार्थिव था। काका का हृदय अपनी स्वाभाविक स्थिरता न रख सका। उसने इस स्त्री को साष्टांग प्रणाम किया।

राणकदेवी ने काक को नहीं पहचाना; किन्तु रा' को देखकर वह उठी उसका छोटा, क्षीण शरीर धनुष के दण्ड के समान झुका; उसके मुख पर अवर्णनीय भक्ति की मुस्कराहट छाई हुई थी।

'पधारिए महाराज!' उसने आदर से कहा। उसकी वाणी में दबाई हुई भावना का कंपन था। खेंगार भक्ति से बैठ गया।

'ये कौन हैं?'

'देवी! मुझे नहीं पहचाना?' कहकर काक ने वस्त्र हटा दिया।

'कौन भाई काक?' आँखें फाड़कर राणक बोली।

'हाँ।'

राणकदेवी की गहन आँखों की गहराई से भी किरणें फूट पड़ीं। 'तुम यहाँ?' उसके स्वर में कुछ-कुछ शंका थी।

'देवी!' काक ने कहा, 'मैं जयदेव महाराज का भेजा नहीं आया हूँ। मुझे तो बापू ने बुलाया था।'

'क्यों?' उसने अपने पति की ओर घूमकर प्रश्न किया।

'मुझे तुमसे सलाह लेनी थी।'

'किस विषय में?' उसने पूछा।

'बापू को मैंने सलाह दी कि पाटण के साथ सन्धि कर डालो, नहीं तो जूनागढ़ मटियामेट हो जायगा।' काक ने राणकदेवी की ओर देखकर कहा।

राणक के मुख पर विचित्र परिवर्तन हुए। उसका फीका, शांत मुख लाल होगया मानो किसीने अपमान किया हो, तमाचा मारा हो, और उसके मुख पर अदम्य गौरव की लिपि स्पष्ट हो गई। खेद से वह जरा पीछे हटी और फिर रा' के सामने देखने लगी—फिर धीमी और काँपती हुई वाणी में प्रश्न किया 'क्यों रा' जयदेव से सन्धि किसलिए करें?' और मर्मभरी आँखों से वह काक की ओर देखने लगी।

उसकी वाणी में तिरस्कार न था, डाँट न थी, फिर भी काक को तिरस्कार और डाँट दोनों मिले। एक वाक्य ही में इस अपार्थिव स्त्री की अतुल मृदुता, उसकी पतिभक्ति और उसके अपने पति के चारों ओर रचे हुए स्वप्न दिखाई दे गए। इस स्त्री के लिए खेंगार मनुष्य नहीं, दुर्जय देवता था। उस देवता की वह पूजा करती थी। खेंगार और काक दोनों ने एक-दूसरे की ओर देखा। उस दृष्टि में काक ने अपने प्रयत्न की निष्फलता स्वीकार की। फिर भी, काक ने एक वार पुनः प्रयत्न करने का निश्चय किया।

'देवी! प्रजा पीड़ित हो रही है—और सम्पूर्ण सोरठ उजाड़ होता जा रहा है। किसी प्रकार जूनागढ़ की रक्षा हो—'

'काक!' एक गहरी साँस लेकर देवड़ी बोली, 'मेरा रा' है तो पीड़ित प्रजा कल पुनः सुखी होगी और उजाड़ सोरठ में रंग-रास होंगे।'

'किंतु, न करे नारायण, कहीं जूनागढ़ पराजित हो जाय तो—'

'तो महाराज का क्या होगा, यही न?' देवड़ी ने धीमे-से प्रश्न किया, 'काक! मेरा रा' कभी झुका नहीं और न कभी झुकेगा। जैसा यह गिरनार वैसा ही यह खेंगार। दोनों में से एक भी न डिगने का, न झुकने का।'

'देवी! भोलानाथ आपके मनोरथ सम्पूर्ण करें।' आँखों में तैरते पानी को पोंछकर काक ने कहा, 'किन्तु बापू संधि का विचार करें तो—' उसने रा' की ओर देखा।

देवड़ी चमकी और पुनः पीछे हटी। उसने पीछे दीवाल पर हाथ टेका और एक दृष्टि रा' पर डाली। उस दृष्टि में घोर वेदना थी। स्नेह-भरी वधू पति का प्रथम दर्शन करने जाय और शैया में शव देखकर जैसा क्रन्दन कर उठे वैसा क्रन्दन उस दृष्टि में था। उसी दृष्टि में यह भय भी प्रकट हो रहा था कि उसकी स्वप्न-सृष्टि का प्रलयकाल आ गया है।

'महाराज !' फीके अधरों से वह खेंगार की ओर मुड़ी, किन्तु उससे बोला नहीं गया ।

खेंगार ने पन्द्रह वर्ष इस देवी के चरणों में व्यतीत कर दिए थे और उसकी भक्ति, उसकी श्रद्धा और उसके स्वप्नों से वह पूर्णतः परिचित था । देवड़ी की उसमें श्रद्धा न रहे, उसके स्वप्नों में पति को अर्पित की हुई मानवता से वह गिर पड़े, इससे तो सम्पूर्ण संसार जल कर भस्म हो जाय उसीसे वह प्रसन्न होता ।

वह काक की ओर देखकर मुस्करा उठा और उसकी सिंह के समान भव्य मुख-मुद्रा पर आत्म-श्रद्धा पुनः प्रकट हो गई ।

'काक ! देवड़ी सत्य कहती है । जीता रहूँ या मर जाऊं खेंगार तो यहीं खड़ा रहेगा—गिरनार के समान निश्चल और दुर्जय ।'

राणक के मुख पर प्रशंसा की छाया फैल गई; उसकी प्रेम-भीनी आंखें पति पर जाकर टिक गईं ।

'काक ! तेरा परिश्रम व्यर्थ है,' वह बोली, 'मेरे रा' की तो सदा विजय ही है ।'

यह बच्चों जैसी अडिग श्रद्धा देखकर काक के खेद की सीमा न रही । 'किन्तु—किन्तु—फिर आपका—'

'मेरा !' राणकदेवी इस प्रकार बोली मानो निस्सार है, 'मेरा क्या होने को है ? इस भव में या—' उसके गले में तनिक रुलाई आई, 'जहां ये वहां मैं । मेरे बिना इन्हें विजय माला कौन पहनाएगा ?' उसने हंसकर पूछा ।

काक की आंखों से आंसुओं की झड़ी लग गई ।

'देवी ! तुम साक्षात जोगमाया हो ।'

'भाई ! मैं तो अपने रा' के चरणों की रज हूं ।' देवड़ी ने बड़ी सरलता से कहा ।

'काक !' खेंगार ने हंसकर हाथ फेरा, 'तूने जो कुछ किया उसके लिए तेरा आभार मानता हूं ।'

'क्यों ?'

'तू न होता तो मेरी देवड़ी मुझे नहीं मिलती।'

'और महाराज मैं कलयुग में भी देवता का देवी के साथ व्याह करवा सकूंगा यह स्वप्न में भी मैंने आशा न की थी। मैं तो साधारण सैनिक हूँ—आपके समान दृढ़ता मैंने कभी नहीं रखी। किंतु इस जोगमाया के सामने मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि जिन्हें मैंने एक किया है उन्हें मेरे जीते-जी तो ब्रह्मा को भी अलग न करने दूंगा। बस, महाराज! निश्चिन्त रहें और विजय करें।' वह और खेंगार पुनः आलिङ्गन में गुथ गए।

'काक! तू कब आया? भोजन किया?' देवड़ी ने पूछा।

'हां, देवी!'

'और तेरी पत्नी कैसी है?' उसने स्नेह से पूछा।

'देवी! मैंने और आपके रा' ने एक ही समय में शंकर-पार्वती की पूजा की थी।'

'अच्छा। मंजरी भी तो हमारे जूनागढ़ की ही कहाती है।'

'ऐसा तो है ही। देवी, अब आप बैठिए। महाराज, अब आप मुझे आज्ञा दें तो मैं जाऊं।'

'रात यहीं रहकर जाना। तू थक गया है। प्रातःकाल जूनागढ़ देखकर जाना।'

'बापू मुझे रात-रातों वंथली जाना है, और जूनागढ़ मुझे देखना नहीं। जूनागढ़ पर चढ़ाई करने का काम मुझे ही सौंपा जाय तो?'

'काक! तेरे जैसा और नहीं देखा।' खेंगार ने कहा, 'तूने वर्षों पहले मेरी मानी होती और जूनागढ़ आकर बस गया होता तो हम दोनों क्या न कर डालते?'

'महाराज! आपका शौर्य और आपकी टेक देखकर मुझे भी ऐसा ही लगता था। किन्तु जैसी सोरठ की टेक आपको प्यारी है वैसी लाट की मुझे। अच्छा देवी, आज्ञा?'

'भाई ! मेरे आशीर्वाद।' राणकदेवी ने कहा।

जाते-जाते काली ओढ़नी में मढ़े हुए उस अप्रतिम स्त्री के क्षीण मुख की ओर उसने एक बार और देखा, और मन-ही-मन प्रणाम करके खेंगार के साथ बाहर निकल गया।

बाहर निकलते समय उसने मुख पर वस्त्र बाँध लिया। 'महाराज ! कोई चिन्ता न कीजिएगा, जूनागढ़ का अभी तक कङ्कड़ भी नहीं हिला है, और जयदेव महाराज मनस्वी पुरुष हैं अतः कुछ होने का नहीं।'

'तुझे जूनागढ़ लेने को कहेंगे तो ?' खेंगार ने शांत और विनोद-भरे स्वर में कहा।

'मुझे जूनागढ़ लेने को कोई न कहेगा, और आपके कथनानुसार कोई कहे भी तो मैं लूंगा नहीं।'

'नहीं, लेना। तेरे हाथ मृत्यु पाकर मैं निश्चिंत हो जाऊंगा। मुझे मरने से तनिक भी डर नहीं है।'

'तो बापू ! मरने के पश्चात् क्या होगा इसका भी तनिक डर न रखिए। मुझे एक ही डर है—कल मेरा क्या होगा यह समझ में नहीं आ रहा है।'

'काक ! तेरा कोई कुछ करने का नहीं। मैं भी पाटण से कुछ-कुछ परिचित हूं। तेरा बाल भी बांका करने का साहस किसी में नहीं है।'

'देखा जायगा।'

'ले ये सोनिया रहा। सोनिया, इन्हें पंथली के मार्ग पर छोड़ आ।'

'बापू की जो आज्ञा।' कहकर सोनिया काक को ले गया।

: ७ :

काक का सन्देह

जाने से पहले काक ने रा' से बहुत बातें कीं और अन्त में भारी हृदय से मित्र से विदा ली। राणकदेवी के व्यक्तित्व का काक पर बहुत प्रभाव पड़ा था। इस प्रतापी स्त्री ने अपने वीर पति और सम्पूर्ण जूनागढ़ पर अपने स्वप्नों का ऐसा जादू कर दिया था कि उसे कोई भंग नहीं कर सकता था। राणक और खेंगार के स्वप्न और गौरव बने रहें और पाटण की विजय भी हो जाय—इन दो वस्तुओं पर गहरा विचार करता हुआ वह जूनागढ़ से बाहर आया।

मोतिया उसे एक लम्बे पथ से गिरनार की दूसरी ओर ले गया जहाँ उसने उसकी आँखों की पट्टी खोल दी और इसके बाद दोनों बड़े वेग से वंथली की ओर चले। मेंदरड़ा की ओर कई दिनों से सोरठी और पट्टणी सैनिकों में झड़प हो रही थी इसलिए उन्होंने उससे अलग मार्ग पकड़ा। इस ओर थोड़े-थोड़े अन्तर पर जूनागढ़ की चौकी या थाना मिलते, किन्तु मालूम होता है मोतिया सब चौकीदारों को पहचानता था क्योंकि उसे देखकर कोई काक के विषय में पूछताछ नहीं करता था। यात्रा कुछ कठिन थी। पथ ऊँचा-नीचा था, खाइयां भी बीच में पड़ती थीं, इसलिए वे जल्दी-जल्दी न चल सकते थे। मार्ग में पड़े हुए शवों को देखकर घोड़ियां चमक उठती थीं।

थोड़ी देर में वे एक टेकरी पर पहुँच गए जहाँ वे विश्राम करने के लिए ठहर गए। टेकरी के नीचे एक चौकी थी जहाँ कुछ सैनिक अलाव के चारों ओर बैठे हुए थे। एकाएक टेकरी के दूसरी ओर से घोड़े की टाप सुनाई दी। अहीर और काक दोनों ने ध्यान से चारों ओर देखा। एक काला धब्बा वेग से चौकी की ओर चला आ रहा था और दूसरा वंथली की ओर वाले जङ्गल में घुसा जा रहा था। अहीर ने शंकित होकर चारों ओर देखा और शिकारी कुत्ते के समान

सूँघने लगा। काक वेग से आते हुए अश्वारोही की ओर एकाग्रता से देख रहा था।

'मालूम होता है तुम्हारे चौकीदार, चौकीदारी नहीं करते।'

'बापू! कोई परिचित व्यक्ति ही होगा, नहीं तो जूनागढ़ की चौकियों से निकल आना कठिन है।'

'चलो देखें।' कहकर काक टेकरी से उतरकर चौकी की ओर गया। वह अश्वारोही चौकी के निकट पहुँच चुका था और चौकीदार उठकर उसके निकट पहुंच गए थे। अश्वारोही ने अपने मुँह पर वस्त्र बाँध रखा था। मोतिया चतुर था। उसने तुरन्त अश्वारोही को पहचान लिया और आगे बढ़कर प्रणाम किया, 'देशलदेव बापू को घणीखम्मा।'

चौकीदार और अश्वारोही दोनों चमके। इधर काक भी चमका। वर्षों पहले उसने देशलदेव को देखा था और उसने यह भी सुन रखा था कि इस समय देशल और उसका भाई विशाल दोनों खेंगार के पक्ष में हैं। इसलिए इस समय उसका मिलना काक को भला न लगा।

'कौन मोतिया!' चकित होकर देशलदेव ने पूछा। देशलदेव और मोतिया को पहचानकर चौकीदार दूर खिसक गए। काक भी दूर खड़ा रहा।

'हाँ बापू! किन्तु आप इस समय यहाँ कैसे?'

'मैं चौकियाँ देखने निकला हूँ।'

'ऐसा?' मोतिया ने नम्रता से कहा।

'एक आदमी को अपनी चौकी के बाहर भेजना है।'

देशलदेव ने शंका से काक की ओर देखा, 'कौन है?'

'बापू का आदमी है।'

'किन्तु है कौन?' अपना घोड़ा मोतिया की घोड़ी के निकट लाकर देशलदेव ने धीमे से पूछा।

'मुझे नहीं मालूम।'

'ऐसा कभी हो सकता है ?' देशल ने हँसकर पूछा।'

'हो सकता है। नहीं तो आपसे कहने में क्या बाधा ?'

'अच्छा ठहर, पूछता हूँ।'

'नहीं बापू ! महाराज क्रोधित हो जायँगे।' मोतिया ने कहा।

'अरे ए ! इधर आ।' देशलने काकको निकट बुलाया। काक घोड़ी थोड़ी आगे ले आया और खड़ा हो गया।

'तेरा क्या नाम है ?'

काक ने मौन रहकर मोतिया की ओर संकेत किया।

'आप इससे कुछ न पूछिए।' मोतिया ने अधीरता से कहा, 'हम जायंगे। हमें देर हो रही है।'

'यह कैसे हो सकता है ? मुझे जानना पड़ेगा।' देशल ने तनिक क्रोध में कहा, 'नहीं तो चलो पुनः महाराज के पास।'

'बापू ! मोतिया अहीर पर भी विश्वास नहीं ?'

'आजकल किसी पर विश्वास करना व्यर्थ है।' देशल ने कहा।

मोतिया का मुख क्रोध से तमतमा उठा। काक ने देखा कि यदि बात बढ़ जायगी तो गड़बड़ हुए विना न रहेगी। उसने घोड़ी को एड़ मारी और आगे आया।

'महाराज !' बनावटी स्वर में काक बोला। देशल और अहीर ने ऊपर देखा। काक अपनी घोड़ी देशल की घोड़ी के निकट ले गया और नीचे झुककर देशल के कान में कहा—'बापू, जिससे आपने अभी-अभी भेंट की है मैं उसीका आदमी हूं।'

देशल चमका; फीका पड़ गया, और उसकी अस्वस्थता का अनुभव करके उसका घोड़ा भी उछल पड़ा।

'चल मोतिया !' काक ने कहा, और उसने और अहीर ने अपनी-अपनी घोड़ियों को एड़ लगाई। देशल अपनी पगड़ी संभालता रह गया।

'बापू ! आपने बात भारी की।' मोतिया ने कहा।

'यह तो मेरा पुराना मित्र है ।' काक बोला ।

'मोतिया, अब तू जा । वंथली यह रही । मैं अपने आप चला जाऊंगा ।'

'भटक जायंगे तो ?'

'कैसी बात करता है ? हाँ, देख महाराज से कहना कि मुझे संदेशा कहलवाना है अतः अगले बुधवार को तुझे यहाँ भेज दें । यदि कुछ कहना होगा तो मैं उस दिन मध्यरात्रि को इसी स्थान पर आऊँगा । बापू और देवी को मेरा जय सोमनाथ कहना ।'

'जो आज्ञा ।' कहकर मोतिया ने अपनी घोड़ी घुमा दी । 'हो सके तो इस 'बापुडी' को वापस भेज दीजिएगा । बड़ी समझदार घोड़ी है । बेटी आना ।' अहीर ने घोड़ी से कहा ।

काक कुछ देर तक खड़ा रहा । वंथली जाने का मार्ग सीधा जान पड़ता था । वह तुरन्त घोड़ी पर से उतरा और धरती पर कान लगाकर लेट गया । धीरे चलते हुए घोड़े की टाप-सी कुछ सुनाई दी । वह तुरन्त घोड़ी पर चढ़ बैठा और घोड़ी को दौड़ा दिया ।

थोड़ी देर में आगे जाते हुए किसी घोड़े की टाप स्पष्ट सुनाई पड़ी । पाटण के मंडलेश्वर का पुत्र और [illegible] का भानेज विश्वासघाती देशल इस समय वंथली में किसी व्यक्ति के साथ गुप्त मंत्रणा करे और यह खबरें हों कि वह उस व्यक्ति से मिला है देशलदेव पीछा पड़ जाय — काक के लिए इतना बहुत था । वह वंथली जाने से पहले वहाँ की परिस्थिति की जानकारी प्राप्त करने के लिए व्याकुल था । वंथली जाने वाला यह व्यक्ति कौन था, यह जान लेने की भी उसने आवश्यकता समझी ।

जैसे जैसे उसकी [illegible] बढ़ती गई वैसे-वैसे आगे का घोड़ा और [illegible] लगा । फिर [illegible] उसकी चाल धीमी हो गई । जब [illegible] घोड़े के पास [illegible] थोड़ा [illegible] था । काक [illegible] हो [illegible] [illegible] था [illegible] काक की [illegible]

ऐसा न था। काक अपनी घोड़ी पर से उतर पड़ा और उस घोड़े पर बैठकर चला गया।

जब उसने देखा कि वंथली तनिक निकट आ गई है तो वह मार्ग के निकट एक खेत में घोड़ी की लगाम हाथ में लेकर लेट गया। थोड़ी देर में काक ने जो सोचा था वही हुआ। उसकी घोड़ी पर बैठकर एक व्यक्ति आया और उसे सोया हुआ समझकर घोड़ी रोककर देखने लगा। फिर कुछ देर विचार करके वह अश्वारोही वंथली की ओर चल दिया।

काक ने विश्राम करने के लिए आँखें मींच लीं।

: ८ :

बर्बरक

काक कितनी देर इस प्रकार सोता रहा इसका उसे भान न रहा। घोड़े की हिनहिनाहट सुनकर वह उठ बैठा। चारों ओर उषा का प्रकाश फैला हुआ था; फिर भी काक को ऐसा लगा मानो उसने कोई भयानक स्वप्न देखा हो। दो प्रचंड काली भुजाओं ने उसे धरती पर दबा रखा था और उसे एक भयानक मुख दिखाई पड़ रहा था।

मुख विशाल और घोर काला था। दो विशाल, लाल, विकराल पुतलियां आँखों से निकली पड़ती थीं। उस मुख पर नाक के नाम के दो बड़े नथने थे और नीचे लटकते हुए होंठ तक एक तीक्ष्ण दाँत था। सर और छाती पर झंखाड़ के समान झबरे और लंबे बाल थे। मुखाकृति जितनी भयंकर थी उतनी ही अस्वाभाविक थी। क्षण-भर के लिए काक चकरा गया। उसे लगा उसका थका हुआ मस्तिष्क

ऐसा अमानुषिक चित्र खड़ा करके उसकी हँसी उड़ाना चाहता है; किन्तु उसके कंधों पर का दबाव तो सत्य था। तुरंत उसे जयदेव महाराज को वश में करने वाले बावरा भूत की याद आई। उसने इस भूत की बात असत्य ही मानी थी; किन्तु इस समय इस बात का मानो प्रमाण मिल रहा था कि बात सत्य थी।

पिशाच के साथ पाला पड़ा है यह विचार आते ही उसके होश-हवास जाने को थे कि उसके मस्तिष्क के सामने विशुद्धि की अवतार के समान उससे दूर पड़ी मंजरी की छवि आ गई और उसे देखकर उसमें सनातन ब्राह्मण का गर्व जाग पड़ा। आधे क्षण में उसने गायत्री पढ़ी और अनपेक्षित चपलता के साथ अपना सिर ऊपर उठाया और उलटा फेंककर वेग से राक्षस की नाक से भिड़ा दिया।

काक को चक्कर आ गया, किन्तु वह राक्षस वेदना-भरी चीत्कार करके काक के कंधे पर रखे हुए दोनों हाथ हटाकर पीछे हटा।

काक का भय विलुप्त जाता रहा। राक्षस को बड़ी वेदना हो रही थी क्योंकि वेदना के मारे वह अपनी नाक दबा रहा था। उसकी आँखों से ऐसा लग रहा था कि वह यह सोच भी न सकता था कि यह मनुष्य इतनी हिम्मत और तत्परता से उस पर आक्रमण कर बैठेगा। काक का सिर चक्कर खा रहा था किन्तु उसकी दृष्टि की तीक्ष्णता कम न हुई थी। यह राक्षस उससे एक हाथ ऊँचा था, उसके स्नायु [illegible] के समान थे और उसकी [illegible] उसके मुख से स्पष्ट [illegible] रही थी। यदि यह [illegible] हो गया तो रक्षा करना कठिन हो जायगा। [illegible] काक ने स्पष्ट देख लिया, किन्तु दूसरे ही क्षण [illegible] होने लगा।

उसने देखा कि उसकी [illegible] उस राक्षस के पाँव के पास पड़ी हुई थी। [illegible] जाय तो उस राक्षस पर [illegible] [illegible] उस आक्रमणकारी दुष्ट राक्षस के सामने [illegible] और [illegible] पर मुष्टि-प्रहार करने का [illegible]।

लगे हुए स्थान पर पुनः चोट लगने के डर से राक्षस पीछे हटा और काक को मारने के लिए हाथ की मुट्ठी मींच ली। किन्तु काक आगे नहीं आया। वह लकड़ी के पास ठहर गया और पाँव से उठाकर लकड़ी हाथ में ले ली। जैसे ही उस राक्षस का पंजा उसे पकड़ने को आगे बढ़ा वैसे ही काक ने पीछे हटकर सामने के हाथ पर ज़ोर से लकड़ी से प्रहार किया।

वेदना से राक्षस चीख पड़ा। वह कूदा, कुछ दूर गया, और सामने की हुई लकड़ी की सीमा को पारकर काक पर टूटा। काक तनिक घबराया। किन्तु सहजबुद्धि की सहायता से उसने लकड़ी अपने और राक्षस के मध्य में करली। जिस समय राक्षस उसे धरती पर पटक देने में मग्न था उस समय वह अपनी लकड़ी राक्षस की दोनों टांगों के बीच में डाल रहा था। काक भूमि पर गिरा अवश्य, किन्तु उसी समय उसने लकड़ी पर ऐसा जोर दिया कि राक्षस की टाँगें एक-दूसरे में फंसकर मुड़ने लगीं। जैसे-जैसे वह काक को दबाता वैसे-वैसे काक बड़ी चतुराई से पकड़ी हुई लकड़ी के एक सिरे को दबाता, दूसरे सिरे पर उसकी टांगे फटी पड़ रही थीं। क्रोध से वह दहाड़ पड़ा और अपनी टांगे छुड़ाने का प्रयत्न करने लगा। छाती पर जैसे दबाव कम हुआ काक ने साधारण प्रयत्न से ही पलटा खाया—साथ ही लकड़ी के दबाव में भी परिवर्तन हो गया। एक पर दूसरी टांग आजाने के कारण राक्षस लुढ़ककर चित्त हो गया। काक लपक कर उसकी छाती पर चढ़ बैठा। पांव में से लकड़ी निकालकर काक ने उसे उसकी गर्दन पर रखकर दबाया।

'पिशाच! कौन है तू?' हांपते-हांपते काक ने पूछा। राक्षस की पुतलियाँ फट रही थीं और दांत पीसकर वह काक को उठा फेंकने का प्रयत्न कर रहा था। काक ने गर्दन पर की लकड़ी दबाई; 'पापी! थोड़ी-सी भी गड़बड़ की तो गला दबा दूँगा।'

लकड़ी के दबाव से राक्षस का दम घुटने लगा, और उसकी पुत-

[illegible] इधर-से-उधर, उधर-से-इधर होने लगीं। काक ने गले पर का दबाव कम कर दिया।

'तू कौन है ?' काक ने पूछा और हाथ से गला दबाने की धमकी दी।

'थोड़ी देर में राक्षस ने कहा—'भूत।'

'बावरा ! मैं पहले ही समझ गया था। अच्छी बात है। तू सबको दुःख देता है। अब मैं तेरे प्राण ही लूँगा।' कहकर काक लकड़ी दबाने लगा।

'ना, ना।' कहकर बावरा ने सिर हिलाया। उसके मुखपर दया-याचना का भाव छा गया। उसकी आँखों में आग्रह था। उसकी वाणी में भी दया की याचना थी। काक हँसा।

'ना, ना क्या ? नहीं, तो तुझे बाँधकर महाराज के निकट ले जाऊँगा।'

'महाराज ! ना,ना,मुझे मार डालेंगे।' तनिक घबराकर बावरे ने कहा।

'तुझे किसलिए मारेंगे ?'

'तुमने मुझे पकड़ा [illegible] से।'

'हा !' काक हँसा 'मेरे कारण महाराज [illegible] समझे जाते हैं।' [illegible] कहा। मुझे [illegible] छोड़ दूँगा और यह बात [illegible] न कहूँगा। किन्तु मैं जो कहूँ वह करने का वचन दे, नहीं तो तेरा [illegible] जायगा।'

'[illegible] ! [illegible] वचन देता हूँ। तुम्हारा काम न [illegible] तो [illegible] मुझे [illegible]। बस ?'

'[illegible] मैं [illegible] हूँ।'

'[illegible]।'

'[illegible] हैं ?'

'[illegible]!'

'[illegible] ने पूछा।

'[illegible]'

'मुंजाल महेता और बड़ी देवी यहीं हैं।'

'हाँ।'

'छोटी देवी कैसी है?' काक ने लीलादेवी का समाचार पूछा।

'मालूम नहीं।'

'उदा महेता क्या करते हैं?'

बाबरा ने गर्दन हिलाई।

'अब तू कौन है, बोल?'

'मैं? भूत।'

'भूत! तेरा मुंह नहीं बताता। बोल।' कहकर काक ने लकड़ी तनिक ज़ोर से पकड़ी।

'भील।'

'तो मुझे चौकी पार कराकर वंथली में ले चल।'

गर्दन हिलाकर बाबरा ने हाँ कहा।

'काक बाबरा पर से उठ गया और लकड़ी ज़ोरसे पकड़ ली। बाबरा विश्वासघात करता है या क्या, यह देखता हुआ काक खड़ा रहा, किन्तु बाबरा इतना अधिक घबरा गया था कि काक के सामने न देख सका।

काक घोड़े पर बैठा और बाबरा लगाम पकड़कर दौड़ने लगा। घोड़े से भी अधिक वेग से वह दौड़ रहा था। थोड़ी ही देर में वह चौकी के सामने जा पहुंचा। बाबरा ने दूर ही से प्राण सुखा देने वाली चीत्कार की। उसे सुनकर चौकीदार काँप उठे, और सिर के बल गिर पड़े। काक ने चौकी पर की।

'तुझे जाना हो तो जा। किन्तु तू कहां मिलेगा?'

'संध्या को श्मशान में और दिन को राजगढ़ के नीचे वाले चौक में। आप कौन हैं?'

'मैं? तू क्यों जानना चाहता है? किन्तु सुन, तुझे एक बात बताता हूँ।'

'कौनसी?'

लियां इधर-से-उधर, उधर-से-इधर होने लगीं। काक ने गले पर का दबाव कम कर दिया।

'तू कौन है?' काक ने पूछा और हाथ से गला दबाने की धमकी दी।

थोड़ी देर में राक्षस ने कहा—'भूत।'

'अच्छा! मैं पहले ही समझ गया था। अच्छी बात है। तू सबको दुःख देता है। अब मैं तेरे प्राण ही लूँगा।' कहकर काक उसकी [illegible] दबाने लगा।

'ना, ना।' कहकर बावरा ने सिर हिलाया। उसके मुखपर दया-याचना का भाव छा गया। उसकी आँखों में आग्रह था। उसकी वाणी में भी दया की याचना थी। काक हँसा।

'ना, ना क्या? नहीं, तो तुझे बांधकर महाराज के निकट ले जाऊँगा।'

'महाराज! ना,ना,मुझे मार डालेंगे।' तनिक घबराकर बावरे ने कहा।

'तुझे किसलिए मारेंगे?'

'तुमने मुझे पकड़ा इसी से।'

'वाह!' काक हँसा 'तेरे कारण महाराज [illegible] समझे जाते हैं।' [illegible] फिर आज मैं तुझे जीता छोड़ दूँगा और यह बात किसी से न कहूँगा। किन्तु मैं जो कहूँ उसका तू वचन दे, नहीं तो मेरा [illegible] जायगा।'

'कहिये! अपनी बात की सौगंध [illegible] वचन देता हूँ। तुम्हारा काम न [illegible] तो मैं [illegible] मुझे [illegible]। बस?'

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] काक ने पूछा।

[illegible]

'मुंजाल महेता और बड़ी देवी यहीं हैं।'

'हाँ।'

'छोटी देवी कैसी है ?' काक ने लीलादेवी का समाचार पूछा।

'मालूम नहीं।'

'उदा महेता क्या करते हैं ?'

बाबरा ने गर्दन हिलाई।

'अब तू कौन है, बोल ?'

'मैं ? भूत।'

'भूत ! तेरा मुंह नहीं बताता। बोल।' कहकर काक ने लकड़ी तनिक जोर से पकड़ी।

'भील।'

'तो मुझे चौकी पार कराकर वंथली में ले चल।'

गर्दन हिलाकर बाबरा ने हाँ कहा।

'काक बाबरा पर से उठ गया और लकड़ी ज़ोरसे पकड़ ली। बाबरा विश्वासघात करता है या क्या, यह देखता हुआ काक खड़ा रहा, किन्तु बाबरा इतना अधिक घबरा गया था कि काक के सामने न देख सका।

काक घोड़े पर बैठा और बाबरा लगाम पकड़कर दौड़ने लगा। घोड़े से भी अधिक वेग से वह दौड़ रहा था। थोड़ी ही देर में वह चौकी के सामने जा पहुंचा। बाबरा ने दूर ही से प्राण सुखा देने वाली चीत्कार की। उसे सुनकर चौकीदार काँप उठे, और सिर के बल गिर पड़े। काक ने चौकी पर की।

'तुझे जाना हो तो जा। किन्तु तू कहां मिलेगा ?'

'संध्या को श्मशान में और दिन को राजगढ़ के नीचे वाले चौक में। आप कौन हैं ?'

'मैं ? तू क्यों जानना चाहता है ? किन्तु सुन, तुझे एक बात बताता हूँ।'

'कौनसी ?'

'भड़ौंच का दुर्गपाल काक प्रभास से इस ओर आ रहा है। सम्भव है, दिन निकले आ पहुँचे। उसे पकड़कर महाराज के निकट ले जायगा तो महाराज प्रसन्न होंगे।'

बाबरा बोला, 'का—क ?' और हँसकर गर्दन हिलाने लगा।

'उसे तू पहचानता है क्या ?' काक ने तनिक सावधान होकर पूछा।

'नहीं। महाराज ने उसे पकड़ने की आज्ञा दी है।'

'उसे कौन लेने गया है।'

'आनन्द।'

'[illegible] पुत्र ?'

'हाँ।'

'अच्छा ?' काक ने कहा, 'तो जा आनन्द कर।' कहकर काक ने घोड़ा बढ़ा दिया। बाबरा चला गया।

बाबरा के [illegible] काक का ध्यान अपने घोड़े और उसके [illegible] की ओर गया। यह पुरुष कौन था, इसका निश्चय करने के लिए [illegible] अपना [illegible] के लिए [illegible] काक अपने [illegible] ध्यान में [illegible] लगा। [illegible] को [illegible] [illegible] [illegible] कुछ षड्यन्त्र कर [illegible] ! किन्तु इन सबमें [illegible] ? [illegible] ? [illegible] के [illegible] [illegible] ? [illegible] है ? यह [illegible]

[illegible]

हो सो हो किन्तु देवड़ी का गौरव अखंड रखने के लिए यदि प्राण भी देने पड़ें तो मुंह न मोड़ूंगा।

दूसरा विचार स्वयं का आया। जयदेव महाराज उसे पकड़ मंगवाने के लिए आतुर थे, उदा महेता की भी यही इच्छा थी, लीलादेवी उसकी सहायता की प्रतीक्षा कर रही थीं। यह सभी एक साथ उसके लिए एकाएक कैसे पागल हो गए? इन सभी को क्या विभिन्न प्रेरणायें हुईं? या किसी एक ही स्वार्थ से, या एक ही के कहने से सबको प्रेरणा हुई? ऐसी प्रेरणा कौन दे सकता है?

जयदेव महाराज का प्रताप वह स्पष्ट देख पा रहा था। उसे लगा मुंजाल का सूर्य अस्त हो रहा है। महाराज उदा का उपयोग कर रहे थे। भूत समझा जाने वाला बाबरा उसके प्रताप को अस्वाभाविक और दुःसह बना रहा था और जयदेव परमार जैसे विदेशी योद्धा को गुर्जर वीरों पर अपना क्रोध निकालने का अवसर मिल रहा था। काक मन-ही-मन विस्मित होगया। निःसत्व, किन्तु महत्वाकांक्षी दिखाई पड़ने वाले लड़के का कैसा विकास हो गया?

उसका घोड़ा खड़ा रह गया। प्रकाश फैल गया था। राजगढ़ के अस्तबल के सामने घोड़ा खड़ा हुआ। पास ही में एक बड़ी हवेली थी। वंथली की सुरक्षित स्थिति देखकर पट्टणी दण्डनायक परशुराम के प्रति उसे भान हुआ। एक योजन की दूरी पर ही युद्ध चल रहा था किन्तु यहाँ पाटण जैसी ही निर्भयता और शांति थी।

अस्तबल के बाहर ही एक व्यक्ति रगड़-रगड़कर जिह्वा साफ़ कर रहा था। काक उसके निकट जाकर घोड़े पर से उतर गया।

'यह आपका घोड़ा है?'

'यह तो जेवरा है। तू कहां से लाया?'

'मैं? जिसका यह घोड़ा है मैं उसीका आदमी हूं। बापू से कहाँ भेंट होगी?'

: ९ :

काक का राजगढ़ में प्रवेश

दिन निकलने लगा था अतः छिपकर राजगढ़ में प्रवेश करना काक को बहुत कठिन लगा। वह राजगढ़ की प्रदक्षिणा करने लगा। सभी द्वारों पर कड़ा पहरा था। सामने के द्वार से तो प्रवेश किया ही नहीं जा सकता था और फिर सुबह भी हो गई थी। समय अधिक व्यतीत हो जाय तो जाने क्या-क्या हो जाय। काक ने चारों ओर देखा। एक गली में से एक ब्राह्मण हाथ में पूजापात्र लेकर राजगढ़ के पिछले द्वार की ओर चला आ रहा था। काक को एक प्रेरणा हुई। वह शीघ्रता से उसकी ओर गया।

'काका! तनिक इधर आना।' कहकर वह ब्राह्मण को गली में ले गया।

'क्यों भाई?'

'मुझे पूजापात्र देना तो?'

'अरे छू जायगा,' वृद्ध ने कहा, 'तू कौन है? क्या काम है?'

'मुझे राजगढ़ में पूजा करने जाना है,' काक ने कहा। वह ब्राह्मण काक के धूल से भरे हुए विचित्र मुख और शस्त्रों को देखकर गर्दन हिलाने लगा, 'तू—'

'काका! अभी वहाँ न गया तो जयदेव महाराज मेरे प्राण ले लेंगे।'

'जयसिं—'

'हां। काम से मुझे रात बाहर चला जाना पड़ा। लौटने में देर हो गई। काका! तुम अपने लिए दूसरा पात्र ले आओ।' कहकर काक ने पूजा-पात्र पकड़ लिया। वह वृद्ध ब्राह्मण घबरा गया।

'अरे, छू दिया, मुझे स्नान करना पड़ेगा।'

'जाओ, जाकर स्नान कर आओ और यह लो पैसे—'

'किन्तु यह बलात्कार—' ब्राह्मण तनिक जोर से बोला।

काक ने उसकी ओर देखकर आँखें निकालीं।

'महाराज! चाहिए तो मेरी ओर से यह स्वर्ण-खंड दान कर देना। किन्तु बिना गड़बड़ किए चले जाओ। नहीं तो—' कहकर काक ने अपनी लकड़ी संभाली। बेचारे वृद्ध ब्राह्मण के होश जाते रहे। उसकी आँखें हथेली पर पड़े हुए स्वर्ण-खंड पर आजन्म सूम की-सी लालसा से टिकी हुई थीं। थोड़ी देर में काक ने पूजा-पात्र के पानी से मुँह धोया, वस्त्र और शस्त्र उतारे और चंदन-पात्र से त्रिपुंड धारण किया।

'महाराज! आपका नाम?'

'दयानाथ चतुर्वेदी।'

'अब जाओ।' काक बोला।

वह वृद्ध डरता-डरता चला गया और काक पूजा-पात्र लेकर राजगढ़ के एक छोटे द्वार के सामने गया। प्रहरी ऊंघ रहा था, किन्तु जैसे ही काक द्वार में घुसकर वेग से सीढ़ियाँ चढ़ने लगा वैसे ही उसकी नींद उड़ गई।

'ए महाराज! कौन हो?'

'मैं दयानाथ चतुर्वेदी का भतीजा हूं।' और आँख टेढ़ी करके वह सैनिक की शक्ति का अनुमान लगाने लगा।

'बुड्ढे को क्या हो गया है?'

'गाय ने मार दिया है।' कहकर काक जल्दी-जल्दी चढ़ने लगा।

'अरे खड़ा तो रह। दया काका के नए भतीजे का मुख तो देखूं।' कहकर सैनिक उसके पीछे दौड़कर पकड़ने आया। उसके निकट आने के पहले काक ने पूजा-पात्र ऊपर की सीढ़ी पर रख दिए और जैसे ही सैनिक एक सीढ़ी चढ़ा वैसे ही वह एक सीढ़ी उतर गया। सैनिक चिल्लाना चाहता था लेकिन उसके एक शब्द भी बोलने से पहले

काक ने उसका गला पकड़ लिया । उसके शब्द अनबोले ही रह गए ।

काक ने एक हाथ से कमर परका वस्त्र उतारा और सैनिक के मुँह में ठूंस दिया । निश्चेत-से हो गए सैनिक को उठाकर वह चढ़ गया और थोड़ी दूर पर एक खुली कोठरी में उसे डालकर द्वार बंद कर दिया । दूसरे ही क्षण पूजा पात्र हाथ में लेकर पुजारी ने महल में प्रवेश किया ।

काक ने चारों ओर देखा किंतु कोई न दीखा । कुछ दूर पर कोई स्त्री प्रभाती गा रही थी । वह उस ओर गया । एक दासी चक्की का 'गाला' साफ कर रही थी ।

'बहन !'

'कौन ?'

'मुझे छोटी देवी के पास ले जा तो । देवी का पूजा का समय हो गया है और मुझे मार्ग नहीं मालूम ।'

'पागल ! इस समय कहीं छोटी देवी पूजा करती होंगी ?'

'आज तो उनकी 'आखड़ी' है । उठ । मैं उनके गाँव का ब्राह्मण हूं । तुझे खबर नहीं । मुझे विशेष रूप से बुलाने भेजा है ।'

'अच्छा ! किन्तु मैं उधर कैसे जा सकती हूं । मैं ठहरी दासी ।'

'तू मुझे मार्ग तो दिखा । देख, तू मुझे वहाँ ले जायगी तो देवी तेरा उपकार माने बिना न रहेंगी ।'

उस स्त्री को कुछ रहस्य-सा दिखाई दिया । और लगा कि इस भेद से भव के संकट दूर हो सकते हैं । उसने तुरन्त उठकर हाथ साफ कर लिए ।

'मुख्य मार्ग से ले जाऊं या चोर-मार्ग से ?'

'चोर-मार्ग से ।'

थोड़ी देर में वे रनिवास की पिछली सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर आए । एक दासी खड़ी-खड़ी दातुन कर रही थी । वह नौकरानी उसके निकट गई ।

'देवी जाग गई ?'

'नहीं, क्यों ?'

'देवी का बुलाया हुआ ब्राह्मण आ गया है।'

'पागल हुई है ? इस समय देवी को ब्राह्मण की क्या आवश्यकता पड़ी ?' कहकर दासी तिरस्कार से देखने लगी।

'किन्तु महाराज—'

'मंगी,' काक ने धीरे-से कहा।

दासी भृगुकच्छ की और रानी की विश्वासपात्र थी। उसने काक की ओर देखा और उसे पुजारी के वेष में देखकर स्तब्ध होगई।

'का—'

'चुप रह। देवी को उठा। मुझे भेंट करनी है। और इस नौकरानी को पहचान ले। इसे देवी से पुरस्कार दिलवा देना।'

'तेरा नाम क्या है ?'

'देवी ? वह अपने पवीता के बारहठ जी हैं न, मैं उनकी नई 'जेखी' हूँ।' नौकरानी ने अपना सविस्तार परिचय दिया।

'ठीक, दुपहर को आना। महाराज ! आप इधर प्रतीक्षा कीजिए, देवी को उठाती हूं।'

काक तनिक खिसककर द्वार के पीछे खड़ा हो गया मंगी शीघ्र ही दौड़ती हुई आई—'पधारिए, देवी बुलाती हैं।' काक के मुख पर विचित्र मुस्कराहट दौड़ गई, वह भृगुकच्छ की जिस कुंअरी को जयसिंहदेव से ब्याहा था उसके पास गया।

: १० :

लीलादेवी की विपत्ति

एक स्वर्ण-खचित पलंग पर जयसिंहदेव महाराज की पटरानी लीलादेवी अंगड़ाई लेती हुई बैठी थी।

जम्बूसर के घेरे के समय जिस मृणाल कुँअरी से उसने भेंट की थी वह आज पहचानी न जा सकती थी। तब की तुलना में आज उसका शरीर भरा हुआ था और उसके मुख का आकर्षण भी बढ़ गया था। सोने और हीरों से उसका अंग-अंग चमक रहा था। चारों ओर पाटण की महारानी के अनुकूल वैभव दिखाई दे रहा था। उसके अंग के आभूषणों में अपना एक विशेष ही वैभव दिखाई पड़ता था।

इस समय उसके बाल बिखरे हुए थे, और जल्दी में ओढ़ी ओढ़नी उसकी शोभा को छिपाने का व्यर्थ प्रयत्न कर रही थी। आकस्मिकता से उसके होंठ खुले रह गए, उसके बारीक दाँतों का अपूर्व हार दिखाई पढ़ रहा था। उसके मुख और शरीर पर आलस दिखाई दे रहा था—मद का या नींद का यह समझ नहीं पड़ता था। ऊंघ के भार से आधी झुकी पलकें उसकी आँखों के तेज को छिपा रही थीं।

जैसे ही काक ने प्रवेश किया उसने आँखें तनिक खोलीं। काक ने एक दृष्टि डाली। लीलादेवी की आँखों में पहले जैसी ही स्थिरता और निश्चयात्मकता थी। काक सम्मान से द्वार के सामने खड़ा हो गया। उसे देखकर रानी की स्थिर आँखों में अस्थिरता आई और चली गई। उपेक्षा से ओढ़े गए वस्त्र के नीचे से दिखाई पड़ते पाँवों की उंगलियों की ओर उसने देखा—'काक ! तू आगया ?'

'हाँ ?' मुस्कराकर काक ने कहा, 'जीवित आ गया। दो-चार बार मेरे प्राण लेने का प्रयत्न हुआ अवश्य, किन्तु आप तो जानती ही हैं, मुझ जैसे को यमराज तक नहीं ले जाना चाहते। आज्ञा ? मुझे कैसे बुलाया ?'

'मंगी !' शांत और स्थिर स्वर में लीलादेवी ने कहा, 'तू बाहर प्रतीक्षा कर। किसी को आने मत देना।'

जैसे ही मंगी बाहर गई वैसे ही रानी घूमकर काक की ओर देखने लगी।

'तू ऐसे वेष में क्यों आया है ?'

'निश्चिंत होकर बता दूंगा। आपसे पहले भेंट करने के लिए कई को चकमा दिया है। उनमें से एक भी यदि अपने स्वामी के पास पहुँच जायगा तो हमें बात करने का समय नहीं मिलने का। सम्भव है मेरा शिरच्छेद कर दिया जाय।'

'तेरा शिरच्छेद ?' रानी ने भौंहों को तनिक टेढ़ी करके कहा।

'हाँ। मुझ पर महाराज और महाराज के मंत्री कुपित हैं।'

'यह होते हुए भी तू उनकी सेवा करता है ?' तिरस्कार से रानी ने कहा। उसकी आँखों में अधिक स्थिरता आगई।

'हां।' काक ने दृष्टि हटाकर नीचे देखा।

'क्यों ?'

'मुझे अपने ही ढंग से काम करना रुचता है। अब आपकी क्या आज्ञा है ?'

'आज्ञा !' लीलादेवी तिरस्कार से बोली, 'तू मेरी आज्ञा मानता कब है ? अब तेरी क्या आज्ञा है यही पूछने के लिए मैंने तुझे बुलाया है।' तिरस्कार-भरी वाणी में रानी ने कहा।

'मेरी आज्ञा ?' धीमे-से काकने कहा। आँधी के लक्षण स्पष्ट दिखाई पड़ने लगे।

'हाँ!' लीलावती ने इस प्रकार कहना आरम्भ किया मानो हिसाब लगा रही हो, 'तूने लाट छिनवाय',और पाटण मेरे सिर पर पटक दिया।'

'फिर भी सृष्टि के सर्वश्रेष्ठ सिंहासन पर विराजी हुई हैं।' काक ने बात पूरी की।

रानी ने काक की बात का कोई उत्तर नहीं दिया।

'मैं तो थक गई हूँ।'

'किससे ?'

'सबसे।' रानी पुन: ऐसी शांति से बोली मानो हिसाब लगा रही हो, 'तूने कहा था मैं यहाँ स्वामिनी बनूँगी; किन्तु यहाँ तो प्रत्येक व्यक्ति स्वामी है।'

काक को लगा कि रानी वास्तविक व्यथा प्रकट नहीं कर रही है, अतः उसने उसे जानने का निश्चय किया, 'पृथ्वी के स्वामी जयदेव महाराज आपके चरणों में हैं।'

'चुप रह,' रानी ने ऐसी निश्चयात्मक वाणी में कहा मानो तलवार से प्रहार कर रही हो, 'तेरा पृथ्वी का स्वामी मनुष्य नहीं है।'

'तो—'

रानी ने उंगली के पोर गिनने प्रारम्भ किए, 'वे देवता हैं—मनुष्य हैं—और पशु हैं। उन्हें मैं कैसे वश में कर सकती हूं ?'

काक ने व्यथा समझी। 'देवी !' वह कृत्रिम नम्रता से बोला,'इतनी क्यों निराश हो रही हो ? आप क्या नहीं कर सकतीं ?'

'मैंने सब कुछ किया। एक भी कला नहीं छोड़ी। किन्तु अब वे वश के बाहर होते जा रहे हैं।' युवती, फिर भी स्थिर चित्र की महत्वाकांक्षी, सुन्दरी ने अपनी व्यथा का वर्णन किया।

'आपको जो कहना हो शीघ्र कहिए क्योंकि समय निकला जा रहा है।' अधीर होकर काक बोला।

'तुझे उन्हें वश में करना होगा।' रानी ने कहा।

'किन्तु वे कैसे और क्यों वश में नहीं है यह तो कुछ बताइए।'

'ये राणकदेवी के पीछे पागल होगए हैं।'

'और इस पागलपन से इनकी रक्षा करनी है।'

'हाँ।'

'किस प्रकार ?' काक ने पूछा।

'चाहे जूनागढ़ जा, चाहे देवड़ी को वश में कर, चाहे महाराज को

सीधा कर। तूने मुझे यहां ब्याहा। अब युक्ति सोच निकालना भी तेरा ही काम है।'

इस स्त्री की भयंकर और पैनी दृष्टि देखकर काक को कँपकँपी छूट गई।

'देखता हूँ।'

'देखता हूं क्या ? मुझ पर कोईऔर पटरानी आई तो कुछ-न-कुछ हो जायगा।' अडिग शांति और निश्चय से लीलादेवी ने कहा, 'या तो तू नहीं रहेगा, या मैं न रहूँगी....या पाटण न रहेगा।' उसने अपना हाथ अपने पांव पर मारा मानो पाटण को तोड़ रही हो।

'देवी ! आपकी आज्ञा सिर-आंखों पर। जिस क्षण मेरे जीते-जी आपके सिर पर दूसरी पटरानी आएगी उसी क्षण प्राण दे दूंगा। और कुछ ?'

'किन्तु तू यह करेगा कैसे ?'

'इसकी चिन्ता आप न कीजिए, मैंने आपसे भेंट की है यह बात किसीसे न कहिएगा। मेरे वस्त्र और हथियार राजगढ़ की पिछली खिड़की वाली गली में पड़े हैं उन्हें मंगवा दीजिए।'

रानी ने मंगी को बुलाकर आज्ञा दी। रानी या काक दोनों में से कोई कुछ न बोला।

'काक ! मंजरी कैसे है ?' तनिक तिरस्कार से रानी ने पूछा।

'प्रसन्न है।'

'और बच्चे ?'

'आनन्द में हैं।'

'लाट के क्या हाल-चाल हैं ?'

'अभी यहां से एक मूर्ख को दुर्गपाल नियुक्त करके भेजा है, और रेवापाल प्रतीक्षा ही कर रहा है।'

'तब क्या होगा ?'

'जैसी भोलानाथ की इच्छा। किन्तु देवी, मुंजाल महेता क्या कर रहे हैं?'

'तांबूल चबाते हैं।'

'और उदा?'

'महाराज के लिए राणकदेवी लाने के लिए व्याकुल हैं। तेरा शत्रु है न?'

काक मुस्कराया—'मुझे उकसाने की आवश्यकता नहीं।'

रानी ने हँसकर काक की ओर अस्थिर दृष्टि से देखा।

'और यह जगदेव कौन है?'

'नया परमार योद्धा है। बहुत चतुर है। तुम सब पर धाक जमाने के लिए महाराज उसे लाए हैं।'

'अच्छा! और बाबरा भूत—'

रानी के मुख का रंग तनिक फीका पड़ गया, 'वह—'

'क्यों?'

'उसका नाम लेते ही तो मेरे अंग ठंडे हो जाते हैं। मंगी! क्या है?' रानी ने घूमकर पूछा।

'भटराज को खोजते हुए परमार यहाँ आए हैं।'

'कैसे जाना?'

'भटराज ने जिस प्रहरी को बन्द किया था उसीने परमार को कहा लगता है।'

'अच्छा,' शांति से रानी बोली, 'जाकर बाहर खड़ी रह। आए तो खड़ा रखना।' मंगी गई और रानी काक की ओर घूमी।

'घबराना मत। तू उस कमरे में जाकर वस्त्र पहन।'

'मेरी चिन्ता न कीजिए। मुझे इस परमार से परिचय भी करना है।'

'देवी!' मंगी ने द्वार खुला रखकर रानी से कहा, 'जगदेव परमार आपसे भेंट करना चाहते हैं।'

'आने दे।' कहकर रानी ने हाथ के संकेत से काक को अंदर भेजा

और पलंग से उतर कर लंहगा-कँचुकी ठीक किए, ओढ़नी सिर पर ठीक से रखी और पुनः गर्व से बैठ गई।

वह बैठी ही थी कि जगदेव परमार अंदर आया।

: ११ :

काक लुप्त हो गया

जगदेव अन्दर आया। लीलादेवी ने उस पर उपेक्षा-भरी दृष्टि डाल कर मुँह फेर लिया।

जगदेव शक्ति की मूर्ति लग रहा था। वह विशाल कद का था, उसकी छाती चौड़ी थी, उसके हाथ साधारण मनुष्य की जंघा के समान थे, उसका मुख बड़ा और भरा हुआ था। उसे तेजस्वी नहीं सुन्दर कहा जा सकता था। काली, सावधानी से संवारी हुई दाढ़ी उसके मुख की शोभा बढ़ा रही थी। उसकी कमर से खड्ग लटक रहा था, और कमरबन्ध में दो कटारें शोभा दे रही थीं।

उसे देखकर अडिग शौर्य का स्मरण हो आता था किन्तु उसकी आँख में कुछ अगम्य-सा था—वे तेजस्वी न थीं फिर भी लोग उनसे घबराते थे। उनमें सज्जनता न थी किन्तु हरामखोरी भी न थी। उनमें खलता न होते हुए भी कोई उनको देखकर विश्वास नहीं करता था। जयसिंहदेव महाराज के दरबार में उसे कोई समझ न पाता था, घबराते सभी थे। पट्टणी योद्धा उससे सम्बन्ध रखना नहीं चाहते थे। और महाराज और उसकी शक्ति के भय से कोई उससे शत्रुता भी नहीं करना चाहता था। जगदेव समझता था कि पट्टणियों को दबा रखने की शक्ति केवल उसीमें है। गर्वीले पट्टणी उसको तिरस्कार से देखते

और मात्र उतना ही मान देते जितने से महाराज को क्रोध न हो। गर्विष्ठ, मुमुक्षु और त्रिदेशी के बीच जितना भाईचारा हो सकता है उससे अधिक पट्टणियों और जगदेव के बीच में न था।

किन्तु महाराज के महामन्त्री और अत्यन्त निकट के सम्बन्धी तो अपना तिरस्कार छिपाने का प्रयत्न तक नहीं करते थे। जगदेव भी जहां तक बनता उनके संसर्ग में न आता था। उदा के साथ बहुत नम्रता से और परशुराम के साथ सम्मान से व्यवहार करता था। रानियों के साथ वह कोई सम्बन्ध न रखता था और जहाँ तक बनता रानियां भी उससे कोई सम्बन्ध न रखती थीं। एक लीलादेवी अवश्य उससे शांत तिरस्कार से व्यवहार करती थी। जगदेव के मुख पर से इतना तो स्पष्ट हो रहा था कि इस समय यहां आना उसे अच्छा न लग रहा था। उसके स्थूल मुख पर थोड़े-बहुत क्षोभ के चिह्न थे, और गले में से शब्द निकालने में भी उसे कष्ट हो रहा था। किन्तु यह दशा उसने दाढ़ी में हाथ फेरकर छिपा ली।

'देवी! सेवक का दण्डवत् प्रणाम।' त्रिदेशी उच्चारण में जगदेव ने रोम-रोम से नम्रता टपकाते हुए कहा।

रानी ने गर्दन हिलाई, और शांत, निश्चित वाणी में पूछा—'क्यों जगदेव ?'

'देवी! महाराजाधिराज की आज्ञा है कि किसी अपरिचित व्यक्ति को महल के अन्दर न घुसने दिया जाय।' जगदेव ने खंखारकर कहा।

'तो ?' तिरस्कार से लीलादेवी ने कहा।

'आज कोई एक व्यक्ति घुसकर आपके प्रकोष्ठ की ओर आया है ऐसी मुझे सूचना मिली है।'

रानी ने अपना मुँह जगदेव की ओर किया। उसकी आंखों में हृदय-भेदी निर्दय तीक्ष्णता थी। पल-भर तक वह देखती रही, उसने अन्दर-ही-अन्दर घबराते हुए भी बाहर से साहस बनाए रखने वाले योद्धा को अपने तिरस्कार का पूरा-पूरा अनुभव करवा दिया।

'इससे मुझे क्या ?'

'वह कौन है और कैसे आया यह सब जानकारी मुझे महाराज को देनी है। देवी ! क्षमा कीजिएगा, मुझे महाराज की आज्ञा का पालन करना ही चाहिए। नहीं तो आप तो जानती हैं मेरी क्या गति होगी।'

रानी ने तिरस्कार से मुंह फेर लिया।

'वह कौन है ?' जगदेव ने धीमे-से पूछा।

'परमार !' रानी ने बिना क्रोधित हुए ही कटाक्ष किया, 'तुम महारानियों की तलाशी लेने की ही नौकरी करते हो ?' रानी ने प्रश्न इस प्रकार पूछा मानो वह नितान्त स्वाभाविक और सामान्य हो। किंतु जगदेव को अपमान का गहरा घाव लगा। उसके होंठ कुछ कांपे, किंतु तुरन्त उसने स्थिर होकर हाथ जोड़े।

'महारानी ! मैं तो आज्ञापालन करने वाला दास हूँ।'

'मैं जानती हूं।' कहकर लीलादेवी ने तिरस्कार से अंगड़ाई ली, 'कैसा आदमी था वह ?'

'देवी ! ब्राह्मण के वेष में इधर घुसा था।'

'हूं—और किस वेष में वापस निकला ?'

जगदेव को लगा कि रानी उसकी हँसी उड़ा रही है।

'देवी ! अभी तो वह व्यक्ति यहीं है।'

'क्या ?' लीलादेवी ने चमककर पूछा। उसने जगदेव की ओर देखा और उस योद्धा के मुख पर मुस्कराहट देखकर वह घबराई।

'अभी उसके पूजा-पात्र यहीं पड़े हैं।' कहकर जगदेव ने मुस्कराकर भूमि पर रखे हुए पात्रों की ओर संकेत किया।

'जगदेव !' शांति से लीलादेवी बोली। उसकी वाणी में भयंकर तिरस्कार था, 'पाटण की महारानी के साथ किस प्रकार के विवेक से काम लेना चाहिए यह तुझे नहीं मालूम, यह सच है, मुझे तुझे विवेक सिखाना पड़ेगा। जा ! बाहर जाकर मंगी को भेज। मुझे केश सँवारने हैं।'

'किन्तु देवी—'

'परमार ! जो मैंने कहा वह नहीं सुना ?' रानी ने गर्व से पूछा। जगदेव को यह प्रश्न पदाघात-सा लगा।

'हाँ।'

रानी ने गर्दन हिलाकर उसे बाहर जाने की आज्ञा दी। जगदेव को और कुछ सूझा नहीं। वह नमस्कार करके बाहर चला गया। बाहर निकलते ही उसके मुख पर क्रोध छा गया किन्तु मंगी को आता हुआ देखकर उसका मुख जैसा था वैसा ही शांत हो गया।

'मंगी ! इन पात्रों को छिपा दे।'

'जैसी देवी की इच्छा।'

रानी मंगी की ओर देखे बिना शीघ्रता से अन्दर गई और द्वार बन्द कर लिए। दूसरे ही क्षण उसकी चीत्कार सुनाई पड़ी। मंगी के प्राण सूख गए। लीलादेवी जैसी शांत और भावहीन स्त्री का इस प्रकार चीत्कार कर उठना इतना अस्वाभाविक था कि वह घबरा गई। वह दौड़कर अंदर गई। रानी कुछ अस्थिर थी और उसकी आंखों में घबराहट थी। प्रकोष्ठ निर्जन था।

'भटजी —'

'कौन जाने कहाँ गया।' रानी ने कहा।

'इस द्वार से तो बाहर नहीं गए ?' कहकर मंगी एक दूसरे द्वार के सामने जाकर उसे ध्यान से देखने लगी। उसका ताला उस ओर था, किंतु द्वार बन्द दिखाई पड़ा।

'पागल ! यह द्वार तो कभी खुलता नहीं। इसकी कुंजी ही कहां है ?'

'तो फिर ?'

'देवी—देवी ! ओ, देवी !' मंगी चीखी।

'क्या है ?' कठोर होकर लीलादेवी ने पूछा।

'अरे रे—भटजी—गंगानाथ भगवान् भला करें।' कहकर मंगी ने

आंखों पर हाथ रख लिया।

रानी नहीं समझी। उसने मंगी का कान पकड़कर खींचा—'क्या है ?'

'देवी—वह तो—बावरा है।'

पल-भर रानी मौन रही। उसे मंगी की बात सच्ची लगी, उसके सुन्दर होंठ फड़कते रहे; उसकी आंखें स्थिर और गहन हो गईं; मोहक फीकापन उसके मुख पर छा गया। रानी के कुछ बोलने के पहले ही बाहर के प्रकोष्ठ में किसी के दौड़ने की आवाज़ आई। रानी द्वार की ओर मुड़ी।

द्वार खोलकर एक सोलह-सत्रह वर्ष की कन्या ने नाचते-कूदते प्रवेश किया। उसकी ओढ़नी का ठिकाना न था। उसके मुख पर हास्य उमड़ा पड़ता था। उस हास्य के कारण उसके मुख पर मोहक लालिमा छा रही थी। उसकी चंचल आंखों में आंसू थे। उसके हास्य की प्रतिध्वनि सारे प्रकोष्ठ में हो रही थी। वह रानी की ओर आई और एक उंगली ऊँची करके कुछ कहा। उसके हंसने के कारण एक अक्षर भी समझ में नहीं आया।

'समरथ !' रानी ने कठोरता से कहा।

'मां !' बड़ी कठिनाई से वह कन्या बोली, किन्तु हंसी आ जाने पर वह पांव लम्बे कर भूमि पर बैठ गई, और एक हाथ भूमि पर रखकर दूसरे हाथ से पेट पकड़ लिया।

'समरथ देवी ! क्या है ?' मंगी ने पूछा।

उत्तर में समर्थ ने पुनः रानी की ओर संकेत किया, किन्तु पुनः हंसी आ जाने के कारण वह न बोल सकी।

'समरथ ! पागल हुई है ?' लीलादेवी के प्राण अधीर हो गए थे। उसने मंगी की ओर देखा और कहा, 'मंगी, चल, मुझे महेताजी से भेंट करने जाना है।'

लीलादेवी और मंगी वहाँ से चले गए। समर्थ अकेली हंसती

रही। थोड़ी देर में उसकी हंसी रुकी और वह खड़ी हो गई।

'कैसी घबरा गईं? माँ अब पकड़ में आईं।' वह पुनः हंसने और चारों ओर कूदने लगी—'माँ कैसी पकड़ाईं? और अब महेता आने वाले हैं।'

समर्थ ने हंसकर धरती पर पांव पटका, पुनः थोड़ी हंसी, और नीचे झुककर ताली दे-देकर कुछ गाने लगी। वह थोड़ी-सी कूदी और कमर से तीनेक कुंजियों का झुमका निकाला।

'मां समझीं उनका ब्राह्मण लुप्त हो गया है।' फिर उसने ही-ही हंसकर मंगी ने जिसे न खुलने योग्य मान लिया था उस द्वार को धक्का देकर खोल दिया। उस ओर न साँकल चढ़ी हुई थी न ताला ही लगा हुआ था। समर्थ उस ओर गई और सांकल चढ़ाकर द्वार पर ताला लगा दिया।

: १२ :

समर्थ

काक अन्दर जाकर अपनी भूल पर पश्चात्ताप करने लगा। लीला अपने पद से हटा दी जाने वाली थी; जयसिंहदेव उस पर कुपित थे; और महल में घुसने की कड़ी मनाही थी। ऐसे समय और इस प्रकार महल में घुसकर वह लीलादेवी से मिला इससे अवश्य उसे हानि पहुंचेगी—ऐसा उसे लगा। इस भूल को सुधारने का विचार करके वह उस कमरे से बाहर निकलने के लिए द्वार खोजने के हेतु दूसरे द्वार की ओर गया। द्वार को धकेलकर देखा तो खुला लगा अतः उसने

उसे खोल दिया। वह एक निर्जन कोठरी में आया। द्वार का ताला खोलकर किसीने वहीं रख दिया था।

काक ने सावधानी से द्वार बंद किया, एकाएक एक कन्या सामने आकर खड़ी हो गई। वह सुन्दर थी और उसे देखकर हँसने लगी।

'चोर पकड़ाया।' वह हँसने लगी।

'धीरे।' काक ने नाक पर उंगली रखी।

'तू कौन है?' उस लड़की ने आँखें नचाकर पूछा।

'अरे, पर धीरे तो बोल। रानी सुन लेगी।'

'हा, हा, हा!' कन्या हँसी, 'तू छिपकर भाग आया। अच्छा हुआ कि मैंने द्वार खुला छोड़ दिया। मालूम है, इसकी कुंजी केवल मेरे पास है? तू कौन है?'

'मैं लाट का ब्राह्मण हूं। और देवी का आश्रित हूँ।'

'हा, हा, हा! और छिपकर भागा जा रहा है?' कन्या हँसी, और फिर एकदम गंभीर हो गई, 'तू लाट का है?'

'हाँ।'

'काक भटराज को जानता है?'

'भलीभाँति। क्यों?'

'वह सोमनाथ पाटण आया है!'

काक सावधान हो गया। 'हाँ, आया होगा। तुम्हें क्या काम है?'

'वह पकड़ाया कि नहीं कुछ मालूम है?' लड़की ने पूछा।

'जब वाहड़ महेता गए हैं तो बिना पकड़े कहीं रह सकते हैं?' काक ने कहा।

कन्या गद्‌गद् हो गई और उसके गाल लज्जा से लाल हो गए। अनजाने ही हर्ष से उसके दोनों हाथ मिल गए।

'तुझे विश्वास है?' लड़की ने पूछा।

'हाँ बहन। तेरी इच्छा सफल होगी। अब मुझे जाने दे। जयदेव महाराज कहाँ मिलेंगे?'

'बाहर निकलकर दाएं हाथ जाना, वहाँ जगदेव परमार मिलेंगे। उनसे कहना वे ले जायंगे।'

'बहन! तू कौन है?'

'मैं दंडनायक परशुराम की पुत्री समर्थ हूं।'

'सज्जन महेता की पौत्री।'

'बापरे! तू तो सभी से परिचित है।'

'हाँ।' कहकर जल्दी-जल्दी काक यहाँ से निकला। कन्या ने द्वार पर ताला लगाया और कुंजी कमर में छिपा ली। 'ठीक है, अब देवी मुझे चिढ़ायंगी तो मैं भी उन्हें चिढ़ा दूंगी।' कहकर वह तनिक उछली। कुछ देर के लिए वह विचार में पड़ी और फिर एकदम हँस-हँसकर गाने लगी।

काक उस कमरे से निकलकर एक कोठरी में आया और वहाँ से जल्दी-जल्दी दाएं हाथ की ओर गया। दो कोठरियाँ पार करने के पश्चात् उसे दो सशस्त्र योद्धा दिखाई पड़े। वह उनके निकट गया।

'महाराज अंदर हैं?'

दोनों योद्धा गुजराती नहीं लग रहे थे। एक सामान्य ब्राह्मण को इस प्रकार आते देख वे तनिक क्रोधित हो गए।

'हाँ, क्यों?'

'कुछ नहीं, मुझे भेंट करनी है।' कहकर काक अन्दर जाने लगा। यह धृष्टता देखकर वे सैनिक चकित हो गए और द्वार के सामने भाले अड़ा दिए, 'परमार को आने दे।'

काक को लगा कि अन्दर कोई बैठा है अतः वह जोर से बोला—'मुझे क्यों रोकते हो?' काक की वाणी में गर्व और सत्ता दोनों थे। 'मुझे, लाट के दुर्गपाल भटराज काक को क्या समझते हो?' काक का नाम सुनकर वे सैनिक तनिक दूर खिसक गए।

'अन्नदाता! यह तो मैं काक!' कहकर काक इस प्रकार अन्दर चला गया मानो महाराज ने उसे बुलाया हो और वह उसका उत्तर दे रहा

हो। किन्तु अन्दर जाना इतना सहज न था। एक दूसरे सशस्त्र पुरुष ने उसका हाथ पकड़ा और घरघराती वाणी में पूछा, 'कौन है ? क्यों गड़बड़ करता है ?'

काकने ऊपर देखा। सामने खड़ा पुरुष धूलसे लथपथ था और उसके एक हाथ पर पट्टी बंधी हुई थी। उसकी आँखें लाल हो रही थीं। काक ने वह छोटा किन्तु सशक्त शरीर, झुकी हुई किन्तु प्रतापी नासिका,श्रांत किन्तु हठी मुख तुरन्त पहचान लिया।

'दंडनायक महाराज को घणीखम्मा।' काक ने विनोद से कहा। 'विजय की धुन में लोग पुराने मित्रों को भी भूल जाते हैं। कैसा संसार है ?'

'कौन ?' तनिक चकित होकर सज्जन मंत्री के महारथी पुत्र परशुराम ने कहा।

'काक।'

'कौन भृगुकच्छ का दुर्गपाल ? ओ हो हो ! कैसे हो ?' कहता हुआ परशुराम काक से लिपट गया।

'अच्छा हूं। जीता-जागता यहाँ तक आ गया हूं। महाराज मिलेंगे।

'तुझ पर तनिक क्रोधित हैं।'

'उसकी चिन्ता नहीं। अन्दर हैं न ?'

'हाँ। अभी-अभी मंदरड़ा के निकट सोरठियों को हमने पीछे धकेल दिया है, यही सूचना देने के लिए आया था।'

'परशुराम जी ! आप न होते तो पाटण का जाने क्या होता ?'

परशुराम खड़खड़ हँस दिया, 'काक ! मैं दरबारी नहीं अतः चापलूसी पचती नहीं। लेकिन तू न होता तो पाटण ने लाट कभी को खो दी होती।'

'अरे हाँ, भूला। मैं फिर मिलूंगा। मुझे आवश्यक काम है।'

'जा ! विजय कर। इस समय महाराजका मन भी कुछ प्रसन्न है।'

काक नमस्कार करके अंदर गया। उसका पगरव सुनकर अंदर

के प्रकोष्ठ से एक सत्ता-भरा स्वर सुनाई पड़ा, 'कौन, जगदेव ?'

काक ने स्वर पहचान लिया और दौड़कर अंदर गया 'नहीं अन्नदाता ! ये तो मैं हूँ—काक।'

गद्दी पर एक व्यक्ति आरसी में देखकर मूँछें मरोड़ता हुआ बैठा था। एक-दो नाए कंघी लेकर खड़े थे।

काक ने साष्टांग प्रणाम किया।

: १३ :

राजाधिराज

एक साधारण-सा युवक गद्दी पर लेटा हुआ था। उसका कद बड़ा और छटादार था, उसका शरीर भरा हुआ और सशक्त था, उसके चौड़े कंधे और स्नायुशील भुजाएँ उसके शारीरिक बल की साक्षी दे रही थीं।

उसने श्वेत धोती पहन रखी थी और कंधों पर सुनहरी दुपट्टा डाल रखा था। झीने दुपट्टे में से उसके गले में पड़े हुए आभूषण और हाथ के बाजूबंध चमक रहे थे, उसका रंग गेहुँआ था। मात्र कलाई के आस-पास उसके हाथ साँवले थे। उसका मुख गोल और भरा हुआ था, और छोटी और सुन्दर दाढ़ी के मोहक केश सिर पर के लंबे और घुँघराले केशों में मिलकर उसके मुख को भव्य बना रहे थे। उसकी नासिका लंबी और पतली थी—महत्वाकांक्षा प्रकट कर रही थी। होंठ सुघड़ और पतले थे—विलास में रुचि की सूचना दे रहे थे। आँखें विशाल, लंबी और तेजस्वी थीं, उनसे आवेश टपक रहा था। और उसके मुख पर सुपुप्त सिंह के समान प्रताप सुपुप्त

पड़ा हुआ था—ऐसा कि उसकी स्थिरता ही सामने वाले को कंप
ती थी।

जयसिंहदेव महाराज ने आँखें तनिक अधिक खोलकर देखा। इस प्रकार किसी का आना उन्हें अच्छा नहीं लगता था, यह उनकी दृष्टि से स्पष्ट लग रहा था।

'कौन ?' कुछ कठोर होकर उन्होंने पूछा।

'देव ! आपने जिसे बुलाया था वही काक।' काक उठा, घुटने बल झुका और हाथ जोड़कर बोला।

'काक ! तू ?'

'हाँ देव ! आपका आज्ञा-पत्र मिलते ही तुरंत चला आया, अन्नदाता ! प्रसन्न तो हैं ?' काक ने पूछा।

महाराज को यह मित्रता अच्छी नहीं लगी यह काक ने स्प देख लिया। वह मुस्करा दिया।

'तू सीधा चला आया ?' आश्चर्यचकित होकर जयदेव ने कहा।

'आपकी आज्ञा हो तो कैसे रुका जा सकता है ?'

'तुझे कोई मिला ?'

'नहीं देव ! शत्रु का देश था अतः मैं बहुत सावधान था। कि कृपानाथ ! आप प्रसन्न तो हैं ?' दंडनायक ने मुझसे मंदरड़ा के विष में अभी-अभी कहा था।'

'हाँ, यह अच्छा हुआ।' जयदेव महाराज ने गर्व से कहा।

'और लीलादेवी प्रसन्न हैं न ?' और बड़ी देवी ? मुंजाल मह तो आनन्द में ही होंगे ?'

जयदेव की आँखों में थोड़ी-सी चमक आई। उसे यह प्रश्नाव अच्छी न लगी।

'काक ! सब प्रसन्न हैं। लाट की क्या दशा है ?'

'मैं आया तब तक तो सब शांत था। अब तो आम्रभट महेता प करते हैं उसी पर निर्भर करता है।'

'क्यों ?'

'बहुत कच्चा है। इस समय लाट को शांत रखना छोटे बच्चों का खेल नहीं।'

'हूँ हूँ !' तिरस्कार से महाराज ने कहा,'किन्तु तू इस वेष में क्यों ?'

'देव !' काक मुस्कराया,'आपका आज्ञा-पत्र मिला तो मुझे लगा कि आपको सचमुच मेरी आवश्यकता है।आपके और मेरे शत्रु कुछ कम हैं ? अतः इस वेषके सिवा और कोई चारा न था। अन्नदाता ! लीलादेवी का विवाह कराने आया था उसके पश्चात् आज आपके दर्शन कर रहा हूँ। किन्तु महाराज, आपकी कीर्ति और आपका प्रताप देखकर तो मैं दंग रह गया। पन्द्रह वर्ष पूर्व मैंने जो कहा था वही हुआ न ?'

'क्या ?'

'आपका जन्म विक्रम राजा की कीर्ति को भी मंद करने के लिए हुआ है।'

जयदेव ने प्रसन्न होकर दाढ़ी पर हाथ फेरा। वे तकिए पर लेट गए और काक पर एक अमृत-भरी दृष्टि डाली।

'काक ! तू पाटण आकर क्यों नहीं रहता ?'

'देव ! आप क्या नहीं जानते ? आपके दरबारियों में खलबली मच जायगी। स्मरण नहीं, पन्द्रह वर्ष पहले मुझे चला जाना पड़ा था ?'

'काक ! तुझसे मुझे काम है।' जयदेव ने कहा।

'आपकी आज्ञा हुई और मैं आ खड़ा हुआ।'

'मैं इन सबसे थक गया हूं।' सीधे होकर कुछ तिरस्कार से राजा ने कहा, 'मुरार ! बाहर जा।' कंघी लेकर खड़े हुए व्यक्ति से जयदेव ने कहा। मुरार बाहर चला गया। 'काक ! मैं इस जूनागढ़ के घेरे से थक गया हूं।' राजा ने काक पर तीक्ष्ण दृष्टि टिकाकर कहा।

काक का मुख भावहीन था। 'देव ! तो, दो मार्ग हैं।'

'कौनसे ?'

'या तो जूनागढ़ पर विजय प्राप्त कीजिए या छोड़ दीजिए।'

'मैं—जयसिंहदेव जूनागढ़ का घेरा हटा लूं ?'

'तो उस पर विजय प्राप्त करिए।' काक ने शांति से कहा।

जयसिंहदेव ने अधीर होकर हाथ पटका, 'किन्तु वह जीता नहीं जा रहा है, और मेरी कीर्ति को कलंक लग रहा है।'

'आपकी आज्ञा की देर है।'

'क्या ?' कुछ हर्षित होकर जयदेव बोला।

'आपको कितने दिनों में जूनागढ़ लेना है ?'

'कितने में लिया जा सकेगा ?'

'जितने आप कहें।'

'और यदि नहीं लिया तो ?'

'उसके पहले या तो जूनागढ़ नहीं या काक नहीं।'

जयदेव महाराज प्रसन्न होगए। काक दृष्टि नीचे किये यह सब परिवर्तन देखता रहा।

'धन्य हो ! तेरे समान एक भी नहीं है।'

'यह तो आप कभी से जानते हैं।'

जयदेव का मन प्रसन्न था। वे हँसे। 'काक ! तेरी बोली तो वैसी-की-वैसी ही है।'

'देव ! मुझमें जब परिवर्त्तन नहीं होता तो मेरी बोली में कैसे हो सकता है ?'

जयदेव हँसा। चाटुकारिता से भरे दरबारी वातावरण में इस समय यह साहस उसे आकर्षक लगा। इतने में मुरार आया।

'अन्नदाता ! बाहर परमार और उदामहेता आये हैं।'

राजा ने काक की ओर देखा। काक मुस्कराया, 'तू परमार को पहचानता है ?'

'वही आपका विदेशी दास ?'

जयदेव हँसा—'फिर तेरी जिह्वा सीधी नहीं रहती ! यह तो मेरा विश्वासपात्र है।'

'उससे क्या सम्मानित हो गया ? देव ! आपको हंसी अच्छी लगती हो तो मुझे वस्त्र परिवर्त्तन कर लेने दीजिए।'

'हां ! यह ठीक है। मुरार, जा इसे वस्त्र दे।'

'जो आज्ञा।'

काक उठा और मुरार के साथ एक द्वार से बाहर चला गया।

जयदेव मन-ही-मन हँसे। वर्षों से परशुराम सोरठियों के गढ़ को घेरे हुए पड़ा था; और सोरठ का अधिकांश भाग पाटण के आधीन था, किन्तु जूनागढ़ के गढ़ को तोड़ना कोई खेल न था। तीन बार जयसिंहदेव महाराज स्वयं ने धावा बोला था; किन्तु वे जूनागढ़ का एक कंकड़ भी न हिला सके। इस समय परशुराम, त्रिभुवनपाल सोलंकी और मुरारपाल मंडलेश्वर, राज्य के इन अग्रगण्य महारथियों ने रा' को चारों ओर से घेर रखा था; फिर भी गिरनार का रा' अपनी स्वतन्त्रता का झण्डा उठाये हुए उनका उपहास कर रहा था।

अब जयसिंहदेव का धैर्य टूट गया था। और ऊपर से न जाने कैसे देवड़ी के प्रति उनका प्रेम पुनः जाग पड़ा था। वर्षों पहले खेंगार द्वारा किया हुआ अपमान उन्हें चुभ रहा था। और जब तक रा' न झुकेगा तब तक उनकी कीर्ति में कलङ्क बना रहेगा यही विचार उन्हें रात-दिन जलाया करता था।

स्वयं युद्ध में पीछे हट जायं, ऐसी बात न थी। किन्तु युद्ध में जाकर पीछे हट जायं तो बड़ी कठिनाई से अर्जित की हुई कीर्त्ति और महत्ता नष्ट हो जाते हैं—यह बात भी वे न भूले थे। वे बड़ी तैयारी के साथ एक ऐसा धावा बोलना चाहते थे कि जूनागढ़ का एक पत्थर भी न बच सके। इसीके लिए खंभात से सेना लेकर उदामहेता को, थोड़ी-बहुत सेना लेकर मालवे से दादाक को, और भृगुकच्छ से काक को बुलाया था। त्रिभुवनपाल, परशुराम, मुरारपाल, उदा, दादाक और काक इन छः, सहस्त्र युद्धों के प्रचण्ड खिलाड़ियों के नेतृत्व में धावा बोलने का उन्होंने निश्चय किया था। यम के सैनिकों के समान ये

दुर्जय योद्धा खेंगार तो क्या गिरनार को भी झुका सकते थे ऐसा उनका विचार था।

दादाक अभी आया न था। जयदेव की चलती तो काक को न बुलाता। दूर पड़ा हुआ काक इन योद्धाओं के साथ शोभा नहीं देता ऐसा कुछ विचार उनके मन में था। किन्तु त्रिभुवनपाल और मुरारपाल दोनों ने काक को बुला भेजने की बात कही थी। और जब जयदेव ने मुंजाल महेता को भी शस्त्र से सज्जित होने के लिए कहा तो महा आमात्य हँस पड़े।

'जयदेव! मैं आऊंगा किन्तु वह आपको शोभा नहीं देगा। आपने बहुत कीर्ति अर्जित की है; किन्तु इसके बिना और सब व्यर्थ है। मूलराजदेव ने रा' को झुकाया, आपके लिए अभी यह करना शेष है। आवश्यकता होगी तो रण चढ़ूंगा। निश्चिन्त रहिएगा। वृद्ध तो हो गया हूँ, फिर भी अभी चलेगा।' कहकर मन्त्री ने अपने वृद्ध किन्तु सशक्त बाहुओं पर दृष्टि डाली।

जयदेव बड़ा गर्वीला था किन्तु मुंजाल महेता के सामने बच्चा बन जाता था। राजा अपने को छोटा न समझ ले इससे विचक्षण मन्त्री सब ओर ध्यान रखते हुए भी एकांतवासी थे। जयदेव यह उदारता समझता था। उसने जाने की आज्ञा चाही।

'महाराज!' मन्त्री ने निरपेक्षभाव से कहा, 'एक काम करिएगा तो मेरी आवश्यकता नहीं पड़ेगी।'

'क्या?'

'भृगुकच्छ से दुर्गपाल को बुलाकर साथ ले लीजिएगा।'

'किसे, काक को?'

'हां।'

दूसरे ही दिन आम्रभट आज्ञा-पत्र लेकर भृगुकच्छ के लिए निकला।

जयदेव दूर पड़े हुए काक को अपने तेज से चकाचौंध कर देना चाहते थे, अपने प्रताप से उसे दबाए रखना चाहते थे। यह उद्देश्य पूरा

नहीं हुआ यह राजा को अच्छा नहीं लगा। किन्तु काक के साहस, शौर्य और चतुराई की उन्हें आवश्यकता थी, और उनका सम्मान करने जितनी शक्ति भी उनमें थी।

: १४ :

वाग्भट का कैदी

गर्व-भरी उपेक्षा से जयदेव पुनः गद्दी पर लेट गए। सिर के केशों को हाथ से सँवारते हुए वे कुछ विचार करने लगे।

विचार करते-करते वर्षों पहले देखी कलाड़ा की देवड़ी का मुख याद आया। जयदेव के मुख पर से उदासी जाती रही और रसिकता छा गई। उनकी विशाल आँखों में आतुरता दिखाई पड़ने लगी। काक के साथ वार्तालाप से उठे विचारों ने दूसरी ही दिशा पकड़ी। वे मन-ही-मन बड़बड़ाए।

'जूनागढ़ लूँ, रा'को मारूँ यह सब ठीक है,किन्तु उदा ठीक कहता है—रा' के मरने पर कहीं देवड़ी मिल सकती है? राज्य-विहीन हुई देवड़ी मुझे शत्रु तो समझेगी ही किन्तु देवड़ी को प्राप्त करना ही होगा।' जयदेव की भवें तन गईं। उनकी आँखों में रोष प्रकट हुआ। 'क्यों नहीं प्राप्त होगी? क्या बात है? उदा इतना कच्चा नहीं। वह जानता है कि मेरी इच्छा सफल हो जाय तो उसका बेड़ा पार हो जाय। और वह चतुर भी है। यदि समझौते से ही देवड़ी प्राप्त हो जाय तो भले रा' कर देकर जूनागढ़ रखे। किन्तु इस विषय में मुझे इन खड्गधारियों का विश्वास नहीं। देखूँ, उदा क्या समाचार लाया है।'

'अन्नदाता, घणीखम्मा !' जगदेव का स्वर सुनाई पड़ा।

'जगदेव !' रोष से जयदेव महाराज बोले।

'दूसरा कौन है ? उदा मेहता ! आओ !' जगदेव और उदा महेता आए।

स्वच्छ और सुन्दर वस्त्रों में, सादे किन्तु बहुमूल्य अलंकारों से उदा महेता सुसज्जित थे। उनकी लाल पगड़ी का रंग वैसा ही था जैसा वे यौवन-काल में पहनते थे। सब उनकी ओर आकर्षित होजाते थे। वे पहले के समान ही हँसमुख थे। उनकी मूछों में काले केश बहुत कम रह गए थे किन्तु फिर भी उनके मुख पर बुढ़ापे की रेखाएँ अधिक न थीं। उनकी दृष्टि का पैनापन कुछ अधिक तीखा हो गया लगता था। कभी-कभी तो उनमें भलमनसाहत भी दिखाई पड़ती थी। यह बढ़ती हुई उम्र के सौजन्य से था या अभ्यास द्वारा प्राप्त की गई सरलता के कारण, यह निश्चय करना कठिन था।

यह अनुभवी दरबारी गर्व से चलता था। इसके संपूर्ण व्यक्तित्व पर उसके स्वभाव और जीवनचर्या की छाप थी। शांत और स्थिर बुद्धि—न डिगे न छूटे ऐसा धैर्य—न चूके न विपत्ति में मुँह मोड़े ऐसा शौर्य—न कभी समाप्त हो और न कभी अम्ल हो ऐसी मिठास—लगन से प्राप्त किये हुए इन गुणों का प्रतिबिंब क्षण-क्षण पर उसकी चाल में, बोली में और विचारों में पड़ता था। उसके शृंगार में,उसकी बोली में और उसके व्यवहार में कुछ ऐसी विशेषता थी कि एक क्षण के लिए भी कोई यह न भूल सकता था कि वह जैनधर्म का महास्तंभ, श्रावक-शिरोमणि अतुल धन का धनी, और अपार सत्ता का अधिकारी है।

'हाँ देव, आ ही गया।' मंत्री का शांत और मधुर स्वर सुनाई पड़ा। इस स्वर में मोहकता थी, किंतु कहीं कुछ कमी अवश्य है ऐसा सुननेवाला तुरंत समझ जाता था।

'जगदेव, तू कहाँ गया था ?' जयदेव ने पूछा।

'अन्नदाता ! मैं महल में—'

'परमार !' सिर ऊँचा करके राजा ने कहा, 'मैं कोई बहाना नहीं सुनना चाहता। यहाँ दो व्यक्ति बिना आज्ञा के घुस आए, इसमें दोष तेरा है।'

जगदेव हाथ-में-हाथ कर, सिर नीचा किये खड़ा रहा।

'बाहर जा।'

'जो आज्ञा।' कहकर जगदेव बाहर चला गया।

'कहो महेताजी ! बैठो।' राजा ने उपेक्षा में उदा को बैठने के लिए कहा। उदा महेता ने पीठ पर दुपट्टे को सँवारा और गद्दी के नीचे पालथी मारकर बैठ गया।

'क्या कर आए ?'

'मैं देशल से भेंट कर आया हूं।'

'तो ?'

'परसों वह मुझसे भेंट करने वाला है। हो सका तो रा' और देवड़ी से मैं ही भेंट कर आऊंगा।'

'महेता ! मुझे इस प्रकार बातचीत चलाने में विश्वास नहीं।'

'महाराज ! आप परिणाम देखेंगे तभी समझेंगे।'

'किन्तु रा' बहुत हठी है।'

'हम क्या कम हठी हैं ? अन्नदाता ! जो शौर्य से नहीं होता वह चतुराई से हो जाता है।'

'ठीक ! किन्तु ध्यान रहे, मुझ पर कलंक न लगने पाए।'

'देव। आपको देवड़ी वर ले और रा' झुक जाय—इससे अधिक और क्या चाहिए ?'

'अधिक तो कुछ नहीं—किन्तु—' जयदेव ने कुछ रुककर पूछा—'किन्तु महेता, बाहड़ क्यों नहीं आया ?'

'महाराज ! वह काक है, उसे लाना कोई सहज बात है ?'

'किन्तु बाहड़ उसे ले तो अवश्य आएगा न ?' न समझ पड़े ऐसे ठट्ठा-भरे स्वर में राजा ने पूछा।

'देव ! अगर कोई यह काम कर सकता है तो वाहड़—'

'यह काक हमारी सहायता करेगा न ?'

'उदा महेता सर खुजलाने लगे, 'हाँ, करेगा। किन्तु उसके मत से चलेंगे तो !'

'महेता ! गुजरात में एक ही व्यक्ति का मत चलता है।'

'और वह अन्नदाता का !' उदा ने वाक्य पूरा किया। बाहर किसी की पगध्वनि सुनाई दी। दोनों सुनने लगे।

'जगदेव ! यह कौन है ?' जयदेव ने पूछा।

'कृपानाथ ! वाहड़ महेता आए हैं।' जगदेव ने द्वार पर आकर कहा

'आने दे।'

जगदेव और वाहड़ ने प्रवेश किया। वाग्भट यात्रा से सीधा चला आ रहा था; उसके मुख पर थकावट और हर्ष दोनों के चिह्न स्पष्ट दीख रहे थे।

'अन्नदाता, खम्मा !' वाग्भट ने प्रणाम किया। 'पिताजी, प्रणाम।'

'काक को लाया ?' उदा ने पूछा।

जयदेव केवल उसकी ओर देखता रहा।

'अन्नदाता ! आपकी आज्ञानुसार मैं काक भट को पकड़ लाया हूं।' वाग्भट ने झुककर, हर्षातिरेक से कहा।

'किसे ?' जयदेव ने पूछा।

'भट्टराज काक को।' वाग्भट ने कहा।

'किसी को उसके साथ बात तो नहीं करने दी न ?' उदा ने पूछा।

जयसिंहदेव की एक दृष्टि ही से पिता-पुत्र स्तब्ध हो गए, 'काक बाहर है ?'

'जी हां, महाराज !'

'अन्दर ला, देखूं।' राजा ने कहा। उनकी आंखों में क्रोध प्रकट हुआ।

'हां, महाराज !' कहकर वाग्भट बाहर गया। महाराज की मुखमुद्रा देखकर उदा चिंतित हुआ।

'देव ! उसके साथ तनिक सावधानी से काम लीजिएगा।'

जयसिंहदेव प्रायः सबसे विरक्त और पहुँच के बाहर हो जाते थे। उस समय उनकी आंखों का तेज उनके निकट सम्बन्धियों तक को दूर ले जा पटकता था और उनके चारों ओर गौरव का अभेद्य वातावरण छा जाता था। इस समय राजा की वैसी ही दशा हो गई।

'मैंने तेरी सलाह नहीं पूछी थी।' उन्होंने पग पटककर उदा से कहा। उदा मौन रहा। वाग्भट खेमा को साथ लेकर अंदर आया।

'कहां है काक ?' राजा ने कठोर होकर पूछा। वाग्भट ने आश्चर्य-चकित होकर चारों ओर देखा। उदा फीका पड़ गया, जयदेव खड़खड़ हँस पड़े।

'यह है काक ?' जयदेव ने तिरस्कार से कहा, 'उदा महेता ! वह काम कोई यदि कर सकता है तो बाहड़—हा ! हा ! हा ! यह और काक ?'

खेमा हाथ जोड़कर खड़ा रहा।

'क्यों रे, तू कौन है ?'

'अन्नदाता ! मैं तो भटराज का सेवक हूँ।'

'किसका ? काक का ?' राजा ने पूछा।

'हाँ, देव !' खेमा ने कहा।

'तू यहाँ कैसे आया ?'

'मैं क्या करूं देव ! ये भाई कुछ पूछने लगे थे। पोत डूबने लगा तो मैं तैरता-तैरता आया और इन्होंने मुझे पकड़ लिया। मैं निःसहाय था, कर ही क्या सकता था ?'

'उदा महेता, तुम काक को पकड़ने वाले थे न ?'

'देव !—'

'तुम्हारा लड़का लाट गया है। तुम भी वहां जाकर कुछ सीख आओ।' कटाक्ष से राजा ने कहा।

'अन्नदाता! किन्तु यह काक गया कहाँ?' उदा ने बात फेरने का प्रयत्न किया।

'यहीं है। यह रहा।' कहते हुए महल में से सुन्दर वस्त्र, और चमकते हुए शस्त्रों से सुसज्जित होकर काक अंदर आया। उसका लंबा शरीर भव्य लग रहा था, उसके तेजस्वी मुख से प्रताप की किरणें फूट रही थीं और उसकी तीक्ष्ण और गहरी आंखों से हंसी टपक रही थी।

जयदेव पुनः खड़खड़ हंस पड़े, 'वाग्भट। इस व्यक्ति का नाम है काक। पहचान ले, कहीं पुनः भूल न हो जाय। इसमें काम बनाना कविता करने जितना सरल नहीं है। महेता! यह तुम्हारा पुराना मित्र है। पहचानते हो?'

'उदा महेता और मुझे न पहचानें?' काक ने हंसकर कहा, 'क्यों खेमा! अच्छा हुआ तू बच गया। और कोई डूबा?'

'नहीं महाराज!' खेमा ने कहा।

'खेमा, गुजरात में एक ही महाराज हैं। परमभट्टारक जयसिंहदेव महाराज। तेरा सौभाग्य है कि आज तुझे उनके दर्शन हो गए। देव! आज्ञा हो तो जाय—ये थक गया होगा।'

'और तू भी तो थक गया होगा।'

'आप जानते हैं कि आपकी सेवा से मैं कभी थकता नहीं।'

'भटराज!' उदा महेता चहके, 'मेरा आँबड़ तो प्रसन्न है न?'

'हाँ!'

'महेता!' जयसिंहदेव ने कहा, 'तुम्हारा आंबड़, लगता है, वहां सब गड़बड़ कर देगा।'

उदा ने तीक्ष्णता से काक की ओर देखा, पुराने वैरी के द्वेष का अनुमान लगाने लगा। काक मुस्करा रहा था।

'वाहड़ !' राजा ने हंसकर तिरस्कार से कहा, 'अब तू भी विश्राम कर। बहुत थक गया होगा।' वाहड़ आंख ऊँची न कर सका, 'फिर परशुराम के साथ मंदरड़े जा।'

'जो आज्ञा।' कहकर वाग्भट नमस्कार करके म्लान-मुख से वहां से चला गया। काक के संकेत करने पर खेमा भी वहां से चला गया।

: १५ :

राज्यकर्ता की राजनीति

राजा ने बारी-बारी से उदा और काक दोनों की ओर देखा।

'तुम दोनों पुराने शत्रु हो। किन्तु अब मित्र बनना पड़ेगा।' उन्होंने कहा।

'देव ! मैं तो काकभट का मित्र ही हूं।'

'और मैं—जो आपका सच्चा सेवक हो उसके साथ वैर नहीं रखता।'

'अच्छा, तो दोनों बैठ जाओ। देखो, अब इस जूनागढ़ का क्या करना है ?' काक और उदा दोनों बैठ गए।

'महाराज !' उदा ने मिठास से कहा, 'आप मेरे विचार तो जानते हैं।' यदि मैं निरंतर दबाव डालता रहूंगा तो रा'के लिए समझौता स्वीकार करने के सिवा और कोई चारा न होगा।'

'काक ! तू सारी बात जानता है ?'

'नहीं।'

'रा' अब हाथ आया ही समझो, किन्तु गढ़ इतना दृढ़ है कि उसे

गिराते वर्षों लग जायँगे। मैं अब यह युद्ध शीघ्र समाप्त करना चाहता हूं।' जयदेव ने कहा।

'क्या रा' किसी भी प्रकार का समझौता स्वीकार करेगा ?'

'अन्य मार्ग ही नहीं है।' उदा ने कहा।

'कितने ही व्यक्तियों को समझौता करने से श्मशान अधिक रुचिकर लगता है।'

'तो रा' समझौता स्वीकार नहीं करेगा, ऐसा तू मानता है ?'

'मुझे विश्वास है।'

'कैसे ?' राजा ने कहा।

'मैं उसे वर्षों से पहचानता हूं।'

'और यदि मैं करवा लूं तो ?' उदा ने मुस्कराकर कहा।

'मैं शस्त्र उठाना छोड़ दूंगा।' काक ने मुस्कराकर कहा।

'भटराज ! देखना !'

'किन्तु वह समझौता स्वीकार न करें तो ?' काक ने पूछा।

राजा की आँखों में गहन तेज चमक उठा। वह सीधा होकर बैठ गया और दोनों की ओर देखा।

'और कर ले तो ? काक ! मैं स्वयं युद्ध में जाऊंगा। और रा' को चुटकी से मसल दूंगा। जो मूलराजदेव ने किया वह मैं नहीं कर सकता ? सोलंकियों को शिक्षा देनी नहीं पड़ती।'

'महाराज ! यह मैं जानता हूं,' काक बोला, 'और इसीलिए मुझे आश्चर्य होता है कि आप समझौते की बात कर रहे हैं। समझौते की बात निर्बल करते हैं, शक्तिवान नहीं.... गढ़ और रा' दोनों को पराजित करना पड़ेगा।'

'अन्नदाता को यह मार्ग अच्छा नहीं लगता।' उदा ने धीमे-से कहा।

जयदेव ने उत्तर नहीं दिया। काक समझ गया—राजा देवड़ी का विचार कर रहे हैं।

'तो अन्य कोई मार्ग नहीं है। किन्तु देव ! समझौता करना हो तो शीघ्र कीजिए जिससे हम जैसे लोग कुछ समझ सकें।'

'अरे हाँ !' राजा ने कहा, 'उदा महेता तीन-चार दिन में उत्तर लाने के लिए कहता है।'

'हाँ ! तुम भी चलो तो अच्छा है।' प्रयत्न निष्फल होने पर अपयश का कोई भागी हो तो अच्छा, यही सोचकर उदा महेता ने उदारता दिखाई।

'नहीं,' काक गर्दन हिलाकर बोला, 'जो नहीं हो सकता उसे मैं हाथ में नहीं लेता।'

'देव ! मैंने सब प्रबन्ध कर लिया है। रा' आधा तो मान गया है। देवड़ी पर से विश्वास हट जाय इसका भी प्रयत्न किया जा रहा है, और देवड़ी के माँ-बाप भी उसे समझाने के लिए तैयार हैं। देशलदेव योद्धाओं को भी समझा रहा है। दो-चार दिनमें सब कुछ ढीला हो जायगा तब मैं जा मिलूंगा। जितना बन सका उतना मैंने कर रखा है, आगे आदीश्वर भगवान् के हाथ में है।'

प्रपञ्च की आशा रूंध देनेवाली परिस्थिति में किस प्रकार जूनागढ़ अपनी स्वतंत्रता खोएगा—यह योजना बताते-बताते खंभात के बुद्धिमान् मंत्री की आँखें चमकने लगीं, जयसिंहदेव को बात में रस आ रहा था। काक स्थिर नयनों से देखता रहा।

'आप स्वयं जायंगे ?' काक ने पूछा।

'हाँ तो।'

'महेता ! वहाँ जाकर जो बात अब तक आप नहीं समझ पाए हैं वह समझ जायंगे।'

'कौनसी ?'

'वीर की अडिगता और सती की श्रद्धा।'

'रा' और—देवड़ी ?' जयदेव ने पूछा।

'महाराज ! आप उन्हें नहीं पहचानते। जब से ये दो ज्वालाएँ

एक-दूसरे से मिलीं तब से मैं दोनों को जानता हूँ। आप उन पर चाहे जितना पानी डालिए,उनकी आँच कम नहीं होने की। और अन्नदाता! यह भी याद रखिएगा कि अब ये दो ज्वालाएँ दो न रहकर एक होगई हैं। त्रिपुरारि स्वयं आपकी सहायता को आएं तो भी आप उन्हें अलग न कर सकेंगे। इन्हें बुझा दीजिएगा तो भी उनके अँगारों की राख अलग होने की नहीं।'

'भटराज !' उदा ने तिरस्कार से कहा, 'तुम्हें उनका गुणगान करना क्या बहुत अच्छा लगता है ?'

'अकारण ही गुणगान करने की मेरी टेव नहीं।'

किन्तु जयदेव का मुख लाल हो उठा। उसकी आँखों से अग्नि निकलने लगी। उनके नथुने फूल उठे। भावावेश से काँपते हुए किंतु स्पष्ट स्वर में वे बोले।

'और काक ! तू जानता है ? मैं—परमभट्टारक—जयसिंहने सोलंकियों की कीर्ति की सौगंध खाई है कि इन दोनों को साथ नहीं रहने दूंगा। यह देवड़ी उसकी नहीं—मेरी है। और देखता हूँ वह उसे कहाँ तक रख सकता है !'

काक मौन रहा।

'उदा महेता ! जब तुम संदेश ले जाओगे तो मैं भी साथ आऊँगा।'

'देव ! आप ?' काक बोला।

'मुझे तेरी और मेरी देवड़ी को देखना है।'

'किन्तु आपको कुछ हो गया तो ?'

'काक !' गर्व से जयसिंहदेव ने कहा, 'मुझे—भुवनत्रय को कंपा देने वाले को—मेरा कोई क्या कर सकता है ?' जिसने बाबरा पर विजय प्राप्त की वह मनुष्य से कब डरेगा ? मैं जाऊंगा।'

'किन्तु अन्नदाता !' तनिक मुस्कराकर उदा बोला,'एक शर्त पर। आप न राजचिह्न धारण करेंगे और न कुछ बोलेंगे।'

'हाँ, स्वीकार है।'

'और देव ! मैं एक शर्त रखूं ?' काक एकाएक कुछ निश्चय करके बोला।

'कौनसी ?'

'अपना अनुचर बनकर मुझे आने दीजिए।'

जयसिंहदेव हंसे। 'अच्छा! काक तू भी देखेगा कि तेरे महाराज जैसा तू सोचता है वैसे नहीं हैं।'

'देव ! मैंने जितना सोचा था उससे बढ़कर प्रतापी तो आप हैं ही, किन्तु मेरा मन नहीं मानता।'

'अच्छा किन्तु जो शर्त महाराज ने स्वीकार की है वह तुझे भी स्वीकार करनी पड़ेगी।'

'अवश्य ! मुझे इस संदेशे का दायित्व लेना भी नहीं।'

'देव !' मुरार अन्दर आया।

'क्या ?'

'बड़ी देवी का गण आया है, काक भट हों तो वे बुलाती हैं।'

जयसिंहदेव मुस्करा दिए, 'काक ! सभी तेरी प्रतीक्षा कर रहे मालूम होते हैं।'

'देव ! यह भी भाग्य की बात है।'

'महेता ! तो तुम भी जाओ। देखना आज की बात का एक अक्षर भी किसी के कानों न पहुंचे। मुरार, मेरी कन्धी तो ला।'

राजा और राजमाता के विश्वासपात्र काक की ओर शांत, किन्तु द्वेष-भरी, छिपी दृष्टि डाल कर उदा उठ खड़ा हुआ। वह और काक दोनों बाहर गये।

'भटराज ! हमें बीती बातें सब भूल जानी चाहिएं, ठीक है न !' तनिक हँसकर उदा ने कहा।

'मैं आपका स्मरण करता ही नहीं, महेता !' काक ने नमस्कार करके कहा और मीनलदेवी के दूत के साथ हो लिया।

: २२ :

राज्यरक्षक की राजनीति

लीलादेवी की स्थिरता कुछ कम हो गई थी। वह अपने पति के स्वभाव से पूर्ण रूप से परिचित थीं; क्रोध में वे क्या कर बैठें यह नहीं कहा जा सकता था। जयसिंहदेव को काक के प्रति कोई विशेष प्रीति तो थी ही नहीं। इतना ही नहीं, कुछ अंशों में उसके प्रति क्रोध और अविश्वास दोनों थे। काक को एकाएक क्यों बुलाया गया इसका भी कारण वह जान न पाई थी।

असाधारण शीघ्रता से वह मुंजाल महेता के निवास-स्थान की ओर चली।

मुंजाल नाम के महाआमात्य थे; उनका सचमुच का स्थान तो भीष्मपितामह के समान राज्य के अधिष्ठातृ देवता के समान था। वे बाहर बहुत कम निकलते थे, कभी-कभी मन्त्रियों के मन्त्रणा करते समय वे भी उपस्थित रहते थे। फिर भी, उनकी दृष्टि चारों ओर रहती थी; और उनकी दृष्टि चारों ओर है यह भी सभी जानते थे। पहले के समान ये सबको दूर नहीं रखते थे; सभी निडर होकर उनके पास जाते थे। बड़े, छोटे सबकी कठिनाइयों को दूर करने में ये अपना समय व्यतीत करते थे; और अवकाश मिलने पर राज्य के सभी अमलदारों को बुलाकर उन्हें सलाह और शिक्षा देते थे। कभी-कभी किसी ब्राह्मण या साधु के साथ बैठकर धर्म की चर्चा करते या सुनते। दिन से तीन-चार बार जयदेव उनसे भेंट करने के लिए जाते, और उनके साथ गुप्त मंत्रणा करते थे। राज्यकार भार से परे रहते हुए भी राज्यतंत्र का सहज ही संरक्षण करते थे और उसे निष्कंटक मार्ग पर चलाते थे। इस महापुरुष के व्यक्तित्व और प्रताप की उपेक्षा करने का कोई स्वप्न में भी विचार न कर सकता था, और सबको इनकी सहायता लेने की ऐसी

टेव पड़ गई थी कि उनके बिना कोई काम हो भी सकता है यह कोई विचार भी नहीं कर सकता था।

जिस समय मंगी मंत्री को कहने के लिए गई उस समय पाँवों पर दुपट्टा डाल कर मुंजाल शोभ महेता को आज्ञा-पत्र लिखने के लिए कह रहे थे। आयु बहुत अधिक होने पर भी मंत्री का शरीर सशक्त और तेजस्वी था। उनके सिर पर चँदलाई थी, निर्मूँछ मुख के कारण सन्यासी के समान लगते थे। बुढ़ापे के कारण मुंह कुछ क्षीण था, नाक की हड्डी तनिक टेढ़ी हो गई थी और कपाल पर रेखाओं ने त्रिपुंड रच दिया था। किन्तु सागर के समान गहन आँखों में प्रभाव वैसा-का-वैसा ही था।

'महेता जी! देवी आई हैं।'

'कौन लीलादेवी?' मुंजाल ने तनिक मुस्कराकर पूछा। उस मुस्कराहट में गौरवशाली वृद्धावस्था की समभावी मृदुलता थी।

'हाँ।'

'शोभ! जाओ, फिर बुला लूँगा।'

सोलंकियों का पीढ़ियों का नागर मंत्री शोभ सुन्दर दृढ़ और चतुर था। उसकी छोटी-सी पगड़ी और चमकता हुआ तुर्रा उसके रसिक स्वभाव की साक्षी दे रहे थे। उसकी सोने में मढ़ी लेखनी और कमर में बाँधी हुई रत्न-जटित दावात उसके आज्ञा-पत्र लिखने का अधिकार और ठाट-बाट की लालसा दोनों को बता रहे थे।

'और शोभ! कल प्रेमकुँअर को बड़ी देवी ने डाँटा था?'

शोभ ने नीचे देखा।

'घबरा मत,' महाअमात्य ने हँसकर कहा, 'मैं मीनलदेवी को समझा दूँगा। किन्तु तुम दोनों मेरे पास आना। मुझे कुछ बातें करनी हैं।'

'जो आज्ञा।' कहकर शोभ महेता विदा हुआ।

रानी ने कुछ अधीर होकर प्रवेश किया, 'महेताजी ! मुझे तनिक काम है।'

'आओ न बहन !' मुंजाल ने मुस्कराकर कहा, 'मैंने तो आपको तीन दिन पश्चात् देखा है। वृद्ध मनुष्य की चिन्ता ही नहीं करती ?' रानी मुस्कराई। उसे पाटण के आडम्बर-भरे दरबारी वातावरण में यह वृद्ध, विचारशील और सर्वग्राही दृष्टिवाला महाआमात्य भला लगता था।

'महेताजी ! आपको मालूम तो होगा ही कि महाराज ने भृगुकच्छ से काक को बुला भेजा है।'

'हाँ, क्यों ?' मुंजाल के मुख पर रहस्य-भरी मुस्कराहट दौड़ गई।

'वह यहाँ आ गया है।'

'अच्छा !'

'हाँ, किन्तु यह अच्छा नहीं हुआ।'

'क्यों ?'

'महाराज उस पर कुपित हैं उदा उसका कट्टर शत्रु है, महराज का सलाहकार है, और इस दरबार में उस जैसे सत्यवादी का मूल्य न होगा यह तो स्पष्ट है।' तिरस्कार-भरी शांति से लीलादेवी ने कहा।

मुंजाल के मुख पर गहन मुस्कराहट थी।

'एक दो बातों से मुझे लगा कि यहाँ उसके प्राण संकट में हैं।'

मुंजाल पुनः गंभीर हो गया—'बहन ! आप व्यर्थ में घबरा रही हैं।'

'नहीं।' निश्चयात्मक वाणी में लीलादेवी ने कहा। उनकी सुन्दर भवें स्थिर हो गईं; उनकी तीक्ष्ण दृष्टि निश्चल हो गई। उनके भावहीन स्वर में आज कुछ अधिक शांति थी। ऐसे क्षणों में यह कोमल लगती रमणी भयंकर दृढ़ता की मूर्ति बन जाती थी और चारों ओर भय का प्रसार कर देती थी।

'महेता जी !' रानी बोली, 'आप इस राज्य के स्तंभ हैं इसलिए

में यहाँ आई हूं। मैं आपके राज्य के प्रपंच में नहीं पड़ती, किन्तु यदि काक को कहीं कुछ हो गया तो आपके राज्य का क्या होगा यह भोलानाथ भी नहीं कह सकते।'

अपार्थिव शांति और निश्चल दृढ़ता से भरे हुए स्वर में बोले गए ये लाग-भरे शब्द मुंजाल स्नेही पिता की सद्भावना से सुनता रहा।

'बहन!' मीठे स्वर में मुंजाल बोला, 'मैंने जो पहले कहा वही पुनः कहता हूं—आप व्यर्थ में घबरा रही हैं।'

'क्यों?'

'आप काक को नहीं पहचानतीं।'

'महेताजी! आप अपने शिष्य और उनके जगदेव और बाबरा को नहीं पहचानते।'

'मैं पहचानता हूं—भली भांति! बहन! आप अधीर न होइए। बैठिए।'कहकर मुंजाल हँसा और रानी गद्दी पर बैठी। 'काक संपूर्ण नगर को छका दे ऐसा है। और एक बात कहूँ?' एक रहस्यभरी दृष्टि लीलादेवी पर डालकर मुंजाल बोला।

'क्या?'

'आपका काक मेरे लिए पुत्र के समान है।'

'आप लगता है पुत्र की पूरी-पूरी सँभाल नहीं करते।' तनिक हंसकर लीलादेवी ने कहा।

'यह तो मेरे भाग्य में नहीं लिखा था। बहन! मेरी चले तो उसे मैं अपना स्थान दूं; अतः आप निश्चिन्त रहिए। यदि उसके प्राण संकट में होंगे तो मुंजाल पुनः शस्त्र हाथ में लेगा। बस?'

'महेताजी! तो वह इस समय कहाँ है इसका पता लगवाओ।'

'अच्छा, मैं अभी मीनलदेवी के पास जाकर पता लगाता हूं।'

'महेताजी! अब मैं निश्चिन्त हुई। वह हमारे लाट का रत्न है।'

'आप जैसी महारानी और काक जैसा योद्धा—फिर लाट को

बहन, रंक आप ही कह सकती हैं। जाने से पहले एक बात और कह दूं।'

'क्या ?'

'आप राज्य के प्रपंच में हाथ क्यों नहीं डालतीं ?'

'मुझे रुचता नहीं।'

'झूठ बात।' स्नेह से हँसकर मुंजाल ने कहा, 'विधि ने राज्यतंत्र चलाने के लिए आपका सृजन किया है और संयोग सभी अनुकूल हैं। महाराज जैसे प्रतापी राजा को आप जैसी प्रतापी रानी ही की आवश्यकता है। व्यर्थ ही आप दूर-दूर रहती हैं।' मुंजाल के स्नेह भरे स्वर से रानी के अन्तर में अनेक तार झनझना उठे। 'आपको अपना पटरानी का पद निभाना चाहिए।'

कुछ देर के लिए रानी की आँखों में निष्फलता झलक गई।

'यह पद रखने के लिए ही तो काक को यहाँ बुलाया है ?' रानी का मुख फीका पड़ गया। उसको लगा उसकी चोटी पकड़ी गई है।

'आपने कहाँ से जाना ?'

'बेटी !' मुंजाल ने मुस्कराकर स्नेह से धीमे स्वर में कहा, 'आपका पटरानीपद बना रहे और जूनागढ़ पराजित हो इसीमें पाटण का श्रेय है। विधि इसीके लिए व्यग्र है।'

'और महेताजी ! उसी विधि ने काक को यहाँ बुलाया है।' बुद्धिमान मंत्री की ओर गर्व भरी दृष्टि से देखते हुए लीलादेवी ने कहा।

मुंजाल खड़खड़ हँस पड़ा, प्रभु जाने, किन्तु काक को विधि का साधन बनने की बड़ी टेव है अतः अब निश्चिन्त रहिएगा।'

लीलादेवी उठीं, साथ ही मुंजाल भी उठा—'बहन !' मुंजाल ने कहा, 'आज मुझे बहुत प्रसन्नता हुई कि हम इतनी बात कर सके। इसी प्रसंग में एक दूसरी बात कहूँ तो सुनोगी ?'

'कहिए।'

'देखिए, हम वृद्धों की कई बातें काम की होती हैं, कई बार हम माथा-पच्ची भी करते हैं, किन्तु प्रत्येक बात में कुछ-न-कुछ सीखने को होता ही है।'

'आज आप इतने नम्र क्यों हो गए हैं?'

'क्योंकि मैं पाटण की महारानी के साथ बातें कर रहा हूं। बहन, सुनो! काक के यहाँ रहने से ही आपका, महाराज का और पाटण का भला होगा। किन्तु वह यहाँ रहेगा या नहीं इसका आधार आप पर है।'

'यह किस प्रकार?' कुछ चमककर रानी ने पूछा।

'बैठिए, मैं कहता हूं। हम एक-दूसरे को समझ लें तो सदा के लिए निश्चिन्त हो जायं।'

'किन्तु काक का पता—'

'हाँ, लगवाता हूं। वस्ता! जा, महाराज के पास भृगकच्छ के दुर्गपाल काकभट हों तो कहना मीनलदेवी बुलाती हैं। हों, तो लेकर आना। नहीं हों, तो दौड़कर वापस आ।' वस्ता चला गया।

'देख बेटी!' मुंजाल लीलादेवी से कहने लगा। उसकी आँखों में मधुरता आई, उसके मुख पर गांभीर्य छा गया। 'द्वापर युग में एक नर और एक नारी थे। दोनों तरुण थे। दोनों का स्वभाव कल्पना-शील था, दोनों ने मेरु पार करने का दृढ़ संकल्प किया था। नर की रगों में वनराज की सर्वभक्षी लगन थी और नारी की रगों में सिंहनी की सत्ता-प्रियता थी।'

मुंजाल ने कुछ रुककर गला ठीक किया। उसकी दृष्टि प्रकोष्ठ के दूर के कोने पर जाकर रुक गई। 'दोनों दूर थे, किन्तु विधि ने उन्हें एक किया। नर और नारी की प्रौढ़ आत्माओं का एक-दूसरे से मिलन हुआ। दोनों के मन में एक को छोड़ दूसरी सृष्टि न थी—दूसरी आशा न थी।'

लीलादेवी समझने लगीं। उसकी आँखें इस वृद्ध आमात्य के

तेजस्वी मुख पर होते हुए परिवर्तन देख रहीं थीं। मुंजाल का मुख कठोर होगया। वह रुका।

'एक मंत्री था—दूसरी महारानी थी। विधाता ने उनका एक होने के लिए सृजन किया था। उसीने उनके बीच में असंख्य और उचित व्यवधान खड़े कर दिए। दोनों ने विधि की आज्ञा को सिर-आँखों चढ़ाया।' मंत्री की आँखों का तेज तनिक मंद होता-सा लगा। दूसरे ही क्षण उसने बात प्रारंभ की, 'अटल बंधनों से बँधी हुई लता ने कठोर वैधव्य की पवित्रता स्वीकार की। उनकी त्यागवृत्ति ने उन्हें जीते-जी मृत्यु का आस्वादन करवाया।' मुंजाल रुका।

'किन्तु महेताजी!' प्रथम वार रानी का स्वर भाव-भरा हुआ, 'इस त्याग से उद्भूत सुवास ने संपूर्ण सृष्टि को सजीव भी तो किया?'

'कौन कह सकता है?' मुंजाल आगे चला, 'किन्तु इस सुवास में लिपटी हुई उनकी पवित्रता पर वे जीवित रहीं—' मंत्री ने सीधे होकर चारों ओर देखा। 'और जैसी वे जीवित रहीं वैसी ही मरीं भी—बिलकुल अकेली।' कुछ देर तक मंत्री मौन रहा, उसकी आँखें सजल हो उठीं। 'बहन!' गला ठीक करके मंत्री ने कहा, 'बात का सारांश इतना ही है कि बहुत-सी वस्तुएँ देखने में स्वाभाविक लगती हैं—किन्तु सचमुच में यदि वे अस्वाभाविक निकल आएँ तो दुःख की सीमा नहीं रहती। यह नहीं जानता कैसे—किन्तु इन दो के पाप के कारण राज्य जड़मूल से उखड़ जाता। अतः बेटी! ध्यान रखना।' मुंजाल ने स्नेह-से लीलादेवी के कंधे पर हाथ रखा। 'समझीं न?'

कुछ देर तक कोई न बोला। मुंजाल की वाणी पुनः जैसी थी वैसी ही स्वस्थ हो गई, 'रानी! सोलंकी की कीर्ति का आधार आप पर है।' रानी उठी, नीचे देखती रही, फिर एकाएक कुछ निश्चय किया हो ऐसे अपना सिर ऊँचा किया। उसकी आँखों में तेज चमका, उसकी छाती तनिक फूली, उसके अधर जोर से बंद हो गए।

'महेताजी!' उसकी वाणी तलवार की धार-सी थी, 'आज आपने

मेरे पिता का स्थान लिया तो आपको मैं पुत्री के स्नेह-से अपनी बात कहूं ?'

'बेटी, निडर होकर कहो। मैं देख सकता हूं, समझ सकता हूं, और विवेक से विचार भी कर सकता हूं। मेरी सलाह से अब तक किसी को हानि नहीं हुई।'

'महेताजी! सलाह के लिए तो स्थान ही नहीं।' रानी तिरस्कार से कहने लगी। 'एक नर था—एक नारी थी। नारी ने याचना करके मुकुट धारण किया। महेताजी! संसार में कइयों के भाग फूटे होते हैं। वह नर उसका मूल्य नहीं जानता था—या फिर आपने कही वैसी बातसे वह डरता होगा। उन्होंने अपने मार्ग जाना पसंद किया। दोनोंको एक-दूसरे में विश्वास है—इसके सिवा और कुछ नहीं है—और न होने का।' रानीकी वाणी भावहीन थी। वह हंस पड़ी—हास्य शुष्क और तिरस्कार भरा था। 'महेता जी! सोलंकियों की कीर्ति के कलंकित होने का तनिक भी भय नहीं।'

मुंजाल उठा, रानी के निकट गया, उसके कंधे पर हाथ रखा और स्नेह-भीनी वाणी में कहा, 'बेटी! तू तो महारानी होने के लिए बनी है।'

रानी पुनः हँस पड़ी—पहले के समान नीरस रीति से!

'नहीं बनी होती तो कोई बहुत कष्ट न होता।' कहकर उसने मुंजाल की ओर एक कठोर दृष्टि डाली। 'किन्तु बन चुकी हूं—अब आप और क्या चाहते हैं?'

गर्व से सिर ऊँचा किये लीलादेवी कमरे से बाहर चली गई। मुंजाल देखता रहा और फिर थोड़ी देर बाद बड़बड़ाया, 'अब मैं निश्चिंत हुआ।'

: १७ :

काक को किसने बुलाया ?

बड़े वेग से, इतनी उम्र के व्यक्ति में आश्चर्यजनक लगने वाली आतुरता से, मुंजाल घूमा और अन्दर के द्वार में से होकर एक कोठरी में गया। कोठरी के निकट एक कमरेमें एक दासी बैठी कुछ सी रही थी। मुंजाल ने उससे पूछा, 'बड़ी देवी कहाँ हैं?' दासी एक दम खड़ी हो गई।

'पूजाघर में।'

मुंजाल ने हाथ से उसे बैठ जाने का संकेत किया और स्वयं अन्दर गया। इस कमरे के कोने में एक छोटी अँधेरी कोठरी बनी हुई थी, और उसमें से धूप की सुगंध आ रही थी। मुंजाल इस कोठरी के आधे खुले हुए द्वार के सामने गया और धीरे-से कहा। 'देवी!' उसके स्वर में मृदुता थी और दबाई हुई भावना का कंपन था।

'कौन मुंजाल! बैठ।' अन्दर से आवाज़ आई और अन्दर बैठी मीनलदेवी ने द्वार खोले। मीनलदेवी के मुख पर बुढ़ापा स्पष्ट दिखाई दे रहा था। उनकी आँखों और मुख के सामने रेखाएँ खिंच आई थीं और उनके बहुत-से दाँत गिर गए थे, फिर भी उनके मुख पर गौरव और सत्ता स्पष्ट दिखाई पड़ रहे थे। उनकी वाणी भी तनिक भाव-भरी थी।

मुंजाल ने शिखा खोलकर पुनः बाँधी। इतनी देर तक दोनों ने एक दूसरे के सामने देखा। दृष्टि मात्र मिली ही नहीं वरन् आलिंगन कर रही थी। अतृप्त अन्तर की इच्छाओं को संतुष्ट करने के लिए एक-दूसरे से लाड कर रही थी।

'देवी! काक आ गया।' थोड़ी देर पश्चात् मुंजाल ने कहा।

'चलो अच्छा हुआ। भेंट हुई?' मीनलदेवी ने पूछा।

'मैंने उसे बुलाया है। अभी आने वाला है।'

'तुम्हें उसमें विचित्र श्रद्धा है।'

'हाँ। उसकी शक्ति का आज एक अद्भुत उदाहरण मिला।'

'कौनसा ?'

'लीलादेवी मेरे पास आई थी।'

'क्यों ?'

'काक के प्राण संकट में हैं ऐसा समझकर रक्षा करने के लिए कहने आई थी।'

'फिर ?'

'मैंने दूसरी बात निकलवा ली। लीलादेवी को पटरानीपद पर बनाए रखने से पहले मैं उसका मन जानना चाहता था।'

'क्या निकला ?'

'वह चतुर है, सत्ता की लालसा रखती है, महत्वाकांक्षी है। मुझे काक के सम्बन्ध में कुछ भय था वह आज दूर हो गया।'

'कैसा भय ?'

'देवी ! चालीस वर्षों में समय अवश्य परिवर्तित हो गया। किन्तु क्या मनुष्य के हृदय में भी परिवर्तन हो गया ? अब हम हो गए हैं वृद्ध। छोटे बच्चों को तो जैसा हम कहें वैसा करना चाहिए।' कहकर मुंजाल ने स्नेह-भीनी दृष्टि से राजमाता को अर्घ्य अर्पित किया।

मीनलदेवी मुस्कराई। उमंगों और स्नेह ने जिसमें विशुद्ध परिपक्वता प्राप्त की वैसे हृदय से वह मुस्कराहट उद्भूत हुई थी।

'फिर ?' उसने पूछा।

'उसके मन में पुरुष वास अवश्य करता था किन्तु अब खेल समाप्त हो चुका है। या तो स्त्री आकर्षक न थी या पुरुष रसिक न था।' मंत्री ने कहा, 'पुरुष ने मुकुट और याचना दोनों को अस्वीकार कर दिया। अब मैं निश्चिन्त हुआ।'

मीनलदेवी ने भी निश्चिंतता का निःश्वास लिया।

'नहीं तो क्या करते ?' उन्होंने विनोद में पूछा।

'लीलादेवी को पटरानी-पद से हटाना पड़ता और काक को लाट में सड़ने देना पड़ता।' तनिक गम्भीर होकर मुंजाल ने कहा।

मीनलदेवी थोड़ी देर तक गम्भीर रही। फिर उनके मस्तिष्क में कुछ विचार आया। वह मुस्कराईं, 'भगवान्! चालीस वर्ष पहले मैं पाटण का महाअमात्य होती तो ऐसे पुरुषोंको ऐसी शिक्षा अवश्य देती।'

'वह पुरुष वैसी शिक्षा की चिन्ता भी करता?' मुंजाल ने हँसकर उत्तर दिया। उसका मुख भूतकाल के रंगों का स्मरण कर कुछ दीप्त हो उठा। फिर गम्भीर मुखसे उसने कहा, 'देवी! सभीमें हमारी शक्ति और हमारी पवित्रता नहीं। अब तो हमें सोलंकी कुल की कीर्त्ति की रक्षा करनी है—अतः किसी प्रकार की जोखिम नहीं उठा सकते।'

'हाँ,' गंभीर होकर मीनलदेवी ने कहा, 'अब यह काक यदि तुम्हारा सोचा हुआ करे—'

'करेगा ही। लीलादेवी को विश्वासपात्र पटरानी बनाए रखने के लिए तो वह जान लड़ा देगा, अतः देवड़ो की बात नहीं बनेगी।'

'किन्तु जयदेव तो उसके पीछे पागल हो गया है।'

'पागलपन तो अपने आप दूर हो जायगा। काक है अतः हमें बोलना नहीं पड़ेगा। अब लीलादेवी यदि जयदेव को रिझा सकें तो फिर कोई कठिनाई न हो। आपने प्रेमकुंअर से कहा था? मैंने भी शोभ से कहा है कि दोनों आकर भेंट कर जायं।'

'यह लड़की ऐसी आई है कि लीलादेवी को प्रसन्न रखने के लिए आकाश-पाताल एक कर देगी।'

'लीलादेवी के मन को प्रसन्न करना सरल काम नहीं।' मुंजाल ने कहा, और किसी का पगरव सुनकर पूछा—'कौन है?'

'यह तो बापू मैं वस्ता, भटराज आगए हैं।'

मुंजाल और मीनलदेवी की दृष्टि मिली। 'आने दे,' मुंजाल ने कहा। काक ने प्रवेश किया, राजमाता और महामंत्री को नम्रतापूर्वक नमस्कार किया और हाथ जोड़कर खड़ा रहा।

'कहो काक! कैसे हो? बैठो न!' मीनलदेवी ने कहा, 'मंजरी कैसी है?'

'आनंद में है।'

'और कोई बाल-बच्चे हैं ?'

'हाँ देवी, एक पुत्र और एक पुत्री है।'

'वे भी आनंद में हैं ?'

'हाँ, आपके आशीर्वाद से।'

'बहुत दिनों पश्चात् हमसे मिला।' मीनलदेवी ने कहा।

'आपके प्रताप से मैं लाट में निश्चिंत हूं।' काक ने उत्तर दिया।

'तू भी ऐसे ही बोलना सीख गया है क्या ?' मुंजाल ने हँसकर काक से पूछा, 'तुझे अधिक निश्चिन्तता प्राप्त भी होती है ?'

'महाराज की सेवा में मैं निश्चिंत ही हूं।'

'लाट की स्थिति कैसी है ?' मुंजाल ने पूछा।

'सब कुछ ठीक है। आँबड़ आया है यही डर है।'

'क्यों ?'

'भूल करने का उसका स्वभाव-सा मालूम होता है।' मुंजाल और मीनलदेवी हंस पड़े।

'उदा महेता मंजरी को साध्वी बनाना चाहते थे यह तू भूलता नहीं मालूम होता।'

'महेताजी !' मैं उसे नहीं भूला और वे भी भूलने के नहीं।'

'क्यों उनसे भेंट हुई ?'

'हाँ। हम दोनों महाराज के पास थे। वाहड़ मुझे पकड़ने के लिए सोमनाथ आया था। मेरे स्थान पर उसने मेरे सैनिक को पकड़कर यहाँ ला खड़ा किया। काक को पकड़ लाने का आनंद लेते बाप-बेटे के सामने अंदर के कमरे में से मैं निकला। दोनों के मुख देखने जैसे हो गए थे।'

'और महाराज ?' मीनलदेवी ने हँसते-हँसते पूछा।

'महाराज मुझ पर प्रसन्न हैं।'

'तेरी प्रकृति तो मैं जानता हूँ,' मुंजाल ने कहा, 'अब यह तो बता महाराज ने तुझे क्यों बुलाया ?'

काक मुस्कराया, 'महेताजी! देवी न होती तभी कुछ पूछता। अभी नहीं पूछूंगा।'

'पूछ ही ले न!' मीनलदेवी ने हंसकर कहा, 'मैं तो राज्य के काम में हाथ ही नहीं डालती।'

'और मैंने वानप्रस्थ ले लिया है। जो कुछ कहेगा सुन लूंगा। मुझे सहनशीलता सीखनी चाहिए, क्यों?' मुंजाल ने भी हँस कर कहा।

'मंत्रीवर, तो सुनिए! कितने ही दिनों से मेरे मन में संशय था।'

'कैसा?'

'कि इस पाटण का क्या होने वाला है! रा' को कोई पराजित नहीं कर सकता। उदा महेता राजा के दाहिने हाथ बन बैठे हैं। छोटी देवी का सम्मान मिटता जा रहा है। विदेशियों और पिशाचों के बल पर पाटण का राजा कूदता है। पट्टणी योद्धाओं का अपमान हो रहा है। इतने ही से संतोष न हुआ। अशांत लाटमें मेरे स्थान पर आँबड़ महेता को भेजा और मेरे जैसे निर्दोष व्यक्ति को पकड़ने या मारने के लिए पग-पग पर आदमी बिठा दिए। मुझे विचार हुआ कि मुंजाल महेता गए कहाँ?'

मुंजाल महेता खड़खड़ हँस पड़े, 'स्वर्ग सिधारे या क्या?'

'मुझे ऐसा ही लगने लगा था,' काक ने हँसकर उत्तर दिया। 'किंतु आज्ञा-पत्र देखकर कुछ-कुछ विचार पलटा।'

'क्यों?' मीनलदेवी ने पूछा।

'पन्द्रह वर्ष पश्चात् एकाएक मेरा भाव बढ़ गया।'

'कितना अभिमान! लाट में स्वच्छंद होकर राज्य करने वाले दुर्ग-पाल को राजा बुलाए नहीं तो क्या करे?'

'या फिर होली में नारियल फोड़ने के लिए महाआमात्य को आवश्यकता पड़ गई हो तो और क्या करे?'

मुंजाल की आँखों में प्रशंसा चमक उठी, 'महाआमात्य वृद्ध हो गया है।'

'आपके साथ मल्ल-युद्ध करने का मुझमें साहस नहीं है।' काक ने मुंजाल के स्नायु की ओर दृष्टि करके कहा, 'देवी ! आपको क्या लगता है ?'

'तेरा बल और तेरी बुद्धि वैसी-की-वैसी बनी हुई है यह स्पष्ट दिखाई देता है।'

'तो अब मुझे कब होम देना है, कहिए ?' काक बोला।

'काक, बेटा !' मुंजाल ने कहा, 'देवी सच ही कहती हैं। तेरे जैसा दूसरा कोई नहीं।'

'अब करना क्या है ?' काक ने पूछा।

'जो मुझे समझ पड़े। काक ! राज्य के जीवन में कई बार विचित्र प्रसंग आते हैं। यदि उन प्रसंगों पर विजय पाई तो राज्य की कीर्ति बढ़ती है—नहीं तो विनाश प्रारंभ हो जाता है। तुमने पूछा कि 'पाटण का क्या होने वाला है ?' कुछ नहीं होने वाला है, हाँ, एक विचित्र प्रसंग आगया है।'

'तो आप कुछ करते क्यों नहीं ?' काक ने सीधा प्रश्न किया।

'मैंने हल निकाला है।' रहस्य-भरे ढंग से हंसकर महाआमात्य बोले।

'कैसा ?'

'जो व्यक्ति कर सकता है उसे खोज निकाला है।' मुंजाल मुस्कराया।

काक हाथ जोड़कर झुका, 'महेताजी ! जितना आपका विश्वास है उतनी शक्ति भोलानाथ दें तो फिर बस !' उसने नम्रतापूर्वक कहा।

'काक ! मीनलदेवी ने कहा, 'तू थक गया होगा, अब तनिक आराम कर। किन्तु अभीकी बात किसी के कानों न पहुंचने पाए।'

'देवी !' मुंजाल बोला, 'आप इसे नहीं जानतीं। काक ! जा, विजय कर !'

काक ने पुनः प्रणाम कर विदा ली।

: १८ :

वाहड़ महेता की कसौटी

राजगढ़ के सरोवर के किनारे पारिजात के वृक्ष के नीचे समर्थ खड़ी हुई थी। इस समय उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न था; उसके पाँव धरती पर नहीं पड़ रहे थे; उसकी आँखों की पुतलियाँ स्थिर न थीं; उसके होंठ क्षण-मात्र भी शांत न रह रहे थे, उसके सिर के केश भी चैन से नहीं बैठ रहे थे।

रह-रहकर उसके पाँव थिरक उठते थे और वह झुक-झुककर ताली बजा रही थी। वह कुछ-कुछ गुनगुना रही थी। अभी उसके मन में से वाहड़ के बारे में अपनी बनाई हुई वह पंक्ति गई न थी।

थोड़ी देर में वह थक गई। उसने होंठ पर उँगली रखी, 'आने दे।' वह बड़बड़ाई, 'मुझे प्रतीक्षा करवा-करवाकर थका डाला है। अच्छी बात है—मैं भी परशुराम की पुत्री नहीं यदि उन्हें थका-थकाकर न छका दूं तो! अपने मन में समझते क्या हैं? हम जैसे यों ही हैं।' उसने होंठ-पर-होंठ चढ़ाया और पुतलियाँ ऊँची कीं। 'ऐसा करोगे तो हम नहीं बोलने के—बस नहीं—नहीं—बस नहीं—'

'समर्थ !' वाग्भटने पीछे से आकर कहा। उसके मुख पर असाधारण ग्लानि छाई हुई थी। उसकी आँखें उदास थीं। उसके सुन्दर मुख के तेज पर निराशा छा रही थी।

समर्थ ने घूमकर वाग्भट को देखा तो क्रोध भूल गई और एक-दो पग हवा में कूदी और ताली देकर वही पंक्ति गाने लगी। उसक संपूर्ण गात हंस रहा था। वाग्भट ने एक गहरा निःश्वास लिया।

'समर्थ !' अश्रुपूर्ण स्वर में वाग्भट बोला।

'काक आया ?' समर्थ ने ऊँचा देखकर, कपाल से केशों को उठाते हुए पूछा।

'हाँ।' वाग्भट ने कहा, 'किन्तु—'

समर्थ सुनने के लिए नहीं रुकी। वह उछलते-कूदते वाहड़ की प्रदक्षिणा करने लगी और एक के स्थान पर दो तालियाँ बजाने लगी।

'समर्थ !' खेद से समर्थ का हाथ पकड़कर वाहड़ बोला, 'सुन !'

'तुम तो रोया ही करते हो,' कहकर समर्थ पुनः प्रदक्षिणा करने लगी।

'समर्थ !' अधीरता से वाहड़ बोला, 'तू सुनेगी भी ?'

'बोलो !' कहकर समर्थ खड़ी हो गई। वह अधीरता का कारण नहीं समझ पाई।

'समर्थ !' वाहड़ ने दुःखी हृदय से कहा, 'मुझसे वचन का पालन नहीं हुआ।'

'क्या ?' एकदम आँखें फाड़कर समर्थ ने पूछा।

'काक को नहीं पकड़ पाया।'

कुछ देर तक समर्थ देखती रही—फिर एकदम ताली मारकर हंसने लगी, 'झूठे, झूठे, झूठे !'

'नहीं, सच्ची बात है।' वाहड़ ने हास्यास्पद गंभीरता से कहा।

'झूठ ! मेरी दासी कहती थी।'

'समर्थ !' फटते हृदय से वाग्भट ने कहा, 'जिसे मैंने पकड़ा वह काक नहीं, कोई और था।'

समर्थ की आँखें धीरे-धीरे बड़ी हुईं। वह अर्थ समझी, उसका मुख गंभीर हो गया, रुआसा हो गया।

'तुम काक को पकड़कर नहीं लाए ?' कहते हुए वह रो पड़ी....'ऊँ....ऊँ....ऊँ—तुमने नहीं पकड़ा ?'

'वह चुपचाप यहाँ पहले से ही आ गया था।' वाहड़ ने धीरे-से कहा।

'अब क्या होगा ? हं—हं—तुमने वचन नहीं रखा—हं—हं मैंने अपनी माँ के साथ शर्त की थी....हं....हं...मैं हार गई। तुमने यह क्या किया ? हं....हं....हं !' कहकर हाथों में मुँह रखकर समर्थ रोने लगी। उसका सुन्दर सिर सिसकियों से ऊँचा-नीचा हो रहा था।

'हं....हं....अब कोई तुम्हारे साथ मेरा व्याह नहीं करेगा।'

वाहड़ की छाती में एक धक्का लगा—'मैं जानता हूं।' उसने बड़ी कठिनाई से कहा।'काक को पकड़कर महाराज से वरदान माँगने का विचार किया था। यहाँ तो उलटा अपमानित होना पड़ा। मुझे तेरे पिताजीके आधीन युद्ध में जाना है।' कपाल पर से स्वेद पोंछते हुए वाग्भटने कहा।

'पिताजी कहते थे कि तुमको कविता करना आता है—लड़ना नहीं।'

वाहड़ ने नीचे देखा, 'यह कैसे जाना ?'

'एक दिन रात को पिताजी और माँ बातें कर रहे थे; मैंने छिपकर सुन ली। 'वाहड़—वाहड़—ओ वाहड़ !'उसने निराशा-भरे स्वरमें कहा।

'क्यों ?'

'अब भी काक नहीं पकड़ सकते ?'

'समर्थ ! वह तो महाराज का विश्वासपात्र है—क्या पागल हुई है ?'

'वाहड़ ! तो तेरे दादा मेरे दादा के समान दंडनायक क्यों नहीं बने ?'

वाहड़ ने खेद से ऊपर देखा। उसे मालूम था कि उसके मारवाड़ी दादा का मरभुखा जीवन ही उसके और वनराज के महामंत्री चांपा की वंशज समर्थ के बीच में आता था। किन्तु उस दादा की स्थिति के लिए वह उत्तरदायी बिलकुल न था यह इस नादान छोकरी को कैसे समझाए यह उसे नहीं सूझा।

'मेरे जले भाग्य के कारण।'

'तो तुम कवि कैसे हो गए?' समर्थ ने पूछा।

'अपना सिर फोड़ने।'

'तुम ऐसे कैसे बोलते हो?' समर्थने क्रोधमें कहा। वाहड़ सम्मानसे झुक गया।

'समर्थ! मैं जानता हूँ मैं तेरे योग्य नहीं हूं। मैं अब युद्धमें जाऊंगा, मर जाऊंगा तो छुट्टी मिलेगी—और विजयी होऊँगा तो भी उससे पहले तेरा ब्याह दूसरे स्थान पर कर दिया जायगा।'

समर्थ ने ऊपर देखा। वह आँखें फाड़कर देखने लगी, 'तुम मर जाओगे? नहीं, नहीं। फिर तुम्हें जला देंगे? नहीं। ऐसा क्या बोलते हो?'

'मुझसे तेरे बिना जिया नहीं जाता,' कवि ने कहा।

'भाई! ऐसा क्यों बोलते हो? तुम इस प्रकार बोलते हो तो मेरा जी घबराता है।'

'समर्थ! बच्ची है—इसलिए मुझे कैसे समझेगी? तू तो मुझे कल भूल जायगी किन्तु तेरे बिना मेरा जीवन चलने का नहीं।'

समर्थ का कपाल आकुंचित हो गया। वह नादान, विचारहीन, और तरंगी थी। उसे वाग्भट बहुत अच्छा लगता था और उससे ब्याह करने को उसका मन बहुत करता था—किन्तु वह इस प्रकार क्यों बोल रहा है यह वह स्पष्ट न समझ सकी। वह थोड़ी देर तक सोचती रही।

'वाहड़! तुमने मेरा गीत भी बिगाड़ दिया। ऐसा मैंने पहले कभी नहीं बनाया था।'

वाग्भट तनिक तिरस्कार से हँस पड़ा—'समर्थ! तेरा तो गीत बिगड़ा—मेरा तो साथी गया।'

'क्यों?'

'मेरा सिर,' कहकर वाग्भट जाने के लिए घूमा।

'वाहड़!' एकाएक समर्थ बोली।

'क्या?'

'तुम अभी नहीं मरोगे।'

'मेरे हाथ में नहीं है।'

'पूरा सुनते भी नहीं। मुझे एक मार्ग सूझा है। मैं ऐसा मार्ग बताऊं कि काक को तुम ही पकड़ सको।'

वाग्भट ने निःश्वास लिया, सिर हिलाया और भारी हृदय से पुनः जाने के लिए मुड़ा। उसके अंतर के दीप मन्द पड़ गए थे।

विद्वान् और वीर वाहड़ ने विद्वानों की स्वभावजन्य सरलता से इस पतंगे को अपने प्राण अर्पण कर दिए थे, किन्तु यह पतंगा उसके भाग्य में न था इसका उसे पूर्ण विश्वास हो गया था।

समर्थ को एक सरस विचार आया था; और जब तक उसे करके न देखा जाता, तब तक उसे चैन पड़ने की न थी।

उसे इस न पकड़ाये गए काक के प्रति द्वेष हो आया। उसने अपने पिता को इस काक की प्रशंसा करते हुए सुना था, और यह भी सुना था कि इसको जो भी पकड़ेगा उस पर राजा बहुत प्रसन्न होंगे। इसीसे उसने और वाहड़ ने यह युक्ति रची थी और वाहड़ने उदा महेतासे काक को लेने जाने की आज्ञा माँग ली थी। यदि वाहड़ काक को पकड़े तो राजा प्रसन्न हों, परशुराम की वाग्भट पंडित के शौर्य के विषय में अच्छी भावना होजाय तो समर्थ को वाहड़ से ब्याहने की कुछ बात की जा सके। पहले शम्भु रहेता के पौत्र के साथ उसका ब्याह होने वाला था; किन्तु गतवर्ष वह युद्ध में मारा गया था। तब से परशुराम जैसा गर्विष्ठ योद्धा अपने कुल की गहना के योग्य वर की खोज में था, किन्तु पाटण के बहुत ही कम

कुलों में यह योग्यता होने और कुटुम्बों में उचित उम्र के अविवाहित युवकों का अभाव होने के कारण यह खोज अब तक सफल न हो पाई थी। समर्थ यह सब जानती थी, किन्तु बाहड़ जैसे अच्छे आदमी को उसके पिता अपनी पुत्री को क्यों नहीं दे रहे थे, यह उसकी समझ में नहीं आया।

: १६ :

जगदेव परमार की कर्तव्यपरायणता

जगदेव परमार दुर्जन या नीच मनुष्य न था। वह वीर योद्धा था और स्वामि-भक्ति निभाने के लिए तत्पर रहता था। उसकी वीरता से प्रसन्न होकर जयसिंहदेव उसे मालवे से साथ ले आए थे और पाटण में उसे धन, मान, उपाधि, और चावड़ा जैसे ऊंचे कुल की स्त्री—ये सभी दिये थे। उसे पसंद करने और अपना दाहिना हाथ बनाने में जयसिंहदेव का गहरा स्वार्थ था—इसे जगदेव नहीं जानता था।

गर्विष्ठ पट्टणी योद्धाओं और मंत्रियों पर सत्ता जमाने के लिए उनसे नितान्त स्वतंत्र होने का सिद्धांत जयसिंहदेव के मस्तिष्क में घर कर गया था। बाबरा को जीत लेने से और भूत समझे जाने वाले बाबरा की सहायता से साधारण लोग उन्हें अपार्थिव और अजित सत्ता का धनी समझते थे। किन्तु योद्धाओं, सामंतों और मंत्रियों के प्रभाव को दबाना सहज नहीं था। कई महामंत्री और महारथी एक दूसरे के संबंधी थे और एक-दूसरे से जी भरकर ईर्ष्या करते थे, किन्तु राजा के कहने पर एक-दूसरे से लड़ने के लिए तत्पर न होते थे। राजा को यह अच्छा नहीं लगा और उन्होंने जगदेव परमार को अपना अंग-रक्षक नियुक्त किया और तीन-सौ सशक्त मालवियों को उसके

आधीन कर दिया। जिसे महल में प्रवेश करना हो, राजा से भेंट करनी हो, कुछ प्रार्थना करनी हो, तो उसके लिए जगदेव से भेंट किए बिना कोई और चारा न था। किसी को 'सीख' देनी होती या किसी को डराना होता तो राजा की आज्ञा यह स्वामि-भक्त सिर-आँखों चढ़ाता था। उसे राजा की कृपा छोड़कर और किसी की चिन्ता न थी। पाटण या उसके राजतंत्र में या उसके ठाठ-बाठ में राजा की सेवा के सिवाय उसे और किसी में आनन्द न आता था। अतः राजा और परमार के बीच, किसी व्यक्ति और उसके विश्वासपात्र निर्जीव शस्त्र के बीच जैसी प्रीति हो जाती है वैसी ही प्रीति थी।

उसके और राजा के मध्य में यह धारवाली बढ़ खड़ी देखकर पाटण के महापुरुष पहले तो कुढ़े किन्तु राजा के हठी और महत्वाकांक्षी स्वभाव से वे परिचित थे। अतः साये सिंह को न छेड़ने के उद्देश्य से सभी ने परमार से भाईचारे का व्यवहार स्थापित कर लिया। यदि कभी-कभी राजा की इच्छानुसार जगदेव अपनी सत्ता चलाता था तो वे इधर से आँखें मींच लेते थे। इतना ही नहीं कभी-कभी तो वे इस प्रकार व्यवहार करते थे मानो डरते हों कि कहीं जगदेव बिगड़ न खड़ा हो। परिणामतः उसका गर्व और उसकी प्रतिष्ठा बढ़े।

राजा ने परमार को जब भटराज बनाया तब तो कोई न बोला, किन्तु जब सेनापति का पद लेने की बात उठी तो सभी में खलबली मच गई। परिणामतः मीनलदेवी बीच में पड़ीं और यह आशय पूरा न होने दिया। किन्तु राजा जब मंत्रियों के साथ सलाह करता था तब परमार अधिकतर वहीं उपस्थित रहता था। जगदेव के कारण मालवी योद्धाओं ने पाटण में घर करना आरम्भ किया और छोटे-बड़े पदों का उपभोग करने लगे, और इस प्रकार राजा की पट्टणियों का गर्व कम करने की लालसा बढ़ती गई।

बलवान्, महत्वाकांक्षी, हठी और प्रतापी राजा के इस मान्य और विश्वासपात्र योद्धा को सभी विदेशी, किराए का प्रत्येक प्रकार का काम

करने वाला दास समझकर मन-ही-मन तिरस्कार के शब्द कहते थे; किन्तु किसकी मजाल जो उसके सामने एक शब्द भी बोल सके, एक पग भी बढ़ सके।

राजाने समझा मेरी सत्ता पूर्ण हो गई; जगदेवने समझा कि उसका स्थान निर्विघ्न हो गया, दरबारियों को लगा कि उनके और राजाके बीच का निर्दोष व्यवहार समाप्त हो गया। यह नूतन क्रम सदा का है और सदा रहेगा ऐसा सबने मान लिया—और बर्बरक पर विजय पाने वाले परमभट्टारक महाराजाधिराज दैवी और दुर्धर्ष सत्ता के अधिकारी हैं यह भी सब मानने लगे।

जगदेव परमार को भी यही मान्यता थी अतः आज उसे चैन न पड़ा। वह राजा के कमरे के बाहर अपनी चौकी पर लेटकर भवें तान रहा था। आज उसे बहुत बातें अच्छी न लगीं। महल में कोई ब्राह्मण के वेश में उसके बिना जाने घुस गया, उसने उसके सैनिक को बाँधा, वह उसके जाने बिना रानी से भेंट कर आया, रानी ने उसे अपमान करके निकाल दिया। उसके बिना जाने दो व्यक्ति महाराज से भेंट कर आए। उसके बिना जाने ही काक राजा के कमरे में जा घुसा और राजा का मान्य हो गया और उसे बुलाए बिना ही राजा ने उदा और काक के साथ मंत्रणा की। उसे ये सब असाधारण और अस्वाभाविक बातें अच्छी न लगीं।

उसे इस नवागन्तुक काक के प्रति अरुचि हो गई। उसने इस व्यक्ति के विषय में बहुत परिचय प्राप्त कर लिया था और लोककथाएं भी बहुत सुनी थीं। किन्तु ऐसी कथाओं में उसे श्रद्धा न थी। पाटण के बहुत-से दण्डनायकों, मंत्रियों और सेनापतियों के विषय में ऐसा ही सुना था, किन्तु कोई उसके सामने खरा न उतरा और इस समय इस नए व्यक्ति को उसका स्थान बताने के लिए उसके हाथ अकुला रहे थे।

सामने खड़े हुए एक सैनिक को उसने बुलाया—'नेमा!'

'बापू !'

'शम्भू को बुला तो !'

'जी' कहकर नेमा शम्भू को बुला लाया। शम्भू परमार का काम करता था और उसकी ओर से देख-रेख करता था।

'तो काकभट को उसका निवास-स्थान दिखा आया ?'

'हाँ, किन्तु उन्होंने ना कर दिया।'

'क्यों ?' जगदेव ने चकित होकर पूछा।

'उनके लिए वस्ता ने कमरा खोल दिया है।'

'कौनसा ?'

'शोभ महेता जिसमें लिखते हैं उसके निकट वाला कमरा।'

'किन्तु मैंने खुलवा दिए थे उनका क्या ?'

'वे कहते हैं कि मुझे अकेले को अधिक की क्या आवश्यकता !'

'कहना चाहिए था न कि महल का प्रबन्ध मेरे हाथ में है।'

'मैंने कहा तो हँसकर बोले कि मैं तो ऐसे कमरे में पड़ा हूँ कि किसी को आपत्ति न होगी।'

'शंभू ! वस्ता को बुला ला।' शंभू गया।

जगदेव को लगा कि आज का सूर्य उदय होने के साथ-साथ झंझट भी लेता आया है। राजमहल का संपूर्ण प्रबन्ध वही करता था, और उसमें परिवर्तन करने का किसी में साहस न था। उस पर मुंजाल महेता का नौकर वस्ता इस प्रकार काक के लिए प्रबन्ध करे यह उसे अपने गौरव और सत्ता पर चोट करने जैसा लगा। उसने काक के लिए अपने निवास-स्थान के नीचे के भाग में दो कमरे खोल दिए थे ताकि उसकी दृष्टि उस पर रहे; किन्तु यह कमरा तो ऊपर था जहाँ से महाराज, रानियाँ, मीनलदेवी, मुंजाल आदि के निवास-स्थानों में तुरन्त जाया जा सकता था। वह अपनी मूँछें ओठों के बीच में रखकर चबाने लगा।

इतने में शंभू वस्ता को ले आया। जगदेव राजमहल के कई लोगों को दूर-दूर रखता था। वे अधिकतर वृद्ध थे, और ऐसा कहा

जाता था कि वे मुंजाल महेता के विश्वासपात्र आदमी हैं। इसे सके जहाँ तक मुंजाल या उसके आदमियों पर खुले रूप से अधिकार जमाने में सार न था, ऐसी प्रेरणा जगदेव को बड़ी विचित्र रीति से हुई थी। और उसी प्रेरणा के अनुसार वह आजकल चलता भी था। किन्तु इस समय उसे लगा कि वस्ता ने उसकी सत्ता के क्षेत्र में अनधिकार प्रवेश किया है।

वस्ता वृद्ध था, किन्तु चतुर था। उसने मौन रहकर हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

'वस्ता! महाराज को आज्ञाओं का तुझे भान है ?'

'कैसी ?'

'कि महल की व्यवस्था मेरे सिवा कोई न करे।'

'मुझे मालूम है।'

'तो आज यह आज्ञा तूने कैसे भंग की ?'

'मैंने कहां भंग की ?' कुछ चकित होकर वस्ता ने कहा।

'मैंने सुना है तूने काकभट के लिए महल में कमरा खोल दिया है।'

'ओहो!' वस्ता हँसा, 'भटराज! यह तो ऐसे हुआ कि काक भट जी महाराज के साथ भोजन करके लौटे तो उनके लिए बैठने का स्थान न था। अतः मेरे पास उस कमरे की कुंजी थी तो मैंने खोल दिया। भटराज! उन बेचारे थके-माँदे अतिथि के लिए इतना-सा करना अपराध हो गया ?' वस्ता ने निर्दोष बात कही।

'बिस्तर आदि किसने दिया ?'

'मैंने।'

'किसकी आज्ञा से ?'

'अतिथि-सत्कार करने के लिए।' सादगी से वस्ता ने कहा।

'तुझे यह सब अधिकार किसने दिया ?' आँखें निकालकर जगदेव ने पूछा। उसे लगा मानो वह वृद्ध उसकी हँसी उड़ा रहा हो।

'ऐसा करने के लिए क्या अधिकार की आवश्यकता होती है ?' वस्ता मुस्काया ।

'अच्छी बात है । जाकर काक भटराज को कह आ कि उनके लिए मैंने नीचे चौक में दो कमरे खोल दिए हैं वहीं जाकर रहें । तेरा बताया हुआ कमरा उनके जैसे बड़े आदमियों को शोभा नहीं देता ।'

'बापू ! यह आपके गणों का काम है—मेरा नहीं । महल का प्रबन्ध आपके हाथ में है ।' वस्ता ने उपेक्षा से कहा ।

'तू और मेरे गण सभी महाराज का नमक खाते हो ।'

'खाते हैं ।'

'तो यह तुझे करना पड़ेगा ।'

'नहीं ।' वस्ता ने दृढ़ता से कहा ।

'क्यों नहीं ?' जगदेव गरजा ।

'मैंने कारण कभी का बता दिया ।'

'तू मेरी आज्ञा का अनादर करता है ?'

'हाँ ।'

'किसी की आज्ञा से या अपनी इच्छा से ?' जगदेव ने पूछा ।

'अपनी इच्छा से ।'

'ऐसा ? शंभू ! इसको बंदी बना ले ।'

'शंभू !' हँसकर वस्ता ने कहा, 'क्यों कष्ट करता है ? मुझे कोठरी बता, मैं वह चला ।' कहकर वस्ता आगे बढ़ा । शम्भू कहने लगा—'बापू !'

'अपनी आज्ञा का अनादर मैं नहीं सहन करूंगा ।' जगदेव ने चिंघाड़ की । शम्भू और वस्ता चले गए ।

'मुझे स्वयं को जाकर ही यह काम करना चाहिए ।' कहता हुआ जगदेव उठा, कमर पर तलवार लटकाई और काक से भेंट करने चला ।

: २० :

काक से भेंट

जिस समय जगदेव परमार काक के कमरे में उससे भेंट करने के लिए गया उस समय द्वारके सामने वाहड़ जिस व्यक्ति को काक समझकर पकड़ लाया था वह बैठा हुआ था।

'काक भटराज हैं?'

'सोये हुए हैं।' उस व्यक्ति ने कहा।

'कौन है?' अंदर से एक स्वर सुनाई पड़ा।

'यह तो मैं जगदेव परमार।'

'पधारिए।' काक की आवाज़ आई।

परमार अन्दर गया। एक छोटे-से हिंडोले पर नाम का गद्दा डालकर काक लेटा हुआ था। वह उठ बैठा।

'आओ परमार! आपने कैसे कृपा की? बैठो।' काक ने परमार को अपने पास बैठने का संकेत किया।

'वैसे ही!' जगदेव ने बैठते-बैठते मीठा उत्तर दिया, 'आपके लिए मैंने दो कमरे खुलवा दिए हैं यही कहने आया हूं।'

'अरे, क्यों कष्ट किया? मेरे लिए यहीं ठीक होगा।'

-'ऐसा कहीं हो सकता है?'

'मेरी इससे अच्छे स्थान में रहने की टेव नहीं है।'

'किन्तु महाराज की विशेष आज्ञा है।'

काक सावधान हो गया। इस भलमनसाहत में कुछ रहस्य दिखाई दिया।

'कह देना कि अब यहीं ठहर गया तो ठहर गया।'

'उन्हें बुरा लगेगा।'

'मैं मना लूंगा।' काक ने हंसकर कहा।

'ऐसा करने के लिए क्या अधिकार की आवश्यकता होती है ?' बस्ता मुस्कराया।

'अच्छी बात है। जाकर काक भटराज को कह आ कि उनके लिए मैंने नीचे चौक में दो कमरे खोल दिए हैं वहीं जाकर रहें। तेरा बताया हुआ कमरा उनके जैसे बड़े आदमियों को शोभा नहीं देता।'

'बापू! यह आपके गणों का काम है—मेरा नहीं। महल का प्रबन्ध आपके हाथ में है।' बस्ता ने उपेक्षा से कहा।

'तू और मेरे गण सभी महाराज का नमक खाते हो।'

'खाते हैं।'

'तो यह तुझे करना पड़ेगा।'

'नहीं।' बस्ता ने दृढ़ता से कहा।

'क्यों नहीं ?' जगदेव गरजा।

'मैंने कारण कभी का बता दिया।'

'तू मेरी आज्ञा का अनादर करता है ?'

'हाँ।'

'किसी की आज्ञा से या अपनी इच्छा से ?' जगदेव ने पूछा।

'अपनी इच्छा से।'

'ऐसा ? शंभू ! इसको बंदी बना ले।'

'शंभू!' हँसकर बस्ता ने कहा, 'क्यों कष्ट करता है ? मुझे कोठरी बता, मैं वह चला।' कहकर बस्ता आगे बढ़ा। शम्भू कहने गया—'बापू !'

'अपनी आज्ञा का अनादर मैं नहीं सहन करूंगा।' जगदेव ने चिंघाड़ की। शम्भू और बस्ता चले गए।

'मुझे स्वयं को जाकर ही यह काम करना चाहिए।' कहता हुआ जगदेव उठा, कमर पर तलवार लटकाई और काक से भेंट करने चला।

'भटराज ! आप मेरा अपमान करना चाहते हैं, क्यों ?' गर्व से हँसकर जगदेव ने दाढ़ी पर हाथ रखा।

'नहीं, केवल मैं अपमान सहन नहीं करता।'

'भटराज ! आपको किसी ने भ्रम में डाल दिया है। मैं किसी का अपमान नहीं करता।'

'परमार ! बिना अधिकार कोई मुझ पर सत्ता जमाने आए तो मैं उसे अपमान ही समझता हूं।'

'भटराज ! महल में मेरा ही अधिकार है।'

'मैं उसे स्वीकार नहीं करता।'

'क्यों ?'

'परमार ! तुम्हारा बल अगाध समझा जाता है, तुम्हारे मालवी वीर जिसे चाहे पकड़कर पीट सकते हैं। इस सबका जैसा चाहे उपयोग करो। मैं सामना करने के लिए तत्पर हूं।' काक ने निश्चिंतता से हिंडोले को धक्का देते हुए कहा।

'भटराज ! आप व्यर्थ का वैर बाँध रहे हैं।' हिंडोले पर से क्रोध में उतरते हुए जगदेव ने कहा, 'मुझसे शत्रुता करने वाले किसी पट्टणी का भला नहीं हुआ।'

'और—' उपेक्षा से मुस्कराकर काक ने कहा, 'किसी विदेशी ने मुझ पर सत्ता जमाने का प्रयत्न करके लाभ नहीं उठाया।'

'भटराज ! आपकी जिह्वा बड़ा बुरा परिणाम लाएगी।' जगदेव का हाथ तलवार पर गया।

'तुमसे कहीं अधिक बलवानों को मेरी जिह्वा ने जीवित जला दिया है।' धीरे से हिंडोले परसे उतरते हुए काक बोला, 'तुम्हारे हाथ अकुला रहे हैं, क्यों ? अच्छी बात है। खेमा ! मेरा खड्ग ला तो।' तिरस्कार से काक बोला, 'अभ्यास किये बहुत समय हो गया है, पुनः ताजा हो जायगा।'

जगदेव को एकदम भान हुआ। वह नम्र हो गया।

'भटराज ! क्षमा करो। मुझे तनिक क्रोध आगया था। क्षमा करो। 'महाराज जानेंगे तो क्या कहेंगे?' जयसिंह देव का स्मरण होते ही पर-मार काँप उठा।

'कोई बात नहीं। यह तो विनोद ही हो रहा था।'

'नहीं, नहीं, यह कैसे हो सकता है? भटराज! क्षमा करो,' कहकर चतुर जगदेव ने हाथ जोड़े, 'आपने मुझे व्यर्थ ही उत्तेजित कर दिया।'

'घबराओ नहीं। हाँ, एक बात और कहूँ, नहीं तो फिर रह जायगी। तुम्हारे जैसे परमार को बल और शौर्य तो धारा के परमार के यहाँ शोभा देता है; परमार के कट्टर शत्रु पाटण के राजा के यहाँ नहीं,' काक ने चाबुक मारा। 'परमार, बैठो, एक दूसरी बात करनी है।'

[illegible] इतनेमें एक वृद्ध अनुचर आया जिसे देव-

'मैं फिर भेंट करूंगा।' प्रत्येक शब्द पर भार देकर जगदेव ने कहा।

काक सीधा होकर कठोर दृष्टि से देखने लगा। 'तुम क्या कह रहे हो यह भी मालूम है?' उसने धीरे-से पूछा।

'हाँ, क्यों?'

'मुंजाल महेता बुलाएं और कोई न जाय, इसका अर्थ क्या होता है, मालूम है?'

'मैं जानता हूं कि वे महाआमात्य हैं। मुझे महाराज के पास जाना है।'

काक स्थिर नयनों से देखने लगा।

'जगदेव! चले जाओ!' उसने कठोरता से कहा, 'इतने वर्ष यहाँ रहकर भी मुंजाल को नहीं पहचानते यह आश्चर्य की बात है। जाओ, नहीं तो यह अनुचर पुनः आएगा।'

काक के बोलने का ढंग इतना गंभीर और सत्तापूर्ण था कि जगदेव मौन होकर अनुचर के पीछे हो लिया। उसका गर्विष्ठ हृदय फट रहा था।

काक मुस्कराया। 'खेमा!' उसने कहा, 'जा, जाकर भंगी को पूछ आ, लीलादेवी को अवकाश है? हो तो भेंट कर कृतार्थ होऊं।'

'जो आज्ञा।'

: २१ :

परमार की चिन्ता

जगदेव के अन्तर में क्रोध की आँधी चल रही थी। लीलादेवी, काक और मुंजाल इन तीनों ने आज उसे पैरों की रज-सा समझ लिया

'भटराज ! क्षमा करो । मुझे तनिक क्रोध आगया था । क्षमा करो । 'महाराज जानेंगे तो क्या कहेंगे ?' जयसिंह देव का स्मरण होते ही परमार काँप उठा ।

'कोई बात नहीं । यह तो विनोद ही हो रहा था ।'

'नहीं, नहीं, यह कैसे हो सकता है ? भटराज ! क्षमा करो,' कहकर चतुर जगदेव ने हाथ जोड़े, 'आपने मुझे व्यर्थ ही उत्तेजित कर दिया ।'

'घबराओ नहीं । हाँ, एक बात और कहूं, नहीं तो फिर रह जायगी । तुम्हारे जैसे परमार का बल और शौर्य तो धारा के परमार के यहाँ शोभा देता है; परमार के कट्टर शत्रु पाटण के राजा के यहाँ नहीं,' काक ने चाबुक मारा । 'परमार, बैठो, एक दूसरी बात करनी है ।'

'नहीं, अब मैं जाऊं —' इतनेमें एक वृद्ध अनुचर आया जिसे देखकर जगदेव अटक गया ।

'परमार !' उसने आकर कहा, 'महाआमात्य जी बुलाते हैं ।'

'कौन ?' साश्चर्य जगदेव ने पूछा । उसका मुंह कुछ उतर गया ।

'मुंजाल महता जी !' उस वृद्ध ने कहा ।

काक की आँखें कुछ चौड़ी हो गईं । जगदेव घबरा गया था यह स्पष्ट दिखाई दे रहा था । जहाँ तक सम्भव हो वह मुंजाल से भेंट नहीं करता था और न मुंजाल ही उसे बुलाता था । जगदेव का मुंजाल से परिचय न था किन्तु राजा को उसे अत्यंत मान देते देखकर वह भी उससे सम्मान के साथ दूर ही रहता था । आज जब उसके गर्व पर चोटें पड़ रही थीं तो इस प्रकार का बुलावा उसे अच्छा न लगा ।

'कहना, तनिक काम में लगा हूं, फिर आकर भेंट कर लूंगा ।' कुछ अभिमान से जगदेव ने कहा ।

उसकी साधारण स्थिति होती तो परमार इस प्रकार कहने का स्वप्न में भी विचार न करता । किन्तु उसका मस्तिष्क ठिकाने न था । यह उत्तर सुनकर काक और अनुचर दोनों चकित होगए ।

'आपने क्या कहा ?' अनुचर ने स्पष्ट पूछा ।

'मैं फिर भेंट करूंगा।' प्रत्येक शब्द पर भार देकर जगदेव ने कहा।

काक सीधा होकर कठोर दृष्टि से देखने लगा। 'तुम क्या कह रहे हो यह भी मालूम है ?' उसने धीरे-से पूछा।

'हाँ, क्यों ?'

'मुंजाल महेता बुलाएं और कोई न जाय, इसका अर्थ क्या होता है, मालूम है ?'

'मैं जानता हूं कि वे महाअमात्य हैं। मुझे महाराज के पास जाना है।'

काक स्थिर नयनों से देखने लगा।

'जगदेव! चले जाओ!' उसने कठोरता से कहा, 'इतने वर्ष यहाँ रहकर भी मुंजाल को नहीं पहचानते यह आश्चर्य की बात है। जाओ, नहीं तो यह अनुचर पुनः आएगा।'

काक के बोलने का ढंग इतना गंभीर और सत्तापूर्ण था कि जगदेव मौन होकर अनुचर के पीछे हो लिया। उसका गर्विष्ठ हृदय फट रहा था।

काक मुस्कराया। 'खेमा!' उसने कहा, 'जा, जाकर मंगी को पूछ आ, लीलादेवी को अवकाश है ? हो तो भेंट कर कृतार्थ होऊं।'

'जो आज्ञा।'

: २१ :

परमार की चिन्ता

जगदेव के अन्तर में क्रोध की आँधी चल रही थी। लीलादेवी, काक और मुंजाल इन तीनों ने आज उसे पैरों की रज-सा समझ लिया

'भटराज ! क्षमा करो। मुझे तनिक क्रोध आगया था। क्षमा करो। 'महाराज जानेंगे तो क्या कहेंगे ?' जयसिंह देव का स्मरण होते ही परमार काँप उठा।

'कोई बात नहीं। यह तो विनोद ही हो रहा था।'

'नहीं, नहीं, यह कैसे हो सकता है ? भटराज ! क्षमा करो,' कहकर चतुर जगदेव ने हाथ जोड़े, 'आपने मुझे व्यर्थ ही उत्तेजित कर दिया।'

'घबराओ नहीं। हाँ, एक बात और कहूँ, नहीं तो फिर रह जायगी। तुम्हारे जैसे परमार का बल और शौर्य तो धारा के परमार के यहाँ शोभा देता है; परमार के कट्टर शत्रु पाटण के राजा के यहाँ नहीं,' काक ने चाबुक मारा। 'परमार, बैठो, एक दूसरी बात करनी है।'

'नहीं, अब मैं जाऊं —' इतनेमें एक वृद्ध अनुचर आया जिसे देखकर जगदेव अटक गया।

'परमार !' उसने आकर कहा, 'महाअमात्य जी बुलाते हैं।'

'कौन ?' साश्चर्य जगदेव ने पूछा। उसका मुँह कुछ उतर गया।

'मुंजाल महेता जी !' उस वृद्ध ने कहा।

काक की आँखें कुछ चौड़ी हो गईं। जगदेव घबरा गया था यह स्पष्ट दिखाई दे रहा था। जहाँ तक सम्भव हो वह मुंजाल से भेंट नहीं करता था और न मुंजाल ही उसे बुलाता था। जगदेव का मुंजाल से परिचय न था किन्तु राजा को उसे अत्यंत मान देते देखकर वह भी उससे सम्मान के साथ दूर ही रहता था। आज जब इसके गर्व पर चोटें पड़ रही थीं तो इस प्रकार का बुलावा उसे अच्छा न लगा।

'कहना, तनिक काम में लगा हूँ, फिर आकर भेंट कर लूँगा।' कुछ [illegible] जगदेव ने कहा।

'मैं फिर भेंट करूंगा।' प्रत्येक शब्द पर भार देकर जगदेव ने कहा।

काक सीधा होकर कठोर दृष्टि से देखने लगा। 'तुम क्या कह रहे हो यह भी मालूम है?' उसने धीरे-से पूछा।

'हाँ, क्यों?'

'मुंजाल महेता बुलाएं और कोई न जाय, इसका अर्थ क्या होता है, मालूम है?'

'मैं जानता हूं कि वे महाअमात्य हैं। मुझे महाराज के पास जाना है।'

काक स्थिर नयनों से देखने लगा।

'जगदेव! चले जाओ!' उसने कठोरता से कहा, 'इतने वर्ष यहाँ रहकर भी मुंजाल को नहीं पहचानते यह आश्चर्य की बात है। जाओ, नहीं तो यह अनुचर पुनः आएगा।'

काक के बोलने का ढंग इतना गंभीर और सत्तापूर्ण था कि जगदेव मौन होकर अनुचर के पीछे हो लिया। उसका गर्विष्ठ हृदय फट रहा था।

काक मुस्कराया। 'खेमा!' उसने कहा, 'जा, जाकर मंगी को पूछ आ, लीलादेवी को अवकाश है? हो तो भेंट कर कृतार्थ होऊं।'

'जो आज्ञा।'

: २१ :

परमार की चिन्ता

जगदेव के अन्तर में क्रोध की आँधी चल रही थी। लीलादेवी, काक और मुंजाल इन तीनों ने आज उसे पैरों की रज-सा समझ लिया

था। इतने वर्षों के पश्चात् यह क्या? उसे काक ने सावधान किया यह उसे न सुहाया, और मुंजाल महेता ने आज्ञा देकर बुलवाया, यह उसे भला न लगा। उस पर काक के शब्दों ने उसके गर्व पर आघात किया था। वह विदेशी था, सेवक था, वह अपने योग्य स्थान पर न था, यह उसे प्रथम बार मालूम हुआ। फिर भी वह हठी होकर अपना गर्व बनाए रहा।

गर्व से सिर ऊँचा करके संग्राम की मूर्ति जैसी प्रचंड भयानक दीखने वाली मूंछ पर हाथ रखकर वह महाअमात्य के निकट गया। मुंजाल महेता से उसका कभी सीधा काम न पड़ा था अतः आत्मगौरव को सुरक्षित रखने के लिए उसे यही उचित साधन जान पड़े।

मुंजाल गद्दी पर बैठा हुआ था। गौरवशाली मुख पर सत्ता की रेखाओं में सज्जनता की रेखाएं मिली हुई थीं। एक ओर एक जैन मुनि बैठे हुए थे। थोड़ी दूर पर शोभ कान में लेखनी खोंसकर अभी-अभी के लिखे आज्ञा-पत्र पर रेत डाल रहा था। दो व्यक्ति दूर घुटने टेक कर बैठे हुए थे। वातावरण किसी धनाढ्य और श्रद्धालु धार्मिक के

हो न?' मंत्री की मुस्कराहट चित्त को हर लेने वाली थी।

'हां!' तनिक गर्व से होंठ बन्द करते हुए जगदेव ने कहा।

मन्त्री की मुस्कराहट जाती रही। उसने शान्त रुक्षता से जगदेव के मुख की ओर देखा। जगदेव घमंड में भान खोकर तिरस्कार से मुस्करा उठा।

'एक घड़ी में वस्ता जहां भी हो वहां से खोज लाओ।' शांति से मुंजाल ने कहा।

'महेता जी!—' जगदेव बोलने लगा तो क्षोभ से या अभिमान के आवेश से स्वर मोटा और विनयहीन हो गया। वहाँ बैठे हुए व्यक्तियों को ऐसा लगा मानो यमराज के पदार्पण से जैसा कंपन होता है वैसा ही कंपन हुआ। मन्त्री का विशाल सिर गर्व से ऊँचा उठा। सज्जनता से शोभायमान उसके मुख पर निश्चल गौरव प्रकट हुआ। उसके कपाल पर शांति थी किन्तु आँखों में मानो ज्वालामुखी फट पड़े थे। उनकी ज्वाला देखकर जगदेव की जिह्वा तालू से चिपक गई।

'परमार!' जिस स्वर से पाटण का अरिदल काँपता था उसमें वह गरजा। उसमें प्रभाव था, गर्व था, और दुःसह शांत सत्ता थी, 'एक घड़ी में—एक घड़ी में या तो वस्ता को खोजकर लाओ या अपने शस्त्र और आज्ञा-पत्र शोभ को सौंपकर यहाँ उपस्थित हो जाओ।'

जगदेव का सिर चक्कर खाने लगा। इस आमात्य का मस्तिष्क फिर गया है या वह स्वयं पागल हो गया है? शस्त्र और आज्ञा-पत्र शोभ महेता को सौंपने का अर्थ वह समझता था। क्या एक अनुचर को उसका स्थान दिखाने के लिए उसके जैसे योद्धा को, भटराज को, महाराज के विश्वासपात्र को पदभ्रष्ट करके दशनिकाले का दण्ड दिया जायगा?

'किन्तु—' काँपते हुए होंठों से वह बोला।

पुनः वे आँखें चमक उठीं, 'मेरी आज्ञा का पालन न हो जाय तब

तक मैं किसी की कोई बात नहीं सुनता।' मुंजाल ने प्राणघातक तिरस्कार से कहा। 'जाओ शोभ ! मैंने कहा वह सुन लिया ?'

'जी हां।' शोभ महेता ने कहा।

खड़ा रहे, गिर पड़े या धरती पर बैठ जाय—जगदेव को कुछ न सूझा। वह चुपचाप चला गया।

जगदेव के मुख पर फेन आगया। क्या मालवे से यहाँ इन सभी के पद की रज बनने के लिए लाया गया था ? उसने क्या अपराध किया था ? उसे जयसिंहदेव महाराज का स्मरण हुआ। बेचारा पाटण का नरेश ! इनसे अपने महल में भी सत्ता नहीं दिखाई जा सकती। जगदेव का स्वामि-भक्त रक्त खौलने लगा। इस समय उसके स्वामी को उसकी बहुत आवश्यकता थी। उसकी सत्ता की रक्षा करना उसका काम था। यह उनकी कृतज्ञता की कसौटी थी। स्वयं परमार था और वीर था। कैसे किसी को अपने स्वामी की सत्ता पर आक्रमण करने दे सकता है ? उसके प्रचंड शरीर में पवित्र और निःस्वार्थ रोष का संचार हुआ। उसकी अपनी बात तो अलग, उसके स्वामी ऐसी दशा में ! कैसी बात है ? शीघ्रता से पाँव उठाता हुआ वह महाराज के निकट गया।

जयसिंहदेव मुरार के साथ बातें करते हुए बहुत हंस रहे थे।

'और मालवी सैनिक को एक ब्राह्मण ने बाँधा—और ब्राह्मण रानी के आवास में चला गया।' राजा को बहुत ही हंसी आ रही थी मानो कुछ समझ ही में न आ रहा हो।

'किन्तु ब्राह्मण....हा—हा—मुरार यह तो नितांत गप्प है।' जगदेव का मुख हँसी से लाल हो गया। 'और रानी...लीला...बुद्धिमान् रानी....हा—हा....ब्राह्मण ! गप्प...नितांत गप्प।'

'अन्नदाता !' मानभंग और रोष के कारण फूले हुए मुख से जगदेव बोला। उसकी वाणी रोते हुए बच्चे की-सी थी, 'गप्प नहीं, सच्ची बात है।'

'क्या सच्ची बात है ?' राजा ने हंसकर कहा, 'एक ब्राह्मण तेरे

सैनिक को बांधकर अंदर चला गया। हा-हा परमार!' कृत्रिम गंभीरता से राजा बोला, 'महल की ऐसी देख-भाल करता है? यह ब्राह्मण गया कहाँ?'

'महाराज! मैं उसीको खोज रहा हूं किन्तु मिलता ही नहीं।'

'अररर!' महाराज हंसी न रोक सके।

'परमार! यह....क्या....हा....हा....होने लगा है?'

'अन्नदाता! आप हंसते हैं और मेरे प्राण जा रहे हैं।'

'और यदि मैं न हंसूं तो तू जीवित रहेगा? ले जगदेव, यह चुप हुआ। तेरे प्राण क्यों जा रहे हैं—कब जा रहे हैं—कहाँ जा रहे हैं—कह डाल।' कहकर राजा पुनः हंसा।

'देव! देव! आप हंसते हैं—उधर आपकी सत्ता का आज सत्यानाश हो गया।'

'हाय, हाय!' सहानुभूति दिखाते हुए राजा ने कहा।

'सुनिए अन्नदाता! एक ब्राह्मण ने हमारे एक मालवी सैनिक को बाँधा—'

'यह तो जानता हूं।'

'वह रानी के कमरे में अन्तर्धान हो गया—'

'यह भी जानता हूं।'

'और रानी को जब मैं पूछने गया तो, महाराज! मुझे दुत्कारकर निकाल दिया।'

'अरे! मेरे परमार को? मैं रानी से समझ लूंगा।'

'किन्तु देव! और सुनिए। वस्ताने मेरी आज्ञा बिना काक भटराज के लिए कमरा खोल दिया—'

'वस्ता है ही ऐसा।'

'मैंने वस्ता को बंदी बना लिया—'

'अच्छा किया।'

'और मैंने भटराज के लिए नीचे कमरे खुलवा दिए तो उन्होंने वहाँ जाना अस्वीकार कर दिया।'

'यह काक भी बहुत हठी है।' राजा ने हंसकर कहा।

'और देव ! मुझे मुंजाल महेता ने बुलवाया।'

'क्यों ?' राजा ने गम्भीर होकर पूछा।

'सबके सामने अपमान किया।'

'क्यों ?'

'मुझे कहा कि घड़ी-भर में वस्ता को ले आ, नहीं तो अपने शस्त्र और आज्ञा-पत्र शोभ महेता को सौंप दे।'

'क्या कहता है ?'

'देव ! इसमें मेरी प्रतिष्ठा नहीं जाती, आपकी जाती है। अपाकी सत्ता भंग करने की यह युक्ति है।'

'परमार ! मैं रानी और काक दोनों को समझ लूंगा, किन्तु वस्ता को छोड़ दे।'

'किन्तु महाराज—'

राजा ने धीरे-से कहा, 'परमार ! शस्त्र और आज्ञा-पत्र अच्छे नहीं लगते क्या ?'

जगदेव ने घबराकर राजा के सामने देखा। राजा ने जो कुछ कहा वह स्पष्ट न सुन सका ऐसा कुछ उसे लगा।

'देव !—'

'जगदेव ! मेरी मान और वस्ता को छोड़ दे।'

परमार निराश हो गया। उसने रूठे बच्चे-सा मुंह बनाकर कहा, 'देव ! आपकी बात आप जानें। मैं तो यही करूंगा।'

'जगदेव ! देख, इसके स्थान पर मैं तुझे कल अधिक सत्ता दूंगा। और अब काक भी आगया है अतः तुझे अधिक सत्ता की आवश्यकता पड़ेगी ही, नहीं तो उसे वश में रखना दूभर होगा।'

'लगता तो ऐसा ही है।'

'जगदेव ! अपनी अश्वशाला में से अच्छे-से-अच्छे दो अश्व काऊ के लिए तैयार रखना और अपने आदमियों से कह देना कि उसके आने-जाने में बाधा न दें।'

'जो आज्ञा।'

'और कल प्रातःकाल हम चलकर चुपचाप तनिक शिविर की दशा देख आयंगे।'

'जो आज्ञा।'

'परमार ! बिलकुल घबराना मत। मेरी सत्ता को कोई छू भी नहीं सकता।'

जगदेव ने झुककर प्रणाम किया और विदा हुआ।

'मुरार !' राजा पुनः हंस पड़ा, 'जा, रानी को सूचना दे आ कि आज मैं उनके आवास ही में भोजन करूँगा और सोऊंगा।'

'जो आज्ञा !'

: २२ :

प्रेमकुंअर का निश्चय

प्रेमकुंअर नागर मंत्री शोभ की पत्नी थी। वह लंबी, गोरी और कुछ मोटी थी। उसकी आँखें विशाल और भावपूर्ण थीं, उसके होंठ कुछ मोटे और विलास की ओर झुकाव प्रदर्शित कर रहे थे। उसके गालों पर यौवन की लाली थी, उसके नन्हें कपाल पर बड़ी-सी चंदन-रेखा शोभा दे रही थी, और उसके होंठों से पान की लालिमा कभी अदृष्ट न होती थी। उसके शरीर की रेखाएं भरी हुई थीं—ऐसा लगता था मानो विलासवृत्ति का वह मूर्तरूप हो।

· पाटण के प्रथम नागरकुल के रत्न की पटरानी को शोभा दें वैसे उसके हाव-भाव थे। वह विभिन्न प्रकार के वस्त्र धारण करती और शृंगार करती थी। वह धनाढ्य, आनंदमय और गर्विष्ट कुल को शोभा देने वाले ठाठ-बाठ से रहती थी। रानियों से भी उसकी वेश-भूषा अधिक आकर्षक लगती थी और उसके आभूषणों की चमक के सामने महाराज का शृंगार भी फीका पड़ जाता था।

जीवन का उल्लास उसे सदा आकर्षित करता था। वह चलती तो उसका शरीर झूमता, उसकी कमर लचकती और उसके पांव थिरक उठते—और पृथ्वी कांप उठती। उसकी आंखें दो क्षण के लिए भी एक-सी न रहतीं वरन् नए-नए भावों से दीप्त हो उठती थीं। कोई भी उस पर दृष्टि डालता कि 'नखराली' स्त्रियों का प्रथम लक्षण तुरंत दिखाई पड़ जाता; उसका घूँघट कहाँ-से-कहाँ खिसक जाता था और दर्शक को ऐसा लगे मानो लज्जा से उसे ठीक करने के लिए रुक गई हो, ऐसा वह प्रयत्न करती थी।

बाहर के संसार को वह कुछ गिनती ही न थी। उसके अंतर में पहले वह स्वयं थी, फिर उसके रास-रंग थे, फिर वस्त्राभूषण थे और फिर उसका 'महेता' अर्थात् शोभ मंत्री था। अपने को मध्यबिन्दु मानकर अपने से अपने महेता तक त्रिज्या खींचकर जो वृत्ताकार बनाती उसमें स्वर्ग, मृत्यु और पाताल—यह भव और वह भव—सभी समा जाते।

आज उसको क्रोध आ रहा था। मीनलदेवी ने उस पर लीलादेवी आदि रानियों को क्रीड़ाप्रिय बनाकर बिगाड़ देने का आरोप लगाया था। अब इसमें उसका क्या अपराध? रानियाँ उसके जैसी रसिक न हों, या उसके महेता जैसा स्नेही पति उन्हें न मिला हो, तो उसमें इस बेचारी का क्या दोष? और बिना दोष के उस पर आक्षेप! मीनलदेवी में, इस उम्र में तो अधिक बुद्धिमानी होनी चाहिए। उन्होंने तरुणावस्था में क्या क्या किया होगा! अब इतने वर्षों पश्चात् उन्हें भी कहने की सूझी।

लोग यौवनावस्था में आनन्द न करें तो क्या पति और संसार को छोड़ने के पश्चात् करें !

वह लीलादेवी का कमरा सजा रही थी। समर्थ उसकी सहायता कर रही थी। समर्थ उसे अच्छी न लगती थी। वह उसे बहुत बातूनी समझती थी क्योंकि वह उसे दिन-भर उसके संसार की बातें पूछती थी। इतनी बड़ी होकर जो बिना घर के इधर-उधर भटकती फिरे उसे और क्या कहा जाय !

मीनलदेवी से बदला लेने का एक मार्ग उसे सूझा। यदि सभी रानियों को वह क्रीड़ाप्रिय बना दे तो मीनलदेवी की खीझ का पार न रहेगा और अपने बुढ़ापे में सभी को वृद्ध बनाने की इच्छा रखने वाली से बदला भी पूरा-पूरा ले लिया जायगा। और इस युक्ति का प्रयोग उसने लीलादेवी पर ही करने की सोची क्योंकि वे बहुत गर्वीली, उदासीन और गम्भीर थीं।

'उनको ऐसा बनाऊँ कि कोई क्या कहे,' प्रेमकुंअर बड़बड़ाई और अधिक उत्साह से उसने कमरा सजाना आरम्भ किया।

'यह समर्थ न जाने किस घड़ी में जन्मी है। कटकट,कटकट किया ही करती है,' वह बड़बड़ाई।

किन्तु जब समर्थ को बोलने की इच्छा होती थी तो सुनने वाले की वह चिन्ता न करती थी।

'प्रेमा भाभी ! आज ऐसा मज़ा आया ! रानी देवी चकरा गईं।' धीमे-से उसने कहा, 'ऐसी चकराईं—ऐसी—'कहकर समर्थ हंसने लगी।

'किस प्रकार ?' बिना ध्यान दिए प्रेमकुंअर के पूछा।

'आज उनके कमरे से एक व्यक्ति निकला।'

'हैं !' प्रेमकुंअर ने एकदम ध्यान देकर आश्चर्य से पूछा।

'अंदर के कमरे में घुस गया था।'

'फिर ?'

'मैंने उसको दूसरे रास्ते से जाने दिया,' समर्थ हंसने लगी, 'ऐसा मज़ा—'

हिंडोले पर फूल टाँगते हुए प्रेमकुंअर ने पूछा—'कैसा ?'

'अरे ऐसा—'

प्रेमकुंअर फूल टाँगना छोड़कर समर्थ के निकट गई।

'कैसा ?'

'देवी आईं, किन्तु वह कैसे मिलता ? ऐसी घबराईं कि रुंआसी हो गईं।'

'तूने कैसे जाना ?'

'मैं लौटकर फिर आई न ?'

'हं !' प्रेमकुंअर ने कहा और मन-ही-मन बोली, 'अब समझी कि देवी ऐसी उदास-उदास क्यों रहती हैं।' फिर ज़ोर से बोली, 'कौन था वह ?'

'कोई पुजारी ब्राह्मण।'

'धत्तेरे की। मर यहाँ से।' धारणा सच न निकलने से प्रेमकुंअर ने कहा।

'देखो, प्रेमा भाभी ! मैं आपको मरने के लिए कहूँगी तो कैसा लगेगा ? मुझे तो कह देती हो।' होंठ-पर-होंठ रखकर समर्थ बोली—'और मैं आपको आपके सभी को—'

इतने में एक अपरिचित व्यक्ति आया। 'महारानी देवी के पास समय है ?'

'क्यों ?' प्रेमकुंअर ने पूछा।

'काक भटराज भेंट करना चाहते हैं।'

'का—क !' समर्थ चीत्कार कर उठी।

'क्या बात है समर्थ ?' प्रेमकुंअरने कठोरतासे कहा, 'बोलना आता है या नहीं ?' और फिर प्रेमा की ओर घूमकर कहा, 'भाई ! ठहरो, मैं पूछ देखती हूं।' प्रेमकुंअर अंदर गई।

रानी पलंग पर बैठी हुई थीं। 'देवी ! भटराज काक कहते हैं कि
5 पास समय हो तो वे भेंट करने आवें।'
रानी तनिक मुस्कराई। उस मुस्कराहट को प्रेमकुंअर ने हृदय
ा लिया। 'ह , कह दे कि मुझे अवकाश है। प्रेमू ! तू अभी फूल
ग रही है ? तू न होती तो मेरा क्या होता ?' रानी ने कहा।
'देवी ! यह क्या कहती हैं ?' उमड़ती हुई लज्जा को न रोक पा
हो इस प्रकार मुंह नीचा करके मुस्कराते हुए, अंग लचकाते हुए
'अर ने कहा। 'आज इनका मन कुछ आनंदित है,' इस प्रकार
ो-मन बड़बड़ाती हुई प्रेमकुंअर लौट गई और जाकर खेमा को
[दिया।
'अच्छा हुआ यह पापी यहाँ आया।'
कैसा पापी ?' प्रेमकुंअर ने ध्यान किए बिना ही पूछा।
'यही काक !'
तेरा उसने क्या बिगाड़ा है पगली ?'
'उसने नहीं बिगाड़ा तो फिर किसने बिगाड़ा ?' बहुत ज़ोर देकर
ने पूछा।
प्रेमकुंअर ने सिर हिलाया और मन-ही-मन प्रमाणपत्र दिया,
कुल बुद्धू है।'
थोड़ी देर तक दोनों काम करती रहीं और प्रेमकुंअर के
ौशल के प्रताप से कमरे के रूप-रंग में आमूल परिवर्तन हो
।
कुछ देर पश्चात् किसीका पगरव सुनाई पड़ा। दोनों घूमीं। द्वार
5 भव्य और कांतिमान् व्यक्ति खड़ा हुआ था। प्रेमकुंअर के सिरसे
[खिसक गया। उसे उतटा खोंसकर पुनः ठीक किया। फिर
नीचे देखकर आँखें ऊँची कीं। उसकी देह-लता डोल रही थी
उसके मुख पर घबराहट के चिह्न थे। इसमें प्रेमू का कोई दोष
।। जिस प्रकार कोयल अपने आपको सर्वोपरि प्रमाणित करने के

'मैंने उसको दूसरे रास्ते से जाने दिया,' समर्थ हंसने लगी, 'ऐसा मज़ा—'

हिंडोले पर फूल टाँगते हुए प्रेमकुंअर ने पूछा—'कैसा ?'

'अरे ऐसा—'

प्रेमकुंअर फूल टाँगना छोड़कर समर्थ के निकट गई ।

'कैसा ?'

'देवी आईं, किन्तु वह कैसे मिलता ? ऐसी घबराईं कि रुंआसी हो गईं ।'

'तूने कैसे जाना ?'

'मैं लौटकर फिर आई न ?'

'हं !' प्रेमकुंअर ने कहा और मन-ही-मन बोली, 'अब समझी कि देवी ऐसी उदास-उदास क्यों रहती हैं ।' फिर ज़ोर से बोली, 'कौन था वह ?'

'कोई पुजारी ब्राह्मण ।'

'धत्त् रे की । मर यहाँ से ।' धारणा सच न निकलने से प्रेमकुंअर ने कहा ।

'देखो, प्रेमा भाभी ! मैं आपको मरने के लिए कहूँगी तो कैसा लगेगा ? मुझे तो कह देती हो ।' होंठ-पर-होंठ रखकर समर्थ बोली—'और मैं आपको आपके सभी को—'

इतने में एक अपरिचित व्यक्ति आया । 'महारानी देवी के पास समय है ?'

'क्यों ?' प्रेमकुंअर ने पूछा ।

'काक भटराज भेंट करना चाहते हैं ।'

'का—क !' समर्थ चीत्कार कर उठी ।

'क्या बात है समर्थ ?' प्रेमकुंअरने कठोरतासे कहा, 'बोलना आता है या नहीं ?' और फिर प्रेमा की ओर घूमकर कहा, 'भाई ! ठहरो, मैं पूछ देखती हूं ।' प्रेमकुंअर अंदर गई ।

हैं !' वह नीचे देखती हुई आगे आई, काक के सामने गई, मुंह तनिक नीचा किए ऊपर देखकर एक दृष्टि डाली और चली गई। समर्थ क्रोध में मुंह चढ़ाकर चली गई। काक उस समय रानी को प्रणाम कर रहा था।

'समर्थ ! मंगी को भेजना।' रानी ने कहा।

'अच्छा देवी।'

: २९ :

पुरुष को वश में करने की कला

जब वे दोनों चली गईं तो रानी हिंडोले पर बैठ गईं और काक सामने भूमि पर बैठ गया।

'काक ! तुझे कुछ हुआ ?'

'कुछ भी नहीं। महाराज की मुझ पर अत्यंत कृपा है।'

'अब समझ में आया।'

'क्या ?'

'मुंजाल महेता कहते हैं कि मैं तुझे अच्छी तरह पहचानती नहीं। तुझे कुछ नहीं हो सकता।'

'महेताजी की मुझ पर विचित्र श्रद्धा है। आप क्या मेरे लिए गई थीं ?'

'हाँ, तुझे उस कमरे में न देखकर घबरा गई थी।'

'देवी ! आप मेरे लिए बहुत चिंता न कीजिए।'

रानी शांति से देखने लगी। विषय पलटा, 'काक ! रेवापाल कैसा है ?'

लिए कुहुक उठती है उसी प्रकार यह इस विलासी युवती के व्यवहार का एक ढंग था। इसे देखकर सबका ध्यान उधर जाता और शोभ महेला की मोहक मानिनी के चरणों पर हृदयों का ढेर लग जाता। नवागन्तुक थोड़ा-सा मुस्कराया। इस व्यवहार से वह स्तब्ध हो गया हो ऐसा कोई चिह्न प्रकट न हुआ।

समर्थ से न रहा गया। वह एकदम कूदकर प्रेमू के पास गई। 'देवी के कमरे में प्रातःकाल जो ब्राह्मण था यह वही है,' वह धीरे-से बोली। प्रेमू ने उसे ध्यान से देख, समर्थ का हाथ दबाया और उसका स्वागत किया, 'पधारिए भटराज !' मीठे, धीमे, भावसूचक और लजीले स्वर में नीचे देखती हुई नागर कन्या बोली।

'देवी हैं ?' नवागन्तुक ने मधुरता से पूछा और उसकी तीक्ष्ण दृष्टि कमरे के चारों ओर घूम गई।

'अभी बुला लाती हूं।' कहकर आँचल ठीक करती, नीचे देखती और शरीर को लहराती हुई प्रेमू अंदर गई। जाते-जाते वह बड़बड़ाई, 'काक भटराज रानी के कमरे में ? धत्तेरे की लीलारानी ! तू भी विलक्षण है ! कैसी तेरी प्रकृति और कैसा तेरा ढोंग ! अरे तेरी की ! और खोज भी कैसे निकाला ? मेरे फूल आज क्यों सुहाए यह अब समझ में आया।'

वह अंदर गई इतने में समर्थ भागी आई। 'क्यों काक भटराज ! पहचानते हो ?'

'ओहो ! आप भी यहीं हैं ?' काक ने हंसकर कहा।

'मुझे आपसे लड़ना है।'

'अरर, मुझे नहीं लड़ना है। मैं हार मानने के लिए तैयार हूं।'

'हंसी की बात नहीं है।' समर्थ ने कहा।

'समर्थ !' पीछे से रानी का कठोर स्वर आया, 'तू और प्रेमू बाहर जाओ।'

पीछे आती प्रेमू मन में बोली, 'अरी माँ ! आज कैसी खिल रही

हैं !' वह नीचे देखती हुई आगे आई, काक के सामने गई, मुंह तनिक नीचा किए ऊपर देखकर एक दृष्टि डाली और चली गई। समर्थ क्रोध में मुंह चढ़ाकर चली गई। काक उस समय रानी को प्रणाम कर रहा था।

'समर्थ ! मंगी को भेजना।' रानी ने कहा।

'अच्छा देवी।'

: २३ :

पुरुष को वश में करने की कला

जब वे दोनों चली गईं तो रानी हिंडोले पर बैठ गईं और काक सामने भूमि पर बैठ गया।

'काक ! तुझे कुछ हुआ ?'

'कुछ भी नहीं। महाराज की मुझ पर अत्यंत कृपा है।'

'अब समझ में आया।'

'क्या ?'

'मुंजाल महेता कहते हैं कि मैं तुझे अच्छी तरह पहचानती नहीं। तुझे कुछ नहीं हो सकता।'

'महेताजी की मुझ पर विचित्र श्रद्धा है। आप क्या मेरे लिए गई थीं ?'

'हाँ, तुझे उस कमरे में न देखकर घबरा गई थी।'

'देवी ! आप मेरे लिए बहुत चिंता न कीजिए।'

रानी शांति से देखने लगी। विषय पलटा, 'काक ! रेवापाल कैसा है ?'

'जैसा था वैसा ही। अब भी लाट को स्वतंत्र करने की आशा उसने त्यागी नहीं है; और हम दोनों पर से उसका क्रोध भी अभी गया नहीं है। जो हो सो ठीक।'

'क्यों ?'

'मुझे इस उदा के लड़के पर तनिक भी विश्वास नहीं है।'

'तुझे तो किसी पर विश्वास नहीं होता।'

'कुछ में मुझे बहुत अधिक विश्वास होता है।'

'जैसे मंजरी।'

'जैसे आप।'

रानी मुस्कराई—'बोल, फिर यहाँ का क्या ?'

'यहाँ ? धीरे-धीरे सब ठीक हो जायगा। प्रथम बार सफल होगया है। महाराज मार्ग पर आगए हैं।'

'देख, भूल मत करना। उनको समझने में जन्म-पर-जन्म व्यतीत हो जायंगे।' शांत तिरस्कार से रानी ने कहा।

'देवी ! यदि आप सहायता करेंगी तो वे बहुत शीघ्र रास्ते आ लगेंगे।'

'मैं किसलिए सहायता करूं ?' कुढ़कर रानी ने पूछा।

'देवी ! किसलिए ?' काक ने तीक्ष्ण दृष्टि से रानी के सामने देखा, 'देखिए 'स्पष्टवक्ता सुखी भवेत', यह सूत्र भूलने जैसा नहीं है। मैंने आपको यहां ब्याहा और पटरानी-पद की आशा दिलवाई। इस समय आपका वह पद संकट में है। आपको भी ऐसा ही लगा तभी तो मुझे बुलाया। अब हमें स्पष्ट बातें कर लेनी चाहिए।'

'तो करो न ! मैंने कब ना कहा ?' ऊबकर रानी ने हिंडोले को धक्का दिया।

'बुरा तो न मानिएगा ?'

'तेरा कहा बुरा लगने पर भी सुन लूंगी।'

'देवी ! बाप, भाई, या माँ जो गिनो इस समय में ही हूँ, इसलिए जो कहता हूं वह कहने देना।'

'इस सब चर्चा की मैं आवश्यकता नहीं समझती।'

'मैं समझता हूं। इस समय मेरी स्थिति बड़ी कठिन है। मेरे जैसे पर-पुरुष को इस प्रकार बात नहीं करनी चाहिए, किन्तु मैं न करूं तो कौन करे ?'

'जो कहना है कह।'

'आपको पटरानी-पद से हटना नहीं चाहिए।' काक ने एक तीक्ष्ण दृष्टि रानी पर डालकर कहा।

'यह मेरे हाथ में नहीं है।' रानी तनिक तिरस्कार से हंस दी।

'मुझसे जो बनेगा करता हूं किन्तु अन्त में सब कुछ आप ही के हाथ में है।'

'किस प्रकार ?'

'आपको जयसिंहदेव को रिझाना होगा।' काक ने धीमे-से कहा और रानी के मुख के भाव देखने लगा।

'कराना क्या चाहता है तू ?' तनिक तिरस्कार से लीलादेवी ने कहा।

'जिससे काम बन जाय वह सब।'

'अर्थात् ?'

'देवी ! प्रत्येक स्त्री में पुरुष को रिझाने की अद्‌भुत शक्ति होती है। वह आपको प्राप्त करनी होगी, नहीं तो यह काम नहीं होने का।'

क्रूर शांति से रानी काक की ओर देखने लगी। काक मौन रहा।

कुछ देर के पश्चात् रानी ने एक निःश्वास लिया, 'मुझे पुरुष को रिझाना नहीं आता।' वह कुछ देर तक मौन रही फिर तिरस्कारपूर्वक मुस्कराई 'ऐसा जानती तो थोड़ा-बहुत मंजरी से सीख लेती।'

काक ने उत्तर नहीं दिया, किन्तु कहा—'देवी ! इस समय हम दो सेनापतियों के समान मंत्रणा कर रहे हैं। हमें गढ़ जीतना है।

'अभी इतने ही पर्याप्त हैं।' मुस्कराकर काक बोला।

'अब करूँ क्या?' रानी ने बात पलटी।

'प्रथम आपकी कीर्ति। आप शस्त्र तैयार रखिए। कुछ दिनों में ऐसा धड़ाका करेंगे कि संपूर्ण गुजरात गूँज उठेगा। कभी-कभी चुपचाप घोड़े पर बैठकर सेना में क्या हो रहा है यह तो देख आया करिए। लाट में थीं तब तो न जाने कितने कोस की दौड़-धूप करती थीं।'

'काक! वे दिन गए।' रानी ने निःश्वास लिया।

'दूसरा प्रयोग तो आप ही के हाथ में है।' काक ने मुस्कराकर कहा, 'स्त्रीचरित्र का मुझे अधिक अनुभव नहीं है।'

'ऐसा?' रानी ने हंसकर पूछा, 'तेरी बात से तो ऐसा बिलकुल नहीं लगता।'

'और तीसरी बात के लिए तो यही कि महाराज अपने आपको देवता समझना चाहते हैं। इसी कारण जगदेव जैसे विदेशी को यहाँ रख छोड़ा है। आप उनको दिखा दीजिए वे जब आपके पास आते हैं तो बिना प्रयत्न के ही देवता बन जाते हैं।'

'मेरे पास देवता बनाने का मंत्र नहीं है।'

'है। आप ठाट-बाट इतना बढ़ा दीजिए, अनुचरों की संख्या इतनी बढ़ा दीजिए और ऐसा व्यवहार करने लगिए कि आपके निकट आने वाले लोगों को देवमन्दिर का भान हो जाए। फिर इस मन्दिर के देवता बनने के लिए राजा स्वयं दौड़ते आवेंगे। और इस बीच ध्यान न दें तो घबराना मत, अपने आप खिंचे चले आएंगे। अब तक मुझे ऐसा मनुष्य न मिला जो देवता माने जाने पर प्रसन्न न हो।'

'मुझे एक मिला है।'

'आपको कुछ भ्रम हो गया है। उसका भी एक छोटा-सा मंदिर है जहाँ वह देवता समझा जाता है।' काक मुस्कराया। पल-भर के लिए उसका मन भृगुकच्छ के मामा बृहस्पति के बाड़े में जा लगा।

'पुरुष स्त्री का घर और बाहर सुखी करता है, उसको यौवन और

प्यार देता है, पूजन-अर्चन करता है—मात्र देवता बनने के लिए। इस दुःखी संसार में उसे केवल इतने ही में मुक्ति दिखाई पड़ती है।'

'काक ! बहुत हो चुकी तेरी विद्वत्ता।' रानी ने कहा और शांति से सूखे हुए होठों को गीला किया। 'तुझे पूजूँ या धिक्कारूँ यह मुझे नहीं सूझता।'

'मुझे तो आपकी सेवा ही करनी है।' काक ने उत्तर दिया।

'फिर बोलेगा तो जीभ खींच लूँगी। बोल, अब महाराज को देवता बनाकर उनकी स्थापना कैसे करूँ ?'

'जब ये यहाँ आयें तो अपनी सेवा में प्रस्तुत रहने के लिए कुछ सैनिक मांग लेना।'

'फिर ?'

'और ऐसा कुछ करिए कि बड़े-बड़े योद्धा यहाँ आयें।'

'क्या रस्सी बांधकर खींच लाऊँ ?'

'आप प्रयत्न तो करिए। बिना रस्सी सभी खिंचे चले आएँगे। परशुराम को बुलाइए। आप वीरांगना हैं। आपकी वीरता से वह प्रसन्न होगा। वह आया कि सब आए।'

'मुझ पर इतना विश्वास करते हो ?'

'देवी ! देवी ! महाराज पधार रहे हैं।' संगी हाँफती-हाँफती आई। उसके पीछे प्रेमकुंअर और समर्थ के घबराए हुए मुख दिखाई दे रहे थे। तुरन्त ही, इनके पीछे जयसिंहदेव महाराज आए।

रानी चमककर हिंडोले पर से उतर पड़ी। काक उठकर झुककर खड़ा हो गया।

: २४ :

लीलादेवी का खेल

राजा अपनी उम्र से छोटे लगते थे। उनका सुन्दर मुख इस समय [illegible] दिखाई पड़ रहा था, और उस पर सदा छाई रहने वाली [illegible] ने इस समय मोहक सौन्दर्य का स्वरूप ले लिया था। [illegible] ऐसा लग रहा था मानो अभी हँसी फूट पड़ेगी। रानी को [illegible] से इस प्रकार [illegible] बातें करते देखकर उन्हें हंसी आई किन्तु उन्होंने उसे [illegible] अपने [illegible] को आकुंचित किया।

'रानी! क्यों, क्या कर रही हो?' कुछ हंसते हुए स्वर को कठोर [illegible] उन्होंने पूछा, '[illegible], तू यहाँ कहाँ से?'

'[illegible] से भेंट करने।' [illegible] ने तीक्ष्ण दृष्टि से राजा की मुखमुद्रा [illegible]।

'रानी! [illegible] चित्र [illegible] आई है।' कहकर राजा [illegible] पर बैठ [illegible] रानी को बिठा लिया। उसने [illegible] देखकर कहा, 'तुम बहुत [illegible] हो।'

'[illegible]!' [illegible] में रानी ने कहा। किन्तु [illegible] दृष्टि [illegible] पर पड़ी। [illegible] आंख में कुतूहल था। [illegible] नहीं [illegible]! लीलादेवी के हृदय में [illegible], 'मैं भी प्रतिदिन शृंगार करती हूँ [illegible]?'

[illegible] उत्तर माना।

'[illegible] हूँ।' राजा ने पुनः [illegible]।

'[illegible]'

'प्रातःकाल एक ब्राह्मण महल में घुसकर तुम्हारे कमरे में आया, और अब मिलता ही नहीं।'

रानी तनिक चमकी। काक बिना कुछ कहे हँस पड़ा।

'उस जगदेव ने कहा होगा?' उसने पूछा।

'कैसे जाना?' राजा ने कुछ भवें तानकर पूछा।

'क्योंकि वह ब्राह्मण तो मैं ही था।' रानी यह धृष्टता देखकर फीकी पड़ गई। काक आगे कहा, 'मुझे आपसे भेंट पहले करनी थी इसीलिए ब्राह्मण का वेश बनाकर प्रहरी को बाँधकर मैं घुसा था। मेरे मन में यही था कि ऐसे वेष में आपसे न मिलूँ अतः मैंने भंगी से वस्त्र मँगवाए। इतने में देवी को मालूम होगया और उन्होंने मुझे बुला लिया। इतने में परमार भी ढूँढ़ते-ढूँढ़ते आ ही गए। भंगी ने मुझे उस कमरे मे छिपाया जहाँ दंडनायक की पुत्री आ गई। उसने मुझे दूसरे मार्ग से निकाल दिया और मैंने आपसे आकर भेंट की।'

'ऐसा हुआ?' राजा ने कहा, 'मुझे क्या मालूम? तूने और रानी ने दोनों ने मिलकर मेरे विरुद्ध षड्यन्त्र रचना आरंभ किया है क्या?'

'हाँ! देवी अभी-अभी मेरे साथ षड्यन्त्र रच रही थीं,' काक ने कहा। 'देवी कहें तो कहूँ?'

'क्या?'

'है आज्ञा?' काक ने हँसकर पूछा।

रानी समझी नहीं किन्तु उसने हँसकर स्वीकृति दे दी।

'देवी रा' खेंगार के विरुद्ध षड्यन्त्र रच रही थीं और सब सेना के विषय में पूछ रही थीं।'

रानी ने काक के सामने एक क्रोध-भरी दृष्टि डाली। वह उसे अपनी युक्ति का प्रयोग करने का साधन बना रहा था। किन्तु वह विरोध नहीं कर सकी।

'महाराज ! मैं युद्ध देखने से थक गई हूँ। मुझे जैसे हो वैसे इसका [illegible] लगता है।'

'तो तुम सब क्या थक गए हो?'

'नहीं। किन्तु जितने भी वर्षों तक मैंने युद्ध में भाग लिया है, और [illegible] ही [illegible] को पार किया है। जितनी ही बार तो युद्ध काल को [illegible] है। मैं अब इस प्रालब्ध के जीवन से उकता [illegible]।'

'[illegible]?'

'[illegible] पदार्थों की शोभा है यहीं।' तनिक अस्पष्ट तिरस्कार [illegible], [illegible] उसमें क्या [illegible] पड़ता था उसकी कल्पना [illegible] करने लगी। राजा [illegible] का यह अप्रत्याशित प्रदर्शन देखने [illegible]।

'[illegible] कोई [illegible] ?'

'[illegible] ! [illegible] उसकी गाथा गाने वाला कोई नहीं, [illegible] हो गया है।' [illegible] ने कहा।

'[illegible] हो जाता है।' राजा ने कहा।

'[illegible] ! [illegible] नहीं [illegible] है।' [illegible] ने कहा।

'[illegible] ! [illegible] नहीं [illegible]।'

'[illegible],' [illegible] ने कहा, 'महाराज [illegible] भोजन [illegible] है।'

'[illegible] है।'

'[illegible] देखा ही नहीं।'

'[illegible], '[illegible] और [illegible] [illegible] [illegible]।'

'[illegible], [illegible] [illegible]।' राजा [illegible] [illegible] हुआ।

काक बाहर गया और थोड़ा ही आगे गया होगा कि एक द्वार में से किसी ने पुकारा—'भटराज !'

काक ने घूमकर देखा, 'कौन, प्रातःकाल वाली बहन ?'

'हाँ।' समर्थ ने आँखें निकालकर कहा, 'तू सम्पूर्ण संसार में बुरा-से-बुरा आदमी है।'

काक मुस्कराया, 'क्यों, क्या एकदम परख लिया ?'

'तूने मेरा सब कुछ बिगाड़ दिया।' उंगली से काक को धमकाते हुए समर्थ ने कहा।

'मैंने क्या बिगाड़ा।'

'तुम पकड़ा क्यों न गए ?'

'मैं क्यों नहीं पकड़ाया ?' काक को लगा कि यह लड़की पागल है।

'हां, तुम पकड़ा जाते तो बाहड़ महेता को मुंह-मांगा प्राप्त होता और वे मुझसे ब्याह कर लेते।'

'और मैं नहीं पकड़ाया तो—' कुछ-कुछ समझते हुए काक बोला।

'अब मेरे पिताजी उसके साथ मेरा ब्याह नहीं करेंगे।'

'क्यों ?'

'उसका दादा मारवाड़ी था इससे।' होंठ-पर-होंठ रखकर समर्थ ने कहा।

'तो उसमें मैं क्या करूँ ?'

'तुम अब भी पकड़ा जाओ।'

'अरे वाह रे चतुर ! तुम भी भारी हो गई'।'

'तू बहुत बुरा है,' समर्थ ने रूठकर कहा, 'तेरा कभी भला नहीं होगा।'

काक हँसकर चला गया।

: २५ :

राजद्रोही

दूसरे दिन दिन निकलने से पहले राजा और जगदेव गढ़ के नीचे उतरे। गढ़ में सब कुछ शांत था। जगदेव ने जहाँ घोड़े तैयार रखवाए थे वहाँ गये। किन्तु वे घोड़े पर बैठें उससे पहले साईस ने जगदेव के कान में कुछ कहा; रकाब में पैर रख देने पर भी जगदेव चमककर खड़ा हो गया।

'हैं! सच?'

'हाँ।'

'क्या है जगदेव?' राजा ने पूछा।

'कुछ नहीं देव! आप तनिक रुकें तो मैं हो आऊँ।'

'क्या है?' तनिक कठोर होकर महाराज ने पूछा।

'अन्नदाता! अभी आया।'

'परमार! मैं सुनना चाहता हूं, क्या है?'

'देव! गढ़ के दो प्रहरी घायल होकर मरणासन्न पड़े हैं। मैं उन्हें देख आऊं।'

'क्या कहता है? मैं भी चलता हूं। साईस! यह घोड़ा पकड़।'

'जो आज्ञा।' साईस ने कहा, और महाराज घोड़े से उतरकर जगदेव के साथ गये।

थोड़ी ही दूर पर गढ़ के एक द्वार के सामने जगदेव ने चकमक से मशाल जलाई और भूमि पर देखा। दो प्रहरी एक-दूसरे से दूर अचेत पड़े हुए थे। महाराज और जगदेव ने ध्यान से देखा तो एक का हाथ ... कट गया था और दूसरे के कन्धे पर गहरा घाव हो गया था।

... न्धकार में मशाल के अनिश्चित प्रकाश के कारण दो ... ों को कंपकंपी छूटी। जगदेव का

रंग उड़ गया था। जगदेव ही पहले स्वस्थ हुआ। 'यह किसने किया होगा ?'

'कौन जाने !' अस्थिर स्वर में परमार बोला।

'क्या सोरठी यहाँ आगए ?'

'नहीं देव ! गढ़ ही का कोई व्यक्ति होना चाहिए।' कहकर जगदेव ने दोनों पड़े हुए व्यक्तियों को देखकर हिंसा के संकेतों की ओर राजा का ध्यान खींचा।

'ऊँ' जिसका हाथ निकल गया था उस सैनिक के मुख से वाणी निकली।

'यह कौन हो सकता है ?' राजा ने गम्भीर मुख से पूछा। उनके हृदय में क्रोध का उदय हुआ। महल में अब तक ऐसा अत्याचार करने का किसी ने साहस न किया था। उन्हें लगा मानो उनके गौरव की हत्या हो गई है। उनके नथुने क्रोध से फूल उठे।

जगदेव ने उस सैनिक के सिर पर हाथ फेरा। कुछ देर पश्चात् उस सैनिक ने आंखें खोलीं।

'कौन ? क्या हुआ ?'

'कौन बापू ! म—मर गया।'

'किसने मारा ?'

'काकभट—' कहकर वह सैनिक पुनः अचेत हो गया।

जगदेव ने राजा की ओर देखा। उनका मुख लाल हो गया था। उनकी आंखों में रक्त उतर आया था। उनके कपाल पर रौद्ररस दिखाई पड़ता था। जगदेव निश्चिंत हुआ।

'अन्नदाता ! क्या किया जाय ?'

'चल, घोड़े ले लें।'

जगदेव एक अक्षर भी न बोला। क्रोध से फुंकारते हुए राजा और जगदेव घोड़ों तक गए और एक ही छलाँग में उन पर बैठ गए। साईस को उन दोनों प्रहरियों की सेवा-टहल करने के लिए कहकर

जगदेव भी अपने घोड़े पर बैठकर महाराज के पीछे-पीछे चला। राजा बिलकुल न बोले किन्तु अन्धकार में भी जगदेव उनका सीधा शरीर और घोड़े को दौड़ाने की उत्सुकता देखकर उनके मन में उठते हुए विचारों की कल्पना कर सकता था।

जयसिंहदेव के क्रोध की सीमा न थी। उनकी सत्ता और उनके गौरव का खण्डन चाहे ईश्वर ही क्यों न करे वे सहन न करते थे, तो यह था कौन? एक पराजित प्रांत का भटका हुआ सैनिक इस प्रकार करे? वर्षों पहले उसने उनका अपमान किया था। उसने रा' खेंगार को उनकी देवड़ी ले जाने दी थी। लाट के गौरव की रक्षा करने के लिए उसने भटकती कुंअरी से उसका ब्याह करवा दिया था, आज प्रातः-काल छद्मवेष में, उनकी आज्ञा भंग करके वह रानी से पहले मिला, जगदेव की, अर्थात् उनकी, सत्ता का विरोध कर मनचाहा करने लगा, और अब एक डाकू के समान उसके गढ़ के प्रहरियों को घायल किया।

राजा के हृदय में होली जलने लगी। उनका, परम भट्टारक जय-सिंहदेव सोलंकी का ऐसा अपमान! भले खेंगार जीते, भले पाटण का सत्यानाश हो, किन्तु यह अपमान कैसे सहन हो? उन्होंने काक को शिक्षा देने के अनेक प्रकार के विचार किए।

वे पट्टणी सेना की चौकी के सामने आ पहुँचे और धीमे-धीमे सेना की स्थिति को दृष्टि में उतारने लगे। एक टीले पर घोड़ों को विश्राम देने के लिए वे खड़े होगए। थोड़ी दूर तक देखने पर वहाँ सभी चौकियां आगे-पीछे की हुई लगती थीं।

'यह क्या है?'

'दण्डनायक ने कोई नई आज्ञा दी लगती है।' जगदेव ने कहा।

'चलो देखें क्या है।' कहकर राजा ने घोड़ा बढ़ाया। थोड़ी दूर जाने पर दो घोड़ों की टाप सुनाई पड़ी। प्रकाश फैलने लगा था अतः शीघ्र ही दो अश्वारोही दृष्टिगोचर हुए।

'कौन, परशुराम निकले हैं, अभी?'

'नहीं देव ! दण्डनायक इतने दुबले और लम्बे नहीं हैं ।'

'चल उसे पकड़ें ।'

किन्तु उन्हें यह करने की आवश्यकता न पड़ी । आगे जाते हुए अश्वारोहियों के आगे जानेवाले ने इन दोनों को देख लिया था । वह तुरन्त घोड़ा फेरकर राजा और जगदेव की ओर आने लगा । सूर्योदय होने ही वाला था । चारों अश्वारोही एक-दूसरे के निकट आ गए ।

'जयसिंहदेव महाराज की जय !' नवागन्तुक ने कहा ।

'का—क' कटकटाते दाँतों में से राजा का यह शब्द निकला । 'जगदेव ! उसे बुला ला ।' कहकर उन्होंने घोड़ा रोका । जगदेव आगे गया, किन्तु उसके पहले तो काक ही आ पहुंचा ।

'देव ! घणीखम्मा,' काक ने मुस्कराकर कहा और फिर परमार की ओर मुड़ा । 'परमार ! महाराज इस प्रकार भूलें उस समय क्या यह घोड़ा लाना चाहिए ? सम्पूर्ण संसार जानता है कि पाटण के स्वामी के सिवा सुनहरी नालवाले घोड़े पर दूसरा कोई नहीं बैठता । शत्रु देख ले तो- ' कहकर काक ने उदय होते हुए सूर्य की किरणों में चमक रही राजा के घोड़े की नालों की ओर संकेत किया ।

'तेरी सलाह लेने के लिए नहीं खड़ा हूँ।' क्रोध से काँपते हुए राजा बोला, 'तू कब का निकला है ?'

'मध्यरात्रि के पश्चात् अंतिम मुहूर्त में ।'

'क्या कर रहा है ?'

'चौकियों का प्रबंध कर रहा हूं ।'

'किसके कहने से ?'

'मैंने दंडनायक से बात चीत कर ली थी ।'

'प्रत्येक बात में हाथ अड़ाने का तुझे अधिकार नहीं है । काक ! आज तूने मेरे सामने सिर उठाने का साहस किया है,' होंठ पीसकर राजा ने कहा ।

'जब तक यह सिर धड़ पर है तब तक यह कैसे हो सकता है? किस आधार पर कह रहे हैं?' शांति से काक बोला।

'मेरे प्रहरियों को तूने मारा?'

'हाँ, वे मुझे बंदी समझने की धृष्टता कर रहे थे। आप तो जानते हैं कि भटराज का अपमान करने पर सैनिक की क्या दशा होती है?'

'उन्होंने क्या किया था?'

'मुझे महल से बाहर जाने से रोका था।'

'तूने अपना नाम नहीं बताया होगा।'

'बताया था, किन्तु उन्होंने कहा कि मैं होऊं तो भी रोकने की आज्ञा है।'

राजा ने जगदेव की ओर देखा। वह चिंताग्रस्त मुख से यह वार्तालाप सुन रहा था।

'किन्तु मेरे गढ़ में मेरे सैनिकों पर हथियार क्यों चलाया? मुझसे कहना था।'

'देव! मध्यरात्रि को रनवास में आता आपसे पूछने?'

'परमार को कहना था।'

'ऐसे कुछ ही व्यक्ति हैं जिनसे मैं आज्ञा लेता हूं। परमार उन व्यक्तियों में नहीं है।'

राजा फट पड़े। 'अर्थात्?' वे मोटे स्वर में बोले।

काक ने साहस से ऊपर देखा, 'किसी ने मुझे रोकने का साहस अब तक नहीं किया, और न अब कर सकेगा।'

'अच्छा? परमार! इसके हाथ बाँध।' राजा ने आज्ञा दी।

काक गर्व से देखने लगा। परमार ने थोड़ा एक डग भी आगे न बढ़ाया। पीछे खेमा काक की आज्ञा की प्रतीक्षा करता हुआ खड़ा था। काक खड़खड़ हंस पड़ा।

'परमार! यह रहे हाथ। बाँधो। सोलंकियों का शासन मेरे लिए सदा

मान्य रहा है।' कहकर उसने अपने हाथ लंबे कर दिए। परमार ने ज़ीन में से रस्सी निकालकर काक के हाथ बाँध लिए।

'इस घोड़े की लगाम हाथ में ले।' राजा ने जगदेव से कहा। जगदेव ने आज्ञा मानी।

'क्यों रे, तेरा नाम क्या है?'

'खेमा, अन्नदाता!'

'तू पीछे चल।'

'जैसी आज्ञा।'

राजा ने घोड़े को एड़ दी और चारों घोड़े वेग से आगे बढ़े।

खेमा ने काक से दृष्टि मिलाकर आँखों से संकेत किया। काक यदि आज्ञा देता तो उसके बंधन तोड़ने के लिए वह तत्पर था। काक ने गर्दन हिलाकर ना कह दिया।

: २६ :

काक का दूसरा रूप

थोड़ी देर में वे लोग एक उजाड़ प्रदेश में आए। यहाँ चौकियाँ भी दूर-दूर थीं और गाँव भी छोटे-छोटे और बहुत अंतर पर थे। दोनों सेनाओं की छावनियों से भी यह स्थान बहुत दूर था।

राजा का शौर्य जाग पड़ा। प्रातःकाल के उन्मत्त पवन ने उनमें अपार उत्साह भर दिया था। काक के प्रति जो आवेश था वह वीरता के उत्साह में परिवर्तित होता जा रहा था। एक चौकी आई किन्तु वह नितान्त निर्जन दिखाई दे रही थी। सब चकित हो गए, उन्होंने सावधानी से चौकी की परिक्रमा लगाई। एक ओर चौकीदार मरा हुआ पड़ा था।

'जगदेव ! लगता है शत्रु घुस आए हैं।'

'हाँ, देव !'

'खड़ा रह, देखता हूँ।' राजा घोड़े पर से उतरे। जगदेव के हाथ में तो बन्दी काक के घोड़े की लगाम थी इसलिए राजा की आज्ञा के बिना उसे छोड़ नहीं सकता था।

'खेमा ! महाराज के आगे-आगे चल।' काक ने तुरन्त राजा के रक्षण के लिए आज्ञा दी।

खेमा उतरा और आगे गया और चौकी का द्वार खोला। पहले खेमा अन्दर गया और कहा—'अन्नदाता ! तीन व्यक्ति मरे पड़े हैं।'

'देखा जायगा।' कहकर राजा अन्दर घुसा।

वहाँ तीन व्यक्ति पड़े हुए थे। दो मरे हुए पड़े थे और एक खंभे से बँधा हुआ था।

'जय सोमनाथ !' उन्हें देखकर बँधे हुए सैनिक ने कहा।

'जय सोमनाथ !' महाराज ने कहा, 'खेमा ! इसके बँधन खोल। क्यों रे, क्या हुआ ?'

'देव !' प्रश्नकर्ता का पद ऊंचा लगने के कारण सैनिक सम्मान से बोला, 'सोरठी दंडनायक महाराज की घोड़ी चुरा ले गए।'

'परशुराम की घोड़ी ?' राजा ने पूछा।

परशुराम की घोड़ी सम्पूर्ण सोरठ में विख्यात थी और सैनिकगण यही विश्वास करते थे कि उसी घोड़ी के प्रताप से दण्डनायक दुर्जय था।

'हाँ, देव !' सैनिक ने कहा।

'कब ले गए ?'

'एकाध घड़ी हुई होगी।'

'किधर गये ?'

'इस ओर।'

'तेरे दूसरे चौकीदार जीवित हैं या नहीं, पता लगा।' राजा ने

चौकीदार से कहा, 'हम घोड़ी पकड़ लाते हैं। चल खेमा!' कहकर राजा बाहर आए। उनके मुख पर तेज छा रहा था।

'जगदेव! सोरठी परशुराम की घोड़ी चुरा ले गए।'

'काली घोड़ी?'

'हां! अभी-अभी इधर से निकले हैं। चलो, पकड़ लेते हैं।'

'किन्तु देव! महल पर लौटने में विलंब हो जायगा।'

'चिन्ता नहीं।' राजा ने कहा।

'महाराज! कितने आदमी होंगे?'

'क्यों, डर लगता है?' राजा ने तिरस्कार से कहा।

'पाटण के स्वामी को ऐसा व्यर्थ का साहस शोभा नहीं देता। मुझे आज्ञा दीजिए मैं जाऊं।'

'भाग जाना चाहता है?' राजा ने व्यंग किया।

'महाराज!' काक ने कठोरता से कहा, 'काक भाग जायगा उस दिन धरती रसातल को चली जायगी।'

राजा ने उत्तर न देकर घोड़े को एड़ मारी। चारों व्यक्ति घोड़ों को दौड़ाते हुए आगे बढ़े। चौकियों के बीच के अरक्षित प्रदेश में होकर वे वेग से आगे बढ़े। पथ उजाड़ प्रदेश में था किन्तु आगे जानेवालों के पद-चिन्हों से वे मार्ग ढूंढ लेते थे। बीच में पथ में पहाड़ी थी अतः वे रुके। टेकरी के नीचे एक छोटा किन्तु उजाड़ गाँव दिखाई पड़ रहा था। उसके आगे एक पथ जूनागढ़ की ओर जा रहा था। इस टेकरी के निकट एक और छोटा टीला था जिस पर पत्थर की दीवालों की एक मंजिल की चौकी थी।

'देव! उस वट के नीचे बैठे हुए वे आदमी ही घोड़ी के चोर होंगे।' जगदेव बोला।

'पन्द्रह के लगभग होंगे।' राजा ने कहा।

'इन्हें ठिकाने लगाने में देर न लगेगी।' जगदेव ने मूंछों पर ताव देते हुए कहा।

राजा ने काक पर दृष्टि डाली। वह मौन होकर सब खेल देख रहा था। उसे छोड़ने का राजा का मन हुआ किन्तु क्रोध अभी शांत न हुआ था और अभिमान पर लगा घाव पूरा न हुआ था।

'अन्नदाता!' कहकर खेमा ने जिस पथ से वे आए थे उस ओर उंगली से संकेत किया। उधर से चालीस सोरठी अश्वारोही आ रहे थे।

'मरे!' राजा ने कहा और उनके मुख से रंग जाता रहा, 'अब?'

'देव! चलिए भाग चलें।' जगदेव को भी स्थिति की गम्भीरता का भान हुआ।

'और कोई चारा ही नहीं।' राजा ने कहा और जूनागढ़ की ओर जानेवाले पथ की ओर उन्होंने घोड़े का मुंह मोड़ा। जगदेव ने भी वैसा ही किया। तड़ित् की चपलता से काक ने खेमा की ओर देखा। खेमा समझा। कटार निकालकर एक झपाटे में काक के बन्धन काट डाले। काक के हाथ स्वतन्त्र होगए—उसका घोड़ा एकदम स्थिर खड़ा हो गया। सरपट भागते जगदेव के हाथ से लगाम छूट गई। एक ही छलांग में काक का घोड़ा सबसे आगे निकल गया। नंगी तलवार को सामने कर यमराज के समान काक घूमा।

'महाराज! इस पथ से न जाइए।'

जयसिंहदेव के मुंह का रंग उड़ गया। जगदेव ने तलवार की मूठ पर हाथ रखा। काक के अङ्गरक्षक खेमा ने जगदेव के तलवार निकालने से पहले ही उसके हाथ तोड़ डालने के लिए लकड़ी आधी ऊपर उठाई।

'परमार! सावधान, तलवार निकाली तो। नहीं तो तुम्हारे हाथ तोड़ देने पड़ेंगे।'

'चांडाल! द्रोही—' क्रोध और साहस से ऊपर देखते हुए जयदेव बोले। उनके होंठ फड़के, उनकी आंखों से चिनगारियां निकलने लगीं। उनका हाथ तलवार पर गया।

'देव !' काक ने तनिक नम्रता से कहा, 'यह समय लम्बी बातें करने का नहीं है। आप एक दूसरी भूल भी करते आए हैं—देखिए !' काक ने सोरठी सैनिकों की ओर संकेत किया।

वे सब हथियार ऊँचे किये हर्षनाद करते हुए आगे बढ़ रहे थे।

'देखिए महाराज ! आपको उन लोगों ने पहचान लिया है। अपने घोड़े की नालें तो देखिए—अँधेरी रात में भी पहचानी जा सकें ऐसी हैं। पाटण का सत्यानाश होने आया है।' कहकर काक ने राजा के घोड़े की सुनहरी नालों की ओर संकेत किया।

'किन्तु हरामखोर ! मुझे जाने से क्यों रोकता है ?'

'ये लोग आपको अभी पकड़ लेंगे। यह पथ एभल नायक की चौकी पर जाता है।'

'एभल नायक !' जयदेव ने घबराकर कहा।

'हाँ महाराज ! अब समझे ? आप मृत्यु के मुख में जा रहे थे।'

'तो क्या करूँ ?' जगदेव ने कहा।

'सुनिए, जैसा मैं कहूँ वैसा करिए।' काक ने कहा।

उसकी आँखों में स्थिर तेज था, उसकी भवों पर भयंकर शांति थी, उसके मुख पर अटल सत्ता थी। जगदेव मौन रहा। महाराज भी मौन रहकर उसकी शक्ति देखने लगे।

'वह चौकी देखी ? आप उसमें घुस जाइए और चौकीदारों को ठिकाने लगाइए। आपकी कलंगी पहनकर मैं आपके घोड़े पर बैठता हूँ। भ्रम में डालकर इन्हें मैं दूर ले जाता हूँ। जो सैनिक भी आ जायँगे तो भी उस चौकी में रहकर आप लड़ सकेंगे और अवसर देख कर भाग सकेंगे।'

'किन्तु तुझे वे मार डालेंगे।'

'महाराज ! बातें करने का समय नहीं है।' सत्ता-भरी वाणी में काक ने कहा, 'पाटण से अधिक काक का मूल्य नहीं। चलिए।' वह महाराज का घोड़ा पकड़कर चौकी की ओर जाने लगा।

'किन्तु काक !' राजा ठीक न समझने के कारण चिढ़कर बोले, 'मुझसे यों ज़बरदस्ती क्यों करता है ?' जयदेव अपना घोड़ा तनिक आगे लाए।

'देखिए !' दांत पीसकर काक बोला, 'उन आने वालों को देखा ? एक शब्द भी अधिक बोले तो एक ही प्रहार में अचेत करके उठा ले जाऊंगा। चलिए !' कहकर काक ने महाराज के घोड़े को ज़ोर से चाबुक मारा। वह काक के घोड़े के साथ एकदम टेकरी के नीचे उतर गया। राजा ने काक की मुखमुद्रा देखी। उसका गांभीर्य, उसकी तेजस्विता, उसकी भयंकर स्थिरता, उसकी दूरदर्शिता, इन सबने राजा के हृदय में विचित्र श्रद्धा को जन्म दिया।

थोड़ी देर में वे पत्थर की चौकी के सामने पहुँचे। घोड़े पर बैठे-ही-बैठे काक ने द्वार खटखटाया। एक चौकीदार ने जैसे ही द्वार खोला वैसे ही काक झट से द्वार धकेल कर अंदर घुस गया। राजा, जयदेव और खेमा तीनों उसके पीछे-पीछे गये। किन्तु इसके पहले ही काक ने उस चौकीदार के मुंह पर हाथ रखकर उसको भूमि पर पटक दिया था। उसकी पगड़ी से वह उसके हाथ-पांव बांध रहा था। यह गड़बड़ सुनकर अन्दर से दो आदमी दौड़े आए। राजा, खेमा और जयदेव तीनों उन पर टूट पड़े। थोड़ी ही देर में तीनों चौकीदार बांध दिये गए।

'महाराज ! आपकी पगड़ी और कलंगी।'

जयदेव ने बिना एक अक्षर बोले ही पगड़ी और कलंगी उतारकर दे दी।

'खेमा ! जितने बन सकें उतने घोड़े अन्दर ले ले। देव मैं जाता हूँ। खेमा ! ध्यान रहे, महाराज को कुछ भी हो उससे पहले तेरा सिर धड़ से अलग हो जाय।'

'जो आज्ञा !'

'और परमार ! यह महल की व्यवस्था करने जितना सरल नहीं

है। महाराज को कुछ भी हो गया और मैं बचा रहा तो चंधजी से बच निकलना कठिन हो जायगा, याद रखना।'

'काक !' प्रशंसा से स्तब्ध बने राजा ने कहा, 'तू रह जा, जगदेव को जाने दे।'

'महाराज ! यहाँ रहकर बच जाना सरल है। कठिन काम दूसरों को सौंपने की मेरी टेव नहीं। जगदेव ! द्वार बन्द करो।' कहकर काक ने बाहर जाकर द्वार बन्द किया और राजा के घोड़े पर चढ़कर वहाँ से निकला।

: ४७ :

चौकी में

काक चौकी में तनिक आगे आया और पीछे आते हुए सैनिकों पर दृष्टि डालकर उन्हें ध्यान से देखने लगा। वे निकट की टेकरी पर आ पहुँचे थे और चारों ओर देख रहे थे। वे इन चारों की गतिविधि समझ पाए हों ऐसा न लगा। काक ने घोड़ा रोका, राजा के ज़ीन से बँधा हुआ छोटा किन्तु दृढ़ धनुष हाथ में लिया और एक अचूक तीर फेंका। तीर का निशाना सालक्ष्य था। तीर जाकर उस टोली के नायक को जो इधर-उधर देख रहा था लगा, और वह घायल होकर घोड़े पर से गिर पड़ा।

और सम्पूर्ण टोली का ध्यान काक की ओर गया। उसके सिर की कलंगी और उसके लाल घोड़े की नालें धूप में चमक रही थीं। विकराल पशु की गर्जना के समान वे एक ही स्वर में बोल उठे, 'जैसंग सोलंकी !' और उसके पीछे भागे। काक को यही चाहिए था। उसने ज़ोर से एड़ मारकर जयसिंहदेव के घोड़े को सरपट भगाया। चौकी के ऊपर के भाग की जाली में से राजा ने काक को भागते हुए और उस टोली के अधिक-

तर अश्वारोहियों को उसके पीछे भागते हुए देखा। इस राजसेवक की भक्ति देखकर उनका हृदय उमड़ आया। कैसे-कैसे वीर योद्धा उसकी कीर्ति की वृद्धि के लिए अपने प्राण दे रहे थे!

'अन्नदाता!' जगदेव ने पीछे से आकर राजा का ध्यान खींचा। 'वे कुछ व्यक्ति हमारी ओर आरहे हैं।'

'हाँ! काक ने जिसे घायल किया था उसे लेकर।'

'और वह देखिए!' एक व्यक्ति को सबसे अलग होकर दूसरी दिशा में जाते देखकर परमार ने कहा। 'मुझे लगता है वह वृक्ष के नीचे बैठे हुए व्यक्तियों को बुलाने जारहा है।' राजा ने कहा।

'सब आ जायँगे।'

'हाँ,' हँसकर राजा ने गिनते हुए कहा, 'पंद्रह-एक तो वे हैं, और एक-दो-तीन-चार-पाँच और वे चार—नौ-दसेक आ रहे हैं।'

'तो कुल पच्चीस हुए।'

राजा को विनोद सूझा, 'हाँ! हममें से प्रत्येक के भाग में आठ-आठ पड़ेंगे।'

परमार ने गर्दन हिलाई।

'परमार! नब्बे आवें तब तक तो चिन्ता नहीं।' कहकर राजा पुनः हँसे।

'मैं समझा नहीं।'

'काक के पीछे तीस आदमी गए हैं।' राजा ने शान्ति से कहा, 'खेमा कहाँ है?'

'यह रहा, देव!' कहता हुआ खेमा कुछ रोटियाँ और मिरचें लेकर ऊपर आया। 'महाराज! इतना-सा भोजन हाथ लगा है। खा लीजिए। कौन जाने फिर कब भोजन करने को मिले।'

कर्णदेव सोलंकी के रसिक पुत्र को बड़ी और मोटी रोटियाँ देखकर कँपी हो आई। किन्तु उन्हें खेमा की सलाह ठीक लगी अतः रोटियाँ -एक टुकड़ा करके बड़ी कठिनाई से गले उतारीं।

'खेमा! उन चौकीदारों का क्या किया ?'

'महाराज! उन्हें नीचे कोठरी में बंद कर दिया है।'

'परमार!' महाराज बोले, 'वे लोग यहाँ आएं उससे पहले भाग निकलें तो कैसा?'

'चलिए।' कहकर परमार ने कमरबंध कसा। परमार की परिस्थिति ऐसी गम्भीर होती दिखाई देने लगी कि उसकी बोलती बंद होगई थी। ऐसे समय में बोलने से अधिक युद्ध करना उसे स्वाभाविक लगता। तीनों-के-तीनों नीचे उतरकर घोड़ों के निकट गये। इतने में उन्हें दूर से आते हुए लोगों का स्वर सुनाई पड़ा। जगदेव ने चौंककर चारों ओर देखा; राजा के होंठ कड़े होगए।

'अधिक सैनिक आ मिले हैं।' जयदेव ने कहा।

खेमा भी सावधान हो गया था। वेग से ऊपर जाकर देख आया।

'वे इस ओर आरहे हैं।'

'कितने हैं ?'

'बीस-पच्चीस।'

राजा की आँखों में आवेश की चमक थी।

'हम अभी बाहर नहीं निकल सकेंगे।'

इतने में बाहर से आगन्तुकों ने द्वार खटखटाया।

तीनों शांत रहे। थोड़ी देर पश्चात् बाहर वालों ने अधीरता से द्वार खटखटाया और चिल्लाकर कहा, 'चौकीदार! द्वार खोल! खोल!'

किसी ने उत्तर नहीं दिया। कुछ ही देर पश्चात् द्वार पर पदाघात होने लगे और गालियों की बौछार होना प्रारम्भ हुआ।

'अन्नदाता!' जगदेव ने कहा, 'मुझे एक ही मार्ग दिखाई देता है।'

'क्या ?'

'मैं बाहर जाकर बन सके उतनों को ठिकाने लगाता हूँ। दस-पन्द्रह को तो लगा ही दूंगा। तबतक आप यहाँ से भाग निकलें।'

राजा मुस्कराए, 'तो लड़ना तुम्हीं सबको आता है, क्यों ? काक ने संकट से रक्षा की, तू औरों से रक्षा कर और जयसिंहदेव सोलंकी विधवा के समान भाग निकले ! देखता जा, सभी ठिकाने लग जायंगे।'

'किस प्रकार ? हम अन्दर रहकर लड़ न सकेंगे। ऊपर की जाली से तीर भी तो नहीं जा सकता।'

बाहर से लोग अधीर होकर द्वार पर आघात कर रहे थे। दूसरी टोली जो वृक्ष के नीचे बैठी देखी थी वह भी आ मिली थी। वे सब पूछ-ताछ कर जानकारी प्राप्त कर रहे थे। एकाएक एक आदमी ने ढेला लेकर जाली की ओर फेंका। कुछ धूल उड़कर राजा की आँखों में जा बैठी।

'वे सोलंकी के आदमी हैं। एक तो भाग गया। इन्हें झोंटे पकड़कर बाहर निकालो।'

राजा मुस्कराया 'परमार ! जयसिंहदेव सोलंकी कैसा फँस गया ? मीनलदेवी जानेंगी तो कितनी क्रुद्ध होंगी ?'

परमार ने गंभीर मुख से गर्दन हिलाई—'हँस—हंस ! आज तू मरने वाला है, और कल खेंगार यह सुनकर बड़ा प्रसन्न होगा। उस चिपटे नाक वाले को देखा ? मेरी चले तो उसकी नाक खींच लूँ।'

'अन्नदाता ! वे लोग थककर बैठने लगे हैं।'

'यह जाली तनिक बड़ी होती तो एक-एक को एक-एक तीर में बींधता।'

'जाली लकड़ी की है। तनिक बड़ी कर दूं ?' खेमा ने पूछा।

'हाँ।' राजा ने उत्साहित होकर कहा।

'किन्तु वे लोग सुन लेंगे।' परमार ने कहा।

'लेकिन कुछ देर में अधिक व्यक्ति आ पहुंचेगे तो मर ही जायंगे न ? खेमा ! कोई हथियार है ?'

'नीचे एक कुल्हाड़ी मिली है।' खेमा ने कहा

'जगदेव ! उस पीछे वाली जाली पर पहले जा।'

जगदेव शीघ्र ही उस जाली की ओर गया और थोड़ी ही देर में बीच का टुकड़ा तोड़कर दो छिद्रों को एक कर दिया। खेमा ने महाराज को धनुष बाण दिये। जयदेव उन्हें लेकर जाली के सामने गए और निशाना लिया और नई टोली में से एक को घायल कर दिया।

घायल सैनिक चीखकर भूमि पर गिर पड़ा। उसकी चीख सुनकर आगे जाते हुए अधिकतर सैनिक दौड़कर पीछे लौटे। उन्होंने तीर से घायल सैनिक को देखा, तीर किधर से आया यह भी देखा। वे आपे से बाहर हो गए। ललकारों, गालियों और पत्थरों की बौछार होने लगी। जयसिंहदेव होंठ पीसकर देखने लगे। उनके मुख पर से विलास के चिह्न अदृष्ट होगए, और रसिक स्वभाव की कोमल रेखाएं कठोर हो गईं। वे शांत थे। भय से वे डर जाएं—ऐसे न थे क्योंकि उनके हृदय में यह विश्वास जम गया था कि वे सबसे निराले और दैवी हैं। ऐसा भी नहीं था कि कोई उन्हें हटा सके या मार सके। उन्होंने नीचे झुककर दूसरा तीर लिया और चला दिया। एक और सैनिक गिर पड़ा। बाहर लोगों में हाहाकार मच गई। वे पीछे हटकर दूर गए। उनमें फैली खलबली देखकर राजा अपनी मूंछों में हंसे।

थोड़ी देर तक दोनों पक्ष शांत रहे।

'परमार ! वे सब निश्चिन्त होकर बैठे किसी की प्रतीक्षा कर रहे हैं।' राजा ने कहा।

'अन्नदाता ! मुझे तो पल-पल संकट बढ़ता लगता है।'

'कोई मार्ग दिखाई देता है तुझे ?'

'मुझे तो महाराज ! एक ही मार्ग दिखाई पड़ता है।'

'कौन-सा ?'

'मैं घोड़ा लेकर बाहर जाऊं और इन सबसे लड़ूं इस लड़ाई का लाभ उठाकर आप और खेमा निकल जाइए।' परमार ने कहा।

'इन सबके पास तीर-कमान हैं। कोई घायल करदे तो?' राजा ने कहा।

'किन्तु यहाँ बैठे रहें और अधिक व्यक्ति आ जायं तो?'

'तब तक कोई हमारी सहायता को नहीं आएगा?'

'कोई न आया तो?' परमार ने शंका प्रकट की।

'कैसी बात करता है?' राजा ने साहस से हंसकर कहा, दो-तीन दिन तक तो बड़ी सरलता से यहाँ बैठ रहेंगे।'

'महाराज! खेमा खिड़की के सामने खड़ा हुआ था, वहीं से बोला, 'दो दिन कौन रहेगा? वे तो चौकी जला देने की युक्ति कर रहे हैं।' सब इस प्रकार स्तब्ध हो गए मानो बिजली कड़क उठी हो। फिर सबको वास्तविक स्थिति समझ में आई और सबके हाथों के तोते उड़ गए।

: २८ :

जयसिंहदेव का शौर्य

जयसिंह छलाँग मारकर खिड़की तक गये और बाहर देखने लगे। दो-तीन लोग हाथ लम्बे करके बातें कर रहे थे; एक व्यक्ति चकमक से आग जला रहा था; दूसरे दो-एक लोग सूखी लकड़ियाँ इकट्ठी कर रहे थे। थोड़ी देर तक राजा एकाग्रता से देखते रहे;एक व्यक्ति लकड़ी जलाकर द्वार में आग लगाने के लिए कह रहा था यह स्पष्ट दिखाई पड़ा। स्थिति बड़ी भयंकर लगी। राजा ने एक गहरी साँस ली और भवें तानकर कुछ देर तक विचार किया। थोड़ी देर पश्चात् उन्होंने गर्दन ऊंची की।

'परमार! तेरी बात सच है। अब हमें मरना या मारना पड़ेगा।'

उत्तर में परमार ने दाढ़ी में बल दिया।

'देख ! एक द्वार खोल दें। यदि बाहर निकलेंगे तो ये लोग बींध देंगे। अतः तू द्वार के बीच खड़ा हो जा। तेरे पीछे मैं खड़ा होता हूँ और सबसे पीछे खेमा बैठा-बैठा तीर चलायगा। इस प्रकार एक के पश्चात् दूसरे को ठिकाने लगा देंगे, और समय देखकर घोड़ों पर बैठकर भाग निकलेंगे।' राजा ने अपनी योजना बताई।

'जो आज्ञा' कहकर परमार सीढ़ियाँ उतरा और अपना प्रचंड खड्ग नंगा करके हाथ में ले लिया। राजा ने एक हाथ में भाला और दूसरे में तलवार ली और द्वार से कुछ दूर पर वे खड़े होगए। घोड़ों को तैयार कर पीछे घुटनों के बल बैठकर खेमा ने निशाना साधा। परमार और खेमा ने महाराज की ओर इस प्रकार देखा मानो यह उनका अंतिम समय हो। फिर भी तीनों जानते थे कि इसके सिवा रक्षा करने का और कोई मार्ग नहीं है। जब तक चालीस योद्धा घेरा डालकर पड़े हों तब तक बचने का कोई मार्ग नहीं था।

'अन्नदाता ! सावधान, मैं द्वार खोलता हूं।'

'खोल !' शांति से सोलंकी ने उत्तर दिया।

परमार ने महाकालेश्वर का स्मरण करके अर्गला हटाई और एक-दम एक द्वार खोल दिया।

द्वार खुलने की आवाज़ सुनकर बाहर बैठे हुए लोग चमके और निश्चित होकर द्वारकी ओर बढ़े। दूसरे ही क्षण उन्होंने जयघोषणा की; कितने ही तो हंसने लगे। आगे खड़े हुए सैनिक शस्त्र निकालकर चौकी में से बाहर निकलने वाले को भूमिसात् करने के लिए तत्पर होगए, किन्तु दूसरे ही क्षण वे तनिक चकित होकर खड़े होगए; चौकी के अध-खुले द्वार में से कोई न निकला। सोरठी सैनिक थोड़ी देर तक देखते रहे, फिर आगे बढ़े। एक पल के लिए उन्होंने परमार के उग्र मुख को भयानक अट्टहास करते देखा और अधीर होकर अधखुले द्वार की ओर बिना सोचे-समझे दौड़ पड़े। उत्साहोन्मत्त सोरठी जैसे ही द्वार में घुसे कि एक प्रचंड यमराज द्वार के पीछे से आगे आया—एक झटके में दो

सैनिकों के सिर धड़ से अलग होकर भूमि में लोटने लगे; पीछे के एक को तीर लगा और वह धरती पर लुढ़क गया। किसी को भान न रहा कि क्या होगया। पीछे आने वाले पीछे हटे और अधखुला द्वार जैसा था वैसा ही निर्जन दीख पड़ा। एक ही पल में यह खेल पूरा होगया। आक्रमण करने वाले चौंक पड़े और दूर हटकर एक-दूसरे से मंत्रणा करने लगे। थोड़ी देर मे एक व्यक्ति ने दो तीक्ष्ण बाण छोड़े। वे अधखुले द्वार में होकर आरपार होगए। उत्तर में मात्र परमार का अट्टहास सुनाई पड़ा। खेमा के तीर से घायल हुए व्यक्ति की वेदना-भरी चीत्कार के सिवाय सब कुछ शांत था। चौकी में तीन व्यक्ति प्रतीक्षा करते हुए खड़े थे।

मध्याह्न हो गया। सोरठ का प्रखर सूर्य भी मानो रंग में आ-गया था।

थोड़ी देर में महाराज और उनके साथियों ने नया और अपरिचित स्वर सुना। वह किसी वृद्ध का विनोद-भरा स्वर था।

'छोकरो ! क्या कर रहे हो ?'

'मरे।' परमार बड़बड़ाया और बंद द्वार के छिद्र में से देखकर बोला, 'महाराज ! मेरे पीछे छिपकर रहिएगा। एक बूढ़ा आठ-दस अश्वा-रोही लेकर आया है। एभल नायक के विषय में सुना था, कहीं वही तो नहीं है ?'

'बड़ी श्वेत मूँछें हैं ? मोटा और नाटे क़द का है ?' राजा ने पूछा और फिर जिज्ञासा न रोक सकने के कारण आगे आकर कहा, 'परमार ! हट, तनिक देखने दे।'

परमार हटा और राजा ने देखा।

'अनर्थ हो गया ! यह तो एभल ही है।'

बाहर अचूक योद्धा आया है इसका प्रमाण तुरन्त ही मिल गया।

राजा देखने लगे अतः परमार के शरीर का कुछ भाग खुले द्वार में से दीखा ही था कि सन् करता हुआ एभल का तीर आया। एभल

का निशाना चूकता नहीं था किन्तु परमार के भाग्य से तीर उसके शरीर पर खरोंच ही कर सका। बाहर के सैनिकों ने एभल को जानकारी दे दी लगती थी। थोड़ी देर तक इस युद्ध का निश्चित हास्य ही सुनाई देता रहा। बाहर के सैनिक चतुर नायक की आज्ञानुसार कुछ युक्ति रचते-से लगे। परमार के स्नायु आवेश में तन गए। 'अन्नदाता!' उसने मोटे स्वर में कहा, 'यह बन्द द्वार भी खोलता हूँ। सावधान रहिएगा। मैं उनको एकदम घुसने देकर फिर द्वार के मध्य में खड़ा होकर युद्ध करूँगा। सोमनाथ भगवान् आपकी सहायता करें।'

परमार होंठ पीसता हुआ बन्द द्वार पर अपना कन्धा टेककर खड़ा हो गया। बाहर के लोग बन्द द्वार के सामने रहकर, दो-तीन बड़े लट्ठों को पकड़कर उनकी शक्ति से द्वार खोलने के लिए आए। उन्होंने एक नारा लगाया और लट्ठों से द्वार पर आघात किया। घर कांप उठा। द्वार थोड़ा-सा खुला किन्तु जगदेव के बल से पुनः बन्द हो गया। सोरठी सैनिक पीछे हटे और पुनः लट्ठों को साथ बांधकर निनाद किया। परमार कुछ पीछे हटकर खड़ा हो गया। बाहर के झटके से निराधार द्वार एकदम खुल गया। आक्रमण करने वाले कुछ लोग गिर पड़े।

'जय सोमनाथ' की भयंकर घोषणा करके परमार उन पर टूट पड़ा और देखते-ही-देखते घायल हुए सैनिक चारों ओर भागने लगे। दोनों द्वार खुल गए थे अतः बाहर निकलकर दोनों द्वारों के मध्य में खड्ग घुमाता हुआ परमार खड़ा हो गया। उसने अनेक युद्धों में भाग लिया था किन्तु आज स्वामी के संरक्षण के लिए उसमें विचित्र शौर्य आ गया था। उसकी प्रचण्ड भुजाओं में अपार बल प्रकट हुआ। उसकी लम्बी तलवार दसों दिशाओं में नृत्य कर रही थी मानो कोई महाज्वाला पवन में नृत्य कर रही हो। खड्ग के प्रहार उसे स्पर्श नहीं कर रहे थे, तीरों की वर्षा खड्ग से अड़कर छितरा जाती थी। एभल नायक की आज्ञा से सोरठी सैनिक पैदल और अश्वों पर घूम-घूमकर

उसकी ओर बढ़ रहे थे, किन्तु परमार को कभी-कभी घायल करने से अधिक वे कुछ न कर सके।

पीछे महाराज भी सावधान होकर खड़े हुए थे। परमार पर अचानक होते प्रहारों को झेलना और उसके सामने आने वाले को ठिकाने लगाना—यह काम वे करते रहे। परमार थोड़ी देर में थक जायगा अतः इस आक्रमण का सामना करने का काम उन पर ही आएगा यह महाराज समझते थे और उसके लिए वे तैयार भी होगए थे। पीछे बैठे खेमा के तीर भी अचूक निशाने पर लगा किए।

घड़ी दो घड़ी तो परमार शौर्य से लड़ता रहा किन्तु इसके पश्चात् उसका श्वास थकने लगा और स्थान-स्थान से रुधिर बहने लगा। सामने के वृक्ष के नीचे घोड़ी पर बैठा हुआ एभल हँस रहा था और विपक्ष के सभी सैनिक अभी थके नहीं थे। महाराजा सोच ही रहे थे कि क्या करें इतने में खेमा ने पीछे से उनके कन्धे पर हाथ रखा, 'महाराज! चौकी के बाहर निकलिए। उस दुष्ट ने पीछे से छप्पर पर से आदमी चढ़ाए हैं। वे इधर से उतरकर अभी आने ही वाले हैं। तब हमारी दशा चक्की के दो पाट के बीच में की हो जायगी।'

'ठीक।' जयदेव ने कहा, 'परमार! तनिक आगे बढ़ जिससे मैं और खेमा बाहर निकल सकें। पीछे से सैनिक आरहे हैं।'

परमार ने सुना या न सुना कुछ मालूम नहीं, किन्तु वह खिसक अवश्य गया। जयदेव बाघ के समान छलांग मारकर बाहर निकले। उनका सुन्दर मुख तेज से दीप्त था, उनकी विशाल आंखें लाल-पीली हो रही थीं। उन्होंने जय सोमनाथ की घोषणा की और दीवाल की ओर पीठ करके लड़ने लगे। एक से दो होते देखकर सभी सोरठी योद्धे उन पर टूट पड़े।

खेमा द्वार के सामने पड़े हुए शव के निकट लेट गया। वह धीरे-धीरे पेट के बल आगे सरक रहा था। उसने धनुष-बाण बड़ी दृढ़ता से पकड़ रखे थे। महाराज का आक्रमण इतना अचिंत्य था कि किसी

ने खेमा की ओर ध्यान नहीं दिया। एभल नायक ने धूप में बचने के लिए कपाल पर हाथ की ओट की।

'कौन, जैसंग सोलंकी?' उसने मोटे स्वर में कहा, 'जो इसे जीवित पकड़ेगा उसे एभल नायक का पद प्राप्त होगा!' जयसिंह सोलंकी को स्वयं इस प्रकार लड़ते देखकर योद्धा पल-भर के लिए पीछे हटे और फिर 'रा' खेंगार की जय' कहकर टूट पड़े। महाराज का रक्त लहरें मार रहा था। उनकी आँखें लाल होगई थीं। उन्होंने रक्त के प्यासे सैनिकों को बढ़ते हुए देखा, दूर एभल नायक को मूंछों पर ताव देते देखा, निकट ही परमार को भयंकर शौर्य दिखाते हुए देखा। उन्हें लगा कि परमार उनकी ओर आते सैनिकों को स्वयं रोक रहा था, किंतु उसका श्वास रुक रहा था और उसके कपाल में रक्त की धाराएं बह चली थीं, अतः वह कितनी देर तक टिक सकेगा यह नहीं कह जा सकता था। जयदेव के हाथ में तलवार फूल के समान घूम रही थी। वे प्रहार झेलते और करते। तीरों की वर्षा करते; और रह-रहकर 'जय सोमनाथ' का घोष कर उठते। उन्हें लगा कि आज उन्होंने अपनी लाज रख ली। उन्हें उनके पूर्वज उत्साहित करते हुए सुनाई पड़े। स्वयं की परमभट्टारक की उपाधि सार्थक होती लगी। गर्व के कारण शौर्य जितना था उससे कहीं अधिक बढ़ गया। एक क्षण के लिए उनकी आँखों के सामने अँधेरा आया—गया। उन्हें अधिक अच्छी तरह दिखाई देने लगा। मात्र उनके कानों में कुछ स्वर सुनाई पड़ने लगे। उनका दायां हाथ कुछ ढीला पड़ने लगा। एक क्षण में हाथ पलट लिया। वे बाएं हाथ से खड्ग घुमाने लगे। सामने से आते हुए सैनिकों के मुख पर उन्हें कायरता दिखाई पड़ रही थी। हो सकता है यह मात्र भ्रम ही रहा हो।

एकाएक परमार गरजकर अपनी ओर आते हुए सैनिक पर टूट पड़ा।

यह इस प्रकार क्यों घबराता है? वह स्वयं तो अभी तक नहीं

थका! चारों ओर सैनिक घायल हो-होकर गिर रहे थे किन्तु खेमा किधर गया?—

एकाएक एक चीत्कार सुनाई पड़ी। महाराज ने ऊपर देखा। उन्होंने कपाल पर से स्वेद और रक्त पोंछा। सामने घोड़ी पर से एभल नायक भूमि पर गिर पड़ा था। किसीने उसे बाण मार दिया था। क्या खेमा ने मारा?

'शाबाश!' महाराज के मुंह से निकल गया। सैनिकों में खलबली मची। वे एभल नायक को देखने के लिए दौड़े। धेभान परमार ने लौटते हुए एक-दो सैनिकों को समाप्त किया ही था कि खेमा कूदकर आ पहुंचा। उसने राजा पर आक्रमण करने वाले दो-चार सैनिकों को ठिकाने लगाया। दो-तीन भाग गए। राजा की आँखों के सामने अंधेरा होने लगा। उन्होंने दीवाल पर हाथ टेका। वे तलवार अब भी घुमा रहे थे किन्तु अब किसी को लग नहीं-रही थी। परमार उनकी सहायता को आ रहा था, किन्तु निकट आते-आते धम से गिर पड़ा। राजा का कंठ सूख गया। उन्हें चक्कर आगए।

'देव! इस पानी से मुंह धो लीजिए।' खेमा का स्वर सुनाई पड़ा।

उन्होंने पानी लिया और मुंह पर डाल लिया। अब उन्हें कुछ-कुछ स्पष्ट दिखाई देने लगा। सब सैनिक भूमि पर पड़े हुए थे। परमार उनके पावों के सामने पड़ा हुआ था। खेमा और वे दोनों खड़े हुए थे।

'कहाँ गए सब?' राजा ने इस प्रकार पूछा मानो वे कुछ समझ न पाए हों।

'यम के घर; कुछ भाग गए। महाराज आप दोनों ने मिलकर ही सभी को समाप्त किया है।'

'और एभल को तूने मारा?'

'हाँ महाराज! आप बाहर निकले और मैं लेटा-लेटा धनुष तीर लेकर निकला और पेट के बल सरकते-सरकते उसे तीर मारा।'

'जीता रह !'

'महाराज ! अब समय नहीं है । यह काली घोड़ी यहाँ चर रही है । यह परशुराम ही की लगती है । थकी हुई नहीं लगती । मैं सब कर लूंगा, आप संभलो जाइए । अब और कोई आजायगा तो लड़ने की शक्ति नहीं है ।'

'यह क्या कहता है ? जयदेव से कोई जीता भी है ?'

'जब तक सोमनाथ भगवान् की कृपा है तब तक बना हो सकता है ?' कहकर खेमा घोड़ी ले आया और सहारा देकर जयदेव को उस पर चढ़ाया ।

'थोड़ा पानी पी लीजिए और चढ़े रहिए, यह तलवार साफ करके देता हूँ, और यह धनुष-बाण भी लेते जाइए । हाँ, ठहरिए, इन एक-दो बड़े घावों को भी बाँध देता हूँ ।' कहकर खेमा राजा की टहल में लग गया ।

'तू भी तो चल !'

'देखूँ तो सही कि परमार जीवित है या नहीं ।'

'खेमा ! आज तो हमने हद ही कर दी ।' राजा गर्व दिखाए बिना न रह सके ।

'महाराज ! काकभटजी का पता लगवाइएगा ।' खेमा ने सूचित किया ।

'अवश्य ' राजा ने कहा और घोड़ी को एड़ मारी । परशुराम की सुविख्यात घोड़ी हिरन के समान उछलकर बढ़ी ।

ताप दुःसह था, किन्तु राजा के मस्तिष्क में विजय का प्रमाद था । अकेले ही दुर्जय एभल और सोरठी सैनिकों को ठिकाने लगाया था और परशुराम की घोड़ी लौटा लाए थे । उनकी रगों में रक्त उछल रहा था, उनकी आँखों के सामने रंग-बिरंगे चित्र दिखाई दे रहे थे । सब कुछ अपार्थिव दिखाई पड़ रहा था । घोड़ी पवनवेग से जा रही थी । चारों ओर की वस्तुएँ भागती-सी लग रही थीं ।

उनके नथुने फूल रहे थे, उनके घावों में से रक्त निकल रहा था। किन्तु उनके कान में विजय-घोषणा हो रही थी। एकाएक एक की अनेक घोषणाएं हो गईं। चारों ओर से अश्वारोही निकल आए। ये सब कहाँ से आगए यह समझ में न आया। आगे आनेवाला परशुराम-सा लग रहा था।

साथ में कोई अपरिचित पुरुष भी था। नहीं, अपरिचित नहीं—उसका मुख उसकी रानी के समान था। उन्होंने घोष किया—'जय-सिंहदेव महाराज की जय!'

'जय सोमनाथ!' राजा ने कहा।

सभी उन्हें घेरकर खड़े हो गए। उनका गला सूखने लगा।

'कौन, देवी? तुम कहाँ से? परशुराम....तुम्हारी....घोड़ी'....राजा ने बोलने का प्रयत्न किया किन्तु कंठ रुंध गया। 'परमार! काक....खेमा....एभल' किन्तु कुछ भी स्पष्ट न निकल सका। लोगों ने उन्हें उठाया....अँधेरा हो चला था।

: ४६ :

काक का क्या हुआ?

दूसरे दिन रात्रि को जयसिंहदेव महाराज को लगा कि उनके अंग-अंग में पीड़ा हो रही है और उनके हाथ-पाँव पर पट्टियाँ बंधी हुई हैं। क्या वे बंदी बना लिये गए? क्या उन्होंने एभल नायक और सोरठियों पर विजय प्राप्त की यह बात सच नहीं है? उन्हें लीलादेवी और परशुराम मिले यह क्या स्वप्न था? उन्होंने आँखें खोलने का प्रयत्न किया, किन्तु ऐसा लगा मानो वे मूँद दी गई हों। बड़ी कठिनाई से

वे आँखें खोल पाए। क्या वे कारागृह में थे ? पाँवों की ओर दो वृद्ध मनुष्य बैठे थे। सिरहाने के निकट एक स्त्री बैठी हुई थी। उन्हें सभी के मुख परिचित लगे।

'बेटा ! जयदेव !' उस स्त्री का स्वर सुनाई पड़ा।

जयदेव ने स्वर पहिचाना, 'माँ, मैं कहाँ हूँ।'

'राजमहल में।' मीनलदेवी ने कहा, 'वैद्यराज, दवा लगाओ।'

'बहुत अच्छा।' कहकर वैद्यराज ने दवा लगाई। राजा को कुछ आराम मिला।

'माँ ! परमार कैसा है ? कौन महेता जी ?' राजा ने पावों की ओर बैठे हुए दूसरे वृद्ध को संबोधन करके कहा।

'हाँ, महाराज !' मुंजाल ने कहा, 'परमार अच्छा है। चिन्ता न कीजिए।'

'और एभल नायक ?'

'उसका जीना कठिन है।'

'और काक का क्या हुआ ?'

'तू क्यों चिन्ता कर रहा है ?' मीनलदेवी ने पूछा।

'मैं न करूं तो कौन करेगा ? वह तो मेरा दायां हाथ है।' राजा ने तनिक चिढ़कर कहा। वैद्य ने उनके हाथ-पर-हाथ फेरा। मीनलदेवी ने राजा के माथे पर हाथ रखा। राजा तनिक अस्वस्थ होने लगा। राजा की मच्छरदानी के पीछे से एक निःश्वास सुनाई पड़ा। राजा ने सुना। उनके मस्तिष्क के आगे लीलादेवी का मुख आया।

'महेताजी ! मैं कब अच्छा हो जाऊँगा ?'

'शीघ्र ही—दो-तीन दिन में ! चोट बहुत थोड़ी लगी है।'

'परशुराम कहाँ है ?'

'बेटा उसे बुलवाने भेजूं ?'

'हाँ।'

मीनलदेवी की आज्ञा पाकर एक अनुचर परशुराम को बुलाने

गया। राजा आँखें मींचकर पड़े रहे। थोड़ी ही देर में दंडनायक आ पहुँचे। राजा उसकी प्रतीक्षा ही कर रहे थे अतः उसके आते ही उन्होंने आँखें खोलीं।'

'परशुराम !'

'आज्ञा।'

'काक की खोज की ?'

'महाराज ! चिन्ता न कीजिए। उसके लिए चारों ओर अनुचर दौड़ा दिए हैं।'

'हां ! मैंने उसके प्रति अन्याय किया और एक वह है कि मेरे लिए मृत्यु के मुख में गया। वह न होता तो आज हम सब एभल नायक के बंदी बन जाते।'

'खेमा ने मुझे सब कह दिया है।' मीनलदेवी ने कहा, 'और खेमा स्वयं काक को खोजने गया है।'

'कौन जाता है और कौन रहता है इसकी मुझे चिन्ता नहीं। मुझे काक मिलना चाहिए।'

'महाराज !' मुंजाल ने कहा, 'आप इस समय शांत रहें। कल प्रातःकाल इच्छा हो तो आप स्वयं खोजने जाइएगा। मुझे भी काक की चिन्ता है।'

'नहीं तो उस खेंगार का पूरा-का-पूरा गिरनार उखाड़ फेंकूंगा।' राजा ने कहा।

'अन्नदाता ! अब मौन होकर सो जायं तो अच्छा।' वैद्यराज ने कहा। राजा ने पड़ पलटा।

दूसरे दिन प्रातःकाल खेमा लौट आया। उसने कल जहां युद्ध हुआ था वहां से पदचिह्नों के पारखियों की सहायता से काक के अश्व द्वारा पकड़ा हुआ मार्ग भी खोज डाला था। पदचिह्नों से लगा कि राजा से विदा होकर वह एकाध योजन आगे गया, पीछे सोरठियों की टोली भी वहीं चली आ रही थी, और सामने से कुछ दूसरे

व्यक्तियों के आने के चिह्न भी थे। वहां भिड़न्त के चिह्न भी थे। कुछ व्यक्ति मरे, ऐसा भी लगा। वहां से अनुमानतः सभी एभल नायक की चौकी की ओर गये।

आगे बढ़ना खेमा को बुद्धिपूर्ण न दिखाई दिया। किन्तु दो बातें स्पष्ट हो गईं—एक तो यह कि काक बन्दी बना लिया गया, और दूसरी यह कि उसे एभल की चौकी पर ले जाया गया। किन्तु काक जीता पकड़ा या मरा, एभल ने उसे बन्दी किया या मार डाला, वह चौकी में था या नहीं, इन प्रश्नों का निर्णय न हो सका। मुंजाल और परशुराम ने मन्त्रणा करके निश्चय किया कि इस समय एभल की चौकी पर हमला करने से कुछ हाथ न लगेगा क्योंकि यदि क्रुद्ध सोरठी आवेश में आ जाते तो काक को मार डालते। एभल इस समय अचेत था अतः उससे भी कुछ मालूम न हो सकता था।

स्थिति गम्भीर हो गई। अच्छे होकर महाराज में काक को खोजने की अधीरता इतनी बढ़ गई थी कि उन्हें पुनः ज्वर चढ़ आया। जगदेव परमार जीवन और मृत्यु के बीच झूल रहा था। एभल नायक मृत्यु के द्वार में जा खड़ा हुआ था। मुंजाल ने सम्पूर्ण अधिकार अपने हाथ में ले लिये। राजगढ़ के द्वार बन्द करके, राजा के अच्छे हो जाने का समाचार चारों ओर फैला दिया गया। सम्भव है एभल का बदला लेने के लिए सोरठी काक को मार डालें इस भय से एभल भी अच्छा है यह समाचार जूनागढ़ तक पहुँचाने की युक्ति की गई। सम्भव है इस समाचार का लाभ उठाकर खेंगार आक्रमण कर बैठे अतः ऐसा प्रबन्ध किया गया कि वह विजयी न हो सके। चारों ओर की चौकियाँ दृढ़ कर दी गईं। परशुराम के स्थान पर मुंजाल बैठे और चारों दिशाओं का अधिकार महाअमात्य ने अपने हाथ में ले लिया।

मीनलदेवी और वैद्यराज ने राजा की दशा सुधारने का प्रयत्न किया। लीलादेवी मर्यादा के कारण राजा के निकट न बैठ सकीं।

तीन दिन हो गए, काक का पता न लगा। यदि वह जीवित होता

और बन्दी न बना होता तो अवश्य लौट आता। और यदि उसे एभल नायक ने पकड़ा होता तो वह एभल नायक के साथ क्यों न था ? सभी के मस्तिष्क में यह भारी शंका उत्पन्न हो गई कि काक एभल के साथ लड़ते हुए मारा गया। यह शंका जैसे-जैसे दृढ़ होती गई वैसे-वैसे प्रत्येक व्यक्ति के आचरण में परिवर्तन होने लगा। मुंजाल का मुख गम्भीर हो गया, और उनकी वाणी में मधुरता का स्थान कटुता ने ले लिया। मीनलदेवी को लगा कि काक की मृत्यु बड़ा अशुभ चिह्न है और उसका अमंगल प्रभाव उनके पुत्र और उनकी पुत्रवधू पर अवश्य होगा। परशुराम उग्र हो गया और उसकी आंखें ऐसे रहने लगीं मानो सुलग रही हों, और उनमें क्रोध का आवेश होते हुए भी वे अपनी बेचैनी न छिपा सकीं। लीलादेवी तो सिंहनी के समान अकेले ही इधर-से-उधर चक्कर काटती रहीं।

राजगढ़ पर चिंता के मेघ छा गए थे। प्रत्येक के हृदय में किसी नई, किसी अपशकुन-भरी बात की झनझनाहट हो रही थी।

तीसरा खण्ड

: १ :

अक्षयतृतीया का उत्सव

अक्षयतृतीया की संध्या थी। भृगुकच्छ में गंगनाथ का विशाल मेला लगा था। आज कितने ही दिन से गाँव-गाँव से लोग इस उत्सव में भाग लेने के लिए चले आरहे थे। किसी भी अक्षयतृतीया पर इतने अधिक लोग एक साथ एकत्रित हुए हों ऐसा किसी को स्मरण नहीं आता था।

रेवास्नान या यात्रा के बहाने, लाट की राजधानी में घूम आने के बहाने, आनन्द करने के बहाने, व्यापार-वृद्धि करने या 'साइत' निश्चित करने के बहाने, विभिन्न स्थानों का दर्शन करने के बहाने, या साल-भर के लिए अनाज भर ले जाने के विचार से—यों अनेक कारणों से लोग अक्षयतृतीया पर लाट में एकत्रित होते थे; ऐसे समय पर रेवास्नान का माहात्म्य भी बढ़ जाता था; और गाँव-गाँव से ब्राह्मणों के संघ श्रद्धा प्राप्त करने या उसका प्रचार करने आ पहुँचते थे। तीन-चार दिन के लिए यात्री उत्सव में रँग जाते थे; और प्रत्येक प्रकार के रास-रंग में स्वच्छंद होकर निमग्न हो जाते थे।

रेवाजी के विशाल तट पर फूस की कामचलाऊ कुटियां बनाकर लोग पड़े थे; सम्पूर्ण गाँव में चींटियों के समान लोग उमड़े पड़ रहे थे। रात-दिन कीर्तन भजन होते थे। मंदिरों और घाटों पर लोग जमा रहते थे।

इस वर्ष मेले में दो वस्तुएँ असाधारण थीं। मेले में आनेवाले स्त्री-बच्चों को बहुत कम ला रहे थे; और इतने बड़े मेले में विदेशियों की दुकानें इनी-गिनी ही थीं। लूट लिये जाने की गप्प भी कुछ-कुछ उड़ चुकी थी, किन्तु इसे कोई मानता न था। लोगों में इतना अधिक उत्साह

था और नगर के रसिक लोग इस अवसर पर आमोद-प्रमोद में इतने तल्लीन होगए थे कि कोई भी यह न देख सका कि इस मेले में कुछ-न-कुछ असाधारणता अवश्य है।

अक्षयतृतीया की संध्या को सरिता तीर पर लोगों की विचित्र भीड़ थी। कोई गा रहे थे, कोई 'गङ्गनाथ की जय' कह रहे थे, कितनी ही भजनमंडलियाँ कीर्तन कर रही थीं। कुछ रसिक लोग चक्राकार बैठकर इधर-उधर की बातें कर रहे थे, कई सरिता में जलते हुए दीपक छोड़ने की तैयारी में लगे हुए थे, कई आतिशबाज़ी छोड़ने के लिए अँधकार होने की प्रतीक्षा में बैठे हुए थे; कई धीवरों से सरिता में घूमने का मूल्य ठहरा रहे थे।

फिर भी, न जाने क्यों कई विदेशी मौन होकर चुपचाप इधर-उधर घूम रहे थे। ज्यों ही अँधेरा होने लगा त्यों ही वे शीघ्रगति से छिप-छिप कर गलियों में घुसने लगे।

पहाड़ी सैनिक भी इस पर्व का पूरा-पूरा लाभ उठाने के लिए गले में हार पहनकर, हाथ में छड़ी लेकर अन्य व्यक्तियों के साथ मिल-जुल कर आनंद में चूर रहे थे।

की अद्भुत शक्ति प्रदान कर रहे थे। इस वातावरण में रह-रहकर भक्त-जन सजलनयन होकर जगपावनी गंगा के स्वामी के दर्शन करके पाप-मुक्त हो रहे थे।

रात होने आई अतः दर्शनार्थियों को अंदर आने से रोक दिया गया। जितने मंडप में थे बस वे ही खड़े रहे। देखते-ही-देखते मन्दिर के सामने दर्शनार्थियों और मेले में घूमने वालों का झुंड जम गया। आरती का समय होगया था अतः नगर के अग्रगण्य नागरिक भी आगए थे। नगरसेठ तेजपाल और उनके लाट तथा अन्य नगरों से आये हुए अतिथि, पट्टणी सेना का नायक भटराज माधव और लाट का सेना-नायक रुद्रमल्ल, कोठारी भाभा सेठ और दो-चार अग्रगण्य नागरिक—ये सभी आगए थे।

गंगनाथ महादेव की अक्षयतृतीया की आरती पुरातनकाल से बहुत महत्वपूर्ण अवसर माना जाता था। लाट के स्वतन्त्र राजा सभासदों सहित इस अवसर पर उपस्थित रहते थे और आरती समाप्त होने के पश्चात् नगर में राजा की 'सवारी' निकलती थी। लाट की स्वतन्त्रता नष्ट हो जाने के पश्चात् भी पट्टणी सत्ताधीशों ने इस आरती के माहात्म्य को ज्यों-का-त्यों बना रखा था। केवल आरती के पश्चात् सवारी निकालने की प्रथा उन्होंने बन्द कर दी थी।

सभी अग्रगण्य नागरिक आगए थे किन्तु दुर्गपाल आँबड़ महेता न आए थे। इन तीन दिनों में मेले का संपूर्ण उत्साह उनमें भी भर गया था और वे भी आमोद-प्रमोद में निमग्न होगए थे। माधव भी रसिक व्यक्ति था अतः उसने भी जी भरकर रस लिया किन्तु दंडनायक और दुर्गपाल दोनों की अनुपस्थिति में पाटण की सत्ता के प्रतिनिधि स्वरूप कोई-न-कोई तो आरती में होना ही चाहिए यह सोचकर वह आ-गया था। प्रातःकाल उसने आँबड़ महेता से आरती के विषय में पूछा था उस समय उन्होंने आरती में उपस्थित रहने की अनावश्यकता जताते हुए देवभद्रसूरि के उपाश्रय में उपस्थित रहने की घोर आवश्य-

पता के विषय में कुछ कहा था। माधव को यह अच्छा न लगा, किन्तु दुर्गपाल और महेता के पुत्र को उपदेश देना उसने उचित न समझा। तेजपाल सेठ ने अपने भावी जामाता के विषय में पूछताछ करवाई किन्तु कुछ पता न लगने के कारण उन्होंने इसकी चर्चा ही छोड़ दी।

किसी को आरती की तैयारी न करते देख तेजपाल ने मध्यद्वार में गर्दन डालकर कहा—'क्यों गोर, कितना विलम्ब है?'

एक अधेड़ वय के ब्राह्मण ने गर्दन उठाई, 'आज तो पिताजी आने वाले हैं।'

तेजपाल सेठ की आँखें तनिक चौड़ी होगईं। जब से लाट की स्वतन्त्रता नष्ट हुई तब से वृद्ध राजगोर ने किसी भी काम में भाग लेना बन्द कर दिया था। आज उसकी आरती करने की इच्छा से वह तनिक शंकित हो उठा। उसने चारों ओर देखा। कुछ विदेशी व्यक्ति थे और कुछ नगर के अग्रगण्य नागरी थे। उसे शंका निरर्थक लगी।

इतने में पौत्र का सहारा लेकर चलता हुआ, लगभग अंधा हो चुका राजगोर आया। सभी ने स्वागत किया। जयजयकार को स्वीकार करते हुए वह अंदर गया। उसके पुत्र ने पूछा, 'पिता जी, आरती प्रारंभ करूं?'

'हाँ! संध्या हो गई है। किन्तु—किन्तु—' वह चारों ओर देखने लगा।

उसका पुत्र श्रीकृष्ण प्रज्वलित करने लगा। बाहर लोग बात करते रह गए। राजगोर ने आरती लेने के लिए हाथ बढ़ाया ही था कि द्वार से एक गंभीर और धीर स्वर सुनाई पड़ा, 'गुरु! तनिक रुकिए। स्वामी महाराज जयानन्द सरस्वती को आ जाने दीजिए।'

सबने देखा मानो मंदिर घूम रहा हो। चकित होकर सबने द्वार की ओर देखा। संन्यासी द्वार में खड़ा हुआ था। उसके गंभीर सुन्दर मुख पर प्रशान्त गांभीर्य था। उसकी आँखों में गहन आवेग था। जयानन्द सरस्वती—पूर्वकाल के प्रचंड सेनापति—नष्ट हुए लाट की

अमर महत्ता की सजीव मूर्ति-इस समय यहां! तेजपाल सेठ के मस्तिष्क में, कुछ प्रकाश-किरणें चमकीं। उन्होंने घबराकर अपने पुत्र की भयंकर मुखमुद्रा की ओर देखा। माधव भटराज का कपाल आकुंचित हो गया। उसे लगा वह स्वयं यहाँ न आया होता तो अच्छा होता।

ब्रह्मानन्द सरस्वती ने हाथ में दंड लेकर प्रवेश किया। सबने विशेष सम्मान से उनके लिए मार्ग कर दिया। मंदिर के वातावरण में पूज्यभाव और भी प्रबल हो गया। वे धीरे-धीरे चलते हुए वेदी के निकट जाकर तेजपाल सेठ के निकट बैठ गए। रेवापाल—कालभैरव के समान भयानक और अचल—द्वार के सामने खड़ा रहा।

स्वामीजी के आने से बाहर खड़े लोगों में कुछ हलचल मची। इस धमाचौकड़ी का लाभ उठाकर एक नवयुवक योद्धा मंडप के द्वार तक आ गया। सोमेश्वर—काक का शिष्य और नए गढ़ का गढ़रक्षक, आरती में विलंब से पहुँचने के डर से दौड़ा-दौड़ा आया था। वह द्वार के अंदर आया। उसने रेवापाल को देखा। उसने अंदर ब्रह्मानन्द सरस्वती को वेदी की ओर जाते हुए देखा। शिवलिंग के सामने वृद्ध राजगोर को आरती की तैयारी करते हुए देखा और पिछले दिनों में देखी हुई कई अपरिचित वस्तुओं और सुनी हुई कई गप्पों का स्मरण हो आया। उसकी आँखें चमक उठीं। वह कुछ-कुछ समझ रहा था। वह अंदर घुस कर माधव के निकट जाने लगा। रेवापाल ने हाथ लंबा करके द्वार पर रख दिया।

'सोमेश्वर! आगे स्थान नहीं है।' सत्ता-मय स्वर में रेवापाल बोला।

सोमेश्वर ने क्रुद्ध होकर रेवापाल की ओर देखा। उसने रेवापाल की आँखों में क्रूर तेज देखा। वह रेवापाल का स्वभाव जानता था। शंका के कारण शीघ्रता करके झगड़ा मचाने में उसे कोई तथ्य न दिखाई पड़ा। वह रेवापाल के पीछे ही खड़ा रहा। सबको वातावरण रहस्यमय

और धुंध लगने लगा। राजगोर ने काँपते हुए हाथों से आरती ली और थर-थर करते खड़े हुए। खड़े होते समय पाँव फिसल गया और आरती हाथ से गिर पड़ी—

इसके पश्चात् क्या हुआ कोई न समझ पाया। वातावरण भयंकर स्वप्न के समान हो गया। मंत्र पढ़ने वाले ब्राह्मणों ने फूँक मारकर दीपक बुझा दिए। रेवापाल ने वेग से अगला द्वार बंद कर दिया। संपूर्ण मंडप में प्रगाढ़ अन्धकार छा गया। कहीं लोगों का पगरव—कहीं भाग-दौड़—एक दो चीत्कार और धक्कमधक्का की आवाज़—और रेवापाल का प्रेतलोक में प्रतिध्वनि के समान अपार्थिव स्वर सुनाई पड़ा—'राजगुरु! स्वतन्त्र लाट की ओर से अब गंगनाथ भगवान् की पूजा करो।'

ब्राह्मणों ने दीपक जलाए। मंडप में एकत्रित हुए नागरिकों ने आँखें खोलीं। यहाँ खड़े हुओं में से अधिकतर के हाथ में नंगी तलवारें थीं और तेजपाल, माधव, रुद्रमल्ल, और भाभासेठ—पाटण की सत्ता के प्रतिनिधि—यहाँ से अन्तर्धान हो गए थे। वेदी के सम्मुख ब्रह्मानन्द सरस्वती खड़े हो गए, 'लाटवासियो! घबराओ मत! लाट आज स्वतन्त्र हो गया है। राजगुरु! आरती प्रारम्भ करो। रेवापाल! मैं कल शोणित उतार दूंगा।'

'गुरुदेव की जय! गंगनाथ भगवान की जय!' उन्माद से रेवापाल

और रेवापाल को द्वार बंद करने के लिए हाथ बढ़ाते देखा। वह सब समझ गया। लोगों को धक्का मार-मारकर मार्ग बनाते हुए वह सान्वा बृहस्पति के बाड़े की ओर भागा।

नदी-तीर पर आनन्द मनाते पट्टणी सैनिक रेवापाल द्वारा छोड़ी हुई 'चक्री' देखकर हँसने लगे। किन्तु हास्य पूरा होने के पहले ही दो हज़ार सशस्त्र व्यक्ति उन पर टूट पड़े और हाथ बाँधकर उन्हें ले चले। मेले में हाहाकार मच गया। लोगों में भगदड़ मच गई। नगर में द्वार बन्द होने प्रारम्भ हो गए।

'चक्री' उठाकर रेवापाल छत पर खड़ा रहा। फिर, वहाँ एकत्रित हुए व्यक्तियों से कहा, 'लाटवासियो! आज हम पशु न रहकर मनुष्य हो गए हैं। पट्टणी सेना को भृगुकच्छ से उखाड़ फेंका है। इस समय खेटकपुर* वटपद्र† जम्बूसर, अंकलेश्वर और नांदोद, माँडवी और कामरेज—सब स्थानों पर उनकी सेना का विनाश प्रारम्भ हो गया होगा।

'बन्धुओ! लाट की शृंखलाएं आज टूट गई हैं—कल प्रातःकाल स्वर्ण का सूर्य उदय होगा। हाथों से निकला लाट कल प्रातःकाल तुम्हारे हाथों में होगा। गुरुदेव ध्रुवसेन सेनापति कल जोगिया उतार देंगे और लाट पर उनका अधिकार होगा। जाओ आनन्द करो और बोलो—गंगनाथ भगवान् की जय!'

वहाँ खड़े हुए कई व्यक्ति समझे। कई न समझते हुए भी खड़े रहे। सबने दुहराया—'गंगानाथ महादेव की जय! ध्रुवसेन सेनापति की जय!'

आनन्दमग्न भृगुकच्छ में घबराहट फैल गई। लोग बिना समझे भागने लगे। उनका उत्साह त्रास में परिवर्तित हो गया। दूकानदारों ने दीपक बुझा-बुझाकर दूकानें बन्द करना प्रारम्भ कर दिया। यात्री

---

* खेड़ा † बड़ौदा

कुछ समझ न सके। किसीके बच्चे खो गए, किसी ने मां-बाप खो दिए, कोई समझ न पाया कि कहाँ जायँ। किसीने कहा पट्टणी मार डाले गए, किसीने सुना कि पट्टणिओं ने मार-काट आरम्भ कर दी है। किसी ने 'ध्रुवसेन सेनापति की जय' सुनी, किसीको विश्वास हो गया कि ध्रुवसेन सेनापति परलोकवासी होगए। प्रत्येक व्यक्ति भागने लगा, प्रत्येक कांपने लगा। सब अपने घर या निवास-स्थान की ओर भागे।

थोड़ी देर में नगर में सशस्त्र व्यक्ति चक्कर काटने लगे और पट्टणी सत्ताधीशों के घरों की तलाशी लेने लगे। जहाँ पट्टणी पगड़ी पहने किसीको देखा उसे बन्दी बनाना आरम्भ किया।

तीन-चार घड़ी पश्चात् कुछ मनुष्यों के साथ रेवापाल गंगानाथ के मन्दिर से बाहर निकला और घोड़े पर चढ़कर नगर की देख-भाल करने के लिए चल दिया।

—

: २ :

नर्मदा की आरती

भृगुकच्छ में नए दुर्गपाल आंबड़ महेता ने अक्षयतृतीया के उत्सव के दिन पूरा-पूरा आनन्द भोगने का निश्चय किया था। प्रातःकाल जब जी करता उठता और शरीर पर उबटन करवाने के पश्चात् स्नान करके पालकी में बैठकर साम्बा बृहस्पति के बाड़े में जाकर दरबार लगाता था। स्थान-स्थान से आये हुए निमन्त्रणों को स्वीकार करने में और माधव नागर के संग मेले में घूमने में दिन व्यतीत हो जाता था। संध्या को नौका में बैठकर सरिता में घूमने निकलता और जी करने

रिता में दीपक बहाने का काम भी हँसते-हँसते अपने ही हाथों
: ।

आँबड़ महेता के हृदय में अग्निभुवनेश्वर के मन्दिर में आरती के
दर्शन करने के लिए जाने में विचित्र श्रद्धा जाग पड़ने के कारण
ा पर से वह वहाँ जाता, और घूमते-फिरते रात्रि को तेजपाल नगर-
के यहाँ सोने के लिए पहुँच जाता। मार्ग में चलते हुए व्यक्तियों
सी उड़ाना, सुसज्जित दूकानों में चले जाना, जहाँ भजन-कीर्तन
हा हो वहाँ सुनने के लिए खड़े हो जाना, रात को द्वीप पर जाकर
ातिशबाज़ी छोड़ना, स्वच्छन्द होकर घूमना और हँसना—नवीन दुर्ग-
का यह आचरण शिष्टाचार का रूप लेने लगा। उसकी वेशभूषा
नवीनता, उसकी पगड़ी का रंग, उसके चलने का ढंग, उसकी
ीम उदारता, इन सबमें कुछ ऐसी मोहक निर्लज्जता थी कि भृगु-
के इने-गिने रसिकों ने पाटण और खम्भात के अग्रगण्य रसिक
ामने सिर झुका दिया और उसके रहन-सहन का अनुकरण कर
की रसिकता में बड़े वेग से पट्टणीत्व का समावेश करने लगे।
ेर, वयोवृद्ध और शुष्क नागरिकों ने परम्परा से चली आई प्रतिष्ठा
भावना को इस प्रकार भंग होते देखकर निःश्वासें लेना आरम्भ
ा।

नेरा तोतला दुर्गपाल का अनुचर बन गया था। उसका हँसता
मुख और हँसी छूट जाय वैसा शरीर दुर्गपाल की रसिकता में
वृद्धि करते थे।

आंबड़ महेता मेले का आनन्द लेकर दिन में दो बार मंजरी के
जाता, किन्तु विद्वत्ता और संस्कार की निरन्तर सेवा में परिपक्व
हुई मंजरी की रसिकता और पति-वियोग से हतोत्साह हुई उसकी
त्ति को आम्रभट की यह रसिकता दुःसह हो गई। नूतन दुर्गपाल
ाह मनोदशा परखने जितना अवकाश न था। अक्षय तृतीया
आँबड़ महेता अपने पूरे रंग में था। उसकी विशेषताएँ आवश्य-

कता से अधिक ध्यान आकर्षित कर रही थीं। दुर्गपाल के उदाहरण से लाट के अन्य युवकों को भारी प्रेरणा मिली।

प्रातःकाल आम्रभट ने नेरा को बुलाया। नेरा नूतन दुर्गपाल का विश्वासपात्र अनुचर और सलाहकार हो गया था।

'नेरा ! आज क्या ?'

'ब....ब....बापू ! सं...संध्या' नेरा ने स्वर धीमा करके कहा, 'को दे...दे....देवी रे....रेवाजी की आरती में जायंगी। आ....अ.... आप तो गं....गंगानाथ की आरती में ज....ज....जायंगे न ?'

आम्रभट तनिक कुढ़ गया।

'मैं गंगनाथ की आरती में नहीं जाऊंगा, किन्तु रेवाजी की आरती में केवल स्त्रियाँ ही जायंगी, मैं कैसे जा सकता हूं ?'

नेरा के मुख पर विशाल हास्य फैल गया। 'न....नेरा पर विश्वास रखिए मेरे अन्नदाता ! प....पड़ोस में एक ब....घ...घर है। वहां से स....स... सब कुछ दिखाई देता है।'

'किन्तु घर के लोग जान जायंगे तो ?'

'कै....कै....कैसी बात करते हैं मेरे स....स्वामी !' नेरा ने थोड़े ही दिनों में आँबड़ महेता के साथ मित्रता कर ली थी, 'पूरे घ....घ... घर में मात्र हम दो होंगे।'

'वाह, नेरा भट।' आँबड़ ने संतुष्ट होकर कहा।

'ब...ब....बापू को घणीखम्मा' कहकर नेरा ने झुककर प्रणाम किया।

आँबड़ ने बड़ी चतुराई से तेजपाल सेठ को अलग किया, माधव को चकमा दिया और संध्या होने पर नेरा को साथ लेकर पैदल ही देवभद्रसूरि के उपाश्रय की ओर चला। मेले का दिन था अतः दुर्गपाल को इस प्रकार जाते देखकर किसीको विस्मय नहीं हुआ। उपाश्रय के निकट एक निर्जन पथ पड़ा। दोनों गली में मुड़ गए। आम्रभट ने अपनी सुसज्जित वेशभूषा उतारकर नितांत सादी पोशाक

पहन ली। दोनों जल्दी-जल्दी चलकर पुनः नदी-किनारे आकर नर्मदा के मंदिर के निकट आगए। मंदिर के सामने एक छोटा-सा घर था। नेरा ने कुंजी निकाल कर ताला खोला। दोनों ने अंदर जाकर द्वार बंद कर लिया। द्वार के निकट एक खिड़की थी। नेरा ने उसे खोल दिया और उसी के निकट एक गद्दी-तकिया रख दिया। खिड़की में से रेवाजी का मंदिर दिखाई पड़ता था। यह मंदिर छोटा किन्तु सुघड़ था और मूर्ति भी बहुत पुरानी थी। गतवर्ष ही त्रिभुवनपाल दंडनायक ने पाटण से कारीगर बुलवाकर उसका पुनरुद्धार करवाया था। उसका छोटा और सुन्दर शिखर ऐसा लग रहा था मानो वह रुद्रदुहिता नर्मदा की लावण्यमय देह की प्रतिमा हो। मंदिर का मंडप इतना छोटा था कि ऐसे अवसर पर दर्शन करने के लिए आनेवालों को बाहर के चबूतरे पर ही खड़ा रहना पड़ता था।

लगभग पच्चीस-एक स्त्रियाँ आ पहुँची थीं, और धीमे-धीमे दूसरी भी आ रही थीं। आँबड़ ने तकिए पर सिर रखकर आगन्तुक स्त्रियों को देखना प्रारंभ किया। वहाँ निर्धन स्त्रियाँ भी थीं और आभूषणों के भार से झुकी हुई धनाढ्य स्त्रियां भी थीं। धनवानों की कुलवधुओं में होड़ भी स्पष्ट दिखाई पड़ रही थी। उनमें एक-दूसरे को चका-चौंध करने के प्रयत्न चल रहे थे। निर्धन से धनी बनी स्त्रियों का आडम्बर और परम्परा से धनी और संस्कारशील स्त्रियों के आभूषण पहनने की सरलता, निर्धन होते हुए भी धनवान समझे जाने के लिए व्याकुल स्त्रियों का ठाठ और धन रहते हुए भी सादगी से रहने वाली बुद्धिमान् स्त्रियों की छटा, ये सब वहाँ दिखाई पड़ रहे थे। कई वृद्ध होते हुए भी तरुणियों में गिनी जाने के लिए व्यग्र थीं और कई तरुण होते हुए भी वयभार से दबी हुई और बुद्धिमान होने का स्वांग भरती थीं, कितनी ही रूपगर्विताओं की भंगिमा स्पष्ट दिखाई पड़ती थी और कई लजीली युवतियां नीचा मुँह किए अपना रूप छिपाने का निष्फल प्रयत्न कर रही थीं। एक बहुत ही मोटी स्त्री, बहुत मोटे वलय पहन-

कर, बहुत शीघ्रता से चलने का प्रयत्न करती हुई चली आ रही थीं। दो सुन्दर बहनें, एक-दूसरे के हाथ-में-हाथ डालकर पवन में झूमती दो लताओं के समान चलकर आ पहुंचीं। छोटी बच्चियों का एक समूह कूदता, किल्लोलें करता आ पहुंचा। आँबड़ महेता मंजरी की प्रतीक्षा में अनुभवी रसिक की सूक्ष्मता से यह सब देखने लगा।

नगरसेठ के घर से भी स्त्रियाँ आ गईं। रेवापाल की स्त्री बेनां आगे आई। आँबड़ महेता इस स्त्री को देखते ही उकता जाता था और उसके संसर्ग से कैसे दूर रहे इसकी युक्ति भी कभीकी सोच ली थी। उसके पीछे उसकी सोलह वर्ष की भावी पत्नी उछलती-कूदती आई। आँबड़ विचार करने लगा कि उसके साथ जीवन भली प्रकार व्यतीत होगा या नहीं—उसका चित्त व्यग्र हो उठा। इतने में तीन स्त्रियाँ आईं। उसका हृदय उछल पड़ा।

तीन में सबसे आगेवाली देवदार के समान लम्बी और सुघड़ थी। जहाँ वह डग रखती वहाँ छटा छा जाती और जिधर वह घूमती उधर रस झरने लगता था। राजहंसिनी जैसे तैरकर आती है वैसे ही वह आ रही थी—धीमी, स्वाभाविक किन्तु गर्व-भरी गति से। उसके मुख पर तेजोमय हास्य दीप्त था। उसका स्वर बात करती हुई अन्य स्त्रियों की किलकारियों से अलग बाँसुरी के कोमल स्वर के समान सुनाई पड़ता था। मंजरी साड़ी और श्वेत वस्त्र धारण किये हुए थी। उसके अंग पर नाम के आभूषण थे। इस अवसर के लिए उसने थोड़ा-सा भी शृंगार किया हो ऐसा न लगा। फिर, उसकी सादगी की विशिष्टता में कुछ निराला ही आकर्षण था।

मंजरी आई—निरभिमान रूप से सबको चकाचौंध करती हुई, स्त्रियों में शान्ति छा गई। आँबड़ महेता के हृदय में आँधी चलने लगी।

वह और उसकी सखियां अपनी परिचित स्त्रियों के साथ हंसती-बोलती हुई आईं।

'कैसी हो बेनांभाभी ?' मंजरी ने पूछा।

'अच्छी हूँ।'

'और प्राणकुंअर तू—' आँवड़ की भावी पत्नी से मंजरी ने पूछा।

'मंजरी दीदी! आज इस प्रकार सादगी क्यों?' वह मंजरी के श्वेत वस्त्रों और निराभूषण अंगों की ओर देखने लगी।

मंजरी मुस्कराई। मुस्कराहट में तनिक ग्लानि छिपी हुई थी। 'बहन! यह समझने में अभी तुझे समय लगेगा।'

'मंजरी देवी! आपके बिना तो सब अंधेरा ही था।' एक वृद्ध स्त्री ने कहा। आँवड़ ने मौन स्वीकृति दी।

'देवी!' पुजारी आगे आया, 'देवी! अब आप आरती प्रारम्भ करिए। आपके बिना कोई आगे बढ़ती ही नहीं।'

'हाँ, देवी!' मोटे वलय वाली स्त्री का मोटा और कठोर स्वर आया, 'आपके सिवा जानता ही कौन है?' आँवड़ के हृदय में गर्व छलक उठा।

'किन्तु तुम सब कुछ तो बोलो। मैं जो कुछ बोलूंगी उसे तुम दुहराओगी न?'

'नहीं, देवी! आप ही प्रारंभ करिए। हम फिर कुछ बोलेंगी।' दो-तीन स्त्रियों ने आग्रह किया।

वेनां को यह लोकप्रियता अच्छी न लगी, यह उसके मुख से स्पष्ट दिखाई पड़ रहा था।

'अच्छा ठहरो,' मंजरी ने हंसकर कहा, 'मुझे पुराण की एक बहुत प्राचीन प्रार्थना याद है वही सुनाती हूं, बस?'

'हाँ—हाँ' सब बोल उठीं। छोटी बच्चियां तालियां बजाने लगीं, 'हां, देवी, हां, देवी।' उत्तर में मंजरी स्नेह से मुस्करा उठी।

पल-भर वह मौन रही और फिर गला ठीक किया। आंवड़ महेता हृदय में जाने क्या-क्या स्वर बजने लगे!

वह मंद प्रकाश में स्वर्ग से उतरी अप्सरा के समान उस सुन्दरी के अनुपम सौंदर्य को देखने लगा। इन सुन्दरियों के समूह में भी ऐसा

लगा मानो उसका मुख किसी अपूर्व तेज से चमक रहा हो। उसके विशाल, चंचल नेत्रों में अन्तर में दबाये हुए भावों की तनिक खिन्नता-भरी छाया थी। वह इस प्रकार झुकी मानो अपने होठों की अकंल्पित रसमयता ढालने को तत्पर हुई हो। उसकी लम्बी ग्रीवा की मोहक भंगिमा उसके मन में अन-देखे स्वप्न खड़े कर रही थी। किसी चतुर शिल्पी द्वारा निर्मित अपूर्व मूर्ति को देखकर विलासवृत्ति नष्ट होकर निर्मलता या सौंदर्य-भक्ति जाग पड़ती है, आंबड़ की ऐसी ही दशा थी। आंबड़ रसिक था किन्तु उसकी प्रकृति जड़ नहीं हो गई थी। उसके रसिक स्वभाव में सौंदर्य परखने की, सौंदर्य की पूजा करने की शक्ति समाई हुई थी। विलासी जीवन में यह शक्ति कम हुगोई थी, किन्तु जब मंजरी दूर और दुष्प्राप्य लगी और जब उसने देखा कि उसके दर्शन और उसकी प्रशंसा पर ही जीवन व्यतीत करना पड़ेगा तो उसकी यह शक्ति पुनः सतेज हो गई थी।

वह भक्त के आत्मसमर्पण से उस सुंदरी को देख रहा था। अपने बड़प्पन की बात वह भूल गया। उसकी लालसा नष्ट हो गई। उसके हृदय के अशुद्ध भाव दब गए। वह तो इतना ही सोच रहा था कि जिसे वह सौंदर्य और छटा मानता था, लावण्य और गौरव मानता था, उन सब लक्षणों की विशुद्ध और अपूर्व प्रतिमा इस समय सामने खड़ी हुई थी। अर्घ्य अर्पण करते-करते उसका मन, विनम्र होकर, प्रणाम करने लगा।

: २ :

मंजरी का स्थान

पुजारी ने आरती प्रज्वलित करके घंटा बजाना प्रारम्भ किया। वसंता-गमन के पहले जैसे कोयल कुहुक उठती है वैसे ही मंजरी कुहुक उठी। उसके स्वरों ने गोविंद के हृदय में जाने किन-किन प्रतिध्वनियों को जन्म दे दिया। उत्साह, आकांक्षा, विजय सुख, प्रेम—सभी भाव जाग पड़े। उसने अपने वक्षःस्थल पर हाथ रखकर दबा दिया; और ऐसे पड़ गया मानो मूर्छित हो गया हो।

गोविंद के हृदय में उठते हुए भावों को जाने बिना ही मंजरी ने आरती-गीत प्रारंभ किया—

नर्मदा सरितां श्रेष्ठा रुद्रदेहाद्विनिःसृता।
तारयेत्सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च॥
सर्वदेवाधिदेवेन ईश्वरेण महात्मना।
कथिता ऋषिसंघेभ्यो ह्यस्मांक च विशेषतः॥
मुनिभिः संस्तुता ह्येषा नर्मदा प्रवरा नदी।
रुद्रदेहाद्विनिष्क्रान्ता लोकानां हितकाम्यया॥
सर्वपापहरा नित्यं सर्व देवनमस्कृता।
संस्तुता देवगन्धर्वैरप्सरोभिस्तथैव च॥
नमः पुण्यजले आद्ये नमः सागरगामिनी।
नमस्ते पापशमनि नमो देवि वरानने॥

नमोऽस्तु ते ऋषिगणसिद्धसेविते नमोऽस्तु ते शंकरदेहनिःसृते।
नमोऽस्तु ते धर्मभृतां वरप्रदे नमोऽस्तु ते सर्वपवित्रपावने॥

स्वर का जादू भंग हुआ। वहाँ फैली शांति में बाधा उपस्थित हुई—दो आदमी दौड़ते-दौड़ते आए और चीत्कार करने लगे। 'जेली—जेली—' सब विस्मित होगईं। कुछ ने उनकी ओर देखा। मंजरी गाती-गाती रुक गई। पुजारी आरती करता-करता अटक गया।

'अरे सब घर जाओ। देखती क्या हो? गंगानाथ में विप्लव हो गया है। ध्रुवसेन ने जोगिया उतार दिया है—और लोग लहूलुहान हो गए हैं—भागो। जेली की माँ—' कहकर वह जेली और उसकी माँ को लेकर वहाँ से चलता बना।

तीन-चार स्त्रियों ने दूसरे मनुष्य को घेर लिया और उसके साथ जल्दी-जल्दी चलने लगीं। सब घबराकर एक-दूसरे के सामने देखने लगीं। नदी तीर से गड़बड़ की स्पष्ट आवाज़ आरही थी। दूर से कुछ चीत्कारें भी सुनाई पड़ रही थीं। कुछ स्त्रियों के घर निकट थे अतः वे अकेली ही चल दीं। मंजरी ने गर्व से चारों ओर देखा। व्याकुल हिरणी की भाँति सभी स्त्रियाँ भयाकुल आँखों से चारों ओर देख रही थीं।

'बहनो, घबराओ मत। गप्प मालूम होती है। हमें कौन छेड़ सकता है?'

'ओ देवी—देवी—मंजरी देवी—' चीत्कार करता हुआ मणिभद्र हाँपता-हाँपता आया। उसके कंधे पर मंजरी की पुत्री महाश्वेता थी और काँख में मंजरी का पुत्र वासरि। उसकी आँखें भय से फटी हुई थीं।

मंजरी का मुख कुछ उतर गया। 'मणिभद्र! क्या है?'

'देवी! देवी! हो न? रेवापालने सब पट्टणियों को मार डाला। नगर में लूट-पाट मची हुई है। अपना घर लूटने आए थे। मैं छत पर होकर इन दो को ले आया हूं। देवी, चलिए भाग चलें।'

मंजरी के होठ फड़के। उसकी आँखों से अग्नि निकलने लगी। उसने वेना की ओर क्रोध से देखा, 'वेना देवी, यह क्या है?'

वेना कुछ-कुछ जानती थी। वह निश्चित होकर खड़ी-खड़ी देखती रही। 'है क्या?' उसने अपमान-भरे स्वर में कहा, 'सौ दिन सुनार के और एक दिन लुहार का। आज पाटण का अस्त हुआ और लाटका दिन उदय हुआ है। बहनो, चलो मेरे साथ। किसी का कुछ न होगा। आज से रामराज्य प्रारम्भ हुआ है।'

'मंजरी घबराई, क्षुब्ध होकर पल-भर तक खड़ी रही। सब घबराकर

वेनां की ओर गई और वह सबसे आगे आकर खड़ी होगई। मंजरी ने तुरंत मन को स्थिर किया और मणिभद्र से चौसरि को ले लिया।

आंबड़ ने सब सुना। उसके प्राण निकल गए। किंतु इस समय पाटण या स्वयं की चिंता से अधिक तो उसे मंजरी की चिंता थी। वह एकदम उठा, नेरा को लेकर द्वार खोलकर, घर के बाहर आया।

वेनां थोड़ी देर खड़ा रही, हंसा, और गौरवनष्ट, घबराई हुई मंजरी की ओर देखने लगी। एकाएक उसे उसके पति का दिया हुआ वचन याद आया और वह उसके पास जाकर कुछ अभिमान से बोली—

'मंजरी भाभी! तुम्हारे जेठ ने मुझसे कहा है कि तुमको मैं अपने घर ले जाऊँ। अब यहां पाटण का कोई नहीं जो तुम्हारी सहायता को दौड़कर आ सके। और इस समय तुम्हारे घर का भी ठिकाना नहीं कि वहां जाकर रह सको। मेरे साथ चलो। मेरे देवर इस समय यहां नहीं हैं। आ भी नहीं सकेंगे।'

एक-एक शब्द मंजरी को डंक के समान चुभा। उसका गर्वीला स्वभाव ये डंक सहन न कर सका। उसका क्षोभ जाता रहा। गर्दन ऊंची करके एक तिरस्कार-भरी दृष्टि से उसने वेनां को उसके आडंबर और उसकी अल्पता का भान करा दिया।

'किसकी मजाल जो दुर्गपाल की स्त्री को छू तक सके?' उसने क्रोधित होकर पूछा। उसका मुख क्रोध से लाल हो रहा था, उसकी आँखों में विद्युत् चमक उठी।

वेनां तिरस्कार से मुस्कराई। आम्रभट से न रहा गया। मंजरी की असहायावस्था और गौरव देखकर उसका हृदय वीरता से उमड़ पड़ा। वह आगे आया।

'वेनांदेवी! कौन कहता है कि पाटण निराधार हो गया है?' उसने पूछा।

'मैं इस समय विवाद नहीं करूंगी,' वेनां बोली, 'पुरुषों की बात पुरुष जानें। मुझे तो तुम्हारे भाई ने कहा था—'

उसकी बात अधूरी रह गई। सोमेश्वर हाथ में नंगी तलवार लेकर आया। वह हाँप रहा था, उसके केश बिखरे हुए थे और उसके मुख से रक्त बह रहा था। उसे देखकर सब स्त्रियाँ चीत्कार कर उठीं।

'देवी हैं न ? भाई, बहन, सभी हैं ? देवी !'

'क्या है भाई ?' मंजरी ने पूछा।

'अच्छा हुआ आप मिल गई। अपने बाड़े में लूट मची हुई है। पट्टणी सेना बंदी बना ली गई है। आँबड़ महेता ! आप यहाँ कैसे ? भागो। रेवापाल ने लाट का झंडा उठाया है। कोई आपको देख लेगा तो उसी समय मार डालेगा।'

आँबड़ की आँखों में क्रोध चमका।

'क्या कहता है ? तो पाटण के सैनिक—'

'पाटण के सैनिक !' सोमेश्वर ने कठोरता से हँसकर कहा—'आप, मैं और हयरनेरा तोतला। किन्तु देवी का क्या होगा ?'

'मैं वही कहती हूँ,' वेनां ने कहा, 'तुम्हारे भाई ने कहा है कि मंजरी बहू और बच्चों को साथ लेती आना—'

क्रोध में मंजरी ने होंठ काट लिये।

'वेनांदेवी ! रेवाभाई से कहना कि दुर्गपाल की स्त्री और बच्चे वहीं रहेंगे जहाँ पाटण के सैनिक,' कहकर वह एक पग सोमेश्वर की ओर बढ़ी। सब यह पागलपन देखकर चकित हो गए। सोमेश्वर से न रहा गया—

'देवी ! वेनांदेवी सत्य कहती हैं। रेवाभाई के घर को छोड़कर इस समय आप कहीं न रह सकेंगी। प्रातःकाल होने से पहले ही हम तो मर जायंगे।'

'सोमेश्वर !' मंजरी ने गर्व से कहा, 'यह सब तुम्हारे विचारने का

नहीं। जहाँ मेरे दुर्गपाल का स्थान है वहीं मेरा भी। येनांदेवी, जाओ!' कहकर उसने येनां की ओर इस प्रकार तिरस्कार-भरी दृष्टि डाली मानो वही विजयी साम्राज्ञी थी। येनां यह सहन न कर सकी। क्रोध में वह वहाँ से चली। सब स्त्रियाँ उसके साथ चली गईं। आँबड़ का हृदय इस योगमाया का आवेश देखकर स्तब्ध हो गया।

'देवी! यह क्या किया?' सोमेश्वर ने निराशा से सिर पीट लिया।

'सोमेश्वर! यह कायरता किस गुरु से सीखी?' मंजरी ने तिरस्कार से पूछा। 'तेरे गुरु और पाटण की सत्ता एक ही है। पाटण की सत्ता चली जाने पर तू जी—किन्तु मुझसे कैसे जिया जायगा?'

आँबड़ महेता पक्का पट्टणी था। जब तक पाटण की सत्ता है तब तक उसका जीवन है, यही उसका सिद्धांत था। मंजरी के शब्दों ने उसके हृदय में प्रतापी प्रतिध्वनि की।

'और देवी! पाटण की सत्ता के जाने से पहले हम मरने के लिए तैयार हैं।'

'कि....कि....किन्तु यहाँ से तो च....च....चलिए।' नेरा से काँपते होंठों से बोले बिना न रहा गया।

'चुप, पागल!' आँबड़ गरजा।

'सोमेश्वर! नए गढ़ की कुंजी तुम्हारे पास है?'

'हाँ। अच्छी याद दिलाई। चलिए, वहाँ देखा जायगा। मणिभद्र, बहन को उठा। देवी! वाँसरि को मुझे दे दीजिए। गढ़ में बैठे-बैठे हम संपूर्ण लाट को छका देंगे।'

सोमेश्वर ने वाँसरि को लिया, मणिभद्र ने महाश्वेता को लिया, और सब शीघ्र गति से गढ़ की ओर चले।

: ४ :

गढ़ में

सोमेश्वर पथ जानता था अतः मुख्य मार्गों से बचते हुए, गली-कूचों में होकर वे खाई के सामने जा पहुँचे। कहाँ से खाई सरलता से पार की जा सकती थी यह भी सोमेश्वर जानता था अतः अक्षयतृतीया का ज्वार होते हुए भी एक व्यर्थ की पड़ी डोंगीमें बैठ कर वे खाई पार कर गए। चन्द्रमा का प्रकाश तो नाम ही का था अतः अँधकार में सबसे आगे सोमेश्वर, फिर महाश्वेता को कंधे पर लिए मणिभद्र, फिर मंजरी, फिर आम्रभट और फिर नेरा—इस प्रकार वे खाई से द्वार तक की चढ़ाई चढ़े। आम्रभट आगे चलती मंजरी की ओर देख रहा था। कहीं उसके पाँव में कंकड़ न लग जायं, कहीं वह फिसल न जाय—इस डर से उस का मन अधीर हो रहा था। किन्तु मंजरी जितनी सुकुमारी थी उतने ही दृढ़ मन की भी थी। उसके कोमल पाँव शीघ्रता से और सावधानी से उठ रहे थे। अंत में वे गढ़ के द्वार तक आए। सोमेश्वर उन्हें एक छोटी खिड़की के सामने ले गया। उसने खिड़की खोली।

'कौन है ?' देवा नायक का स्वर आया।

'सोमेश्वर।'

'इस समय कैसे ?' शंकित होकर देवा ने पूछा।

'देवी और बच्चे और नए दुर्गपाल आए हैं।' देवा ने शीघ्रता से सिर पर साफा बाँधा और चकमक से मशाल जलाई। 'देवी! आप, इस समय ?'

'हाँ' मुस्करा कर मंजरीने कहा, 'तेरे भाई चले गए अतः तेरे संरक्षण में आए हैं।'

'कौन, नए दुर्गपाल—'देवा कठोर होकर बोला,'और नेरा तोतला !'

'देवा ! नगर में विप्लव होगया है, रेवापाल ने पट्टणी सेना को बंदी बना लिया है, काकभट और दूसरे पट्टणी अधिकारियों के घर लूट लिए

हैं, अतः देवी की रक्षा के लिए हम गढ़ में आए हैं।' सोमेश्वर ने खिड़की अंदर से बंद कर ली।' अब पाटण से जब तक सहायता न आ जाय तब तक यहीं रहेंगे।' देवा की आँखों के सामने अंधेरा-सा छा गया। वह सिर पर हाथ रखकर निकट के चबूतरे पर बैठ गया—'हे मेरे भगवान्।'

मंजरी ने निकट जाकर स्नेह-भरे स्वर में पूछा—'देवा, क्या बात है? ऐसे क्या करता है?'

'देवी! बुढ़ापे में देवा की भी बुद्धि मारी गई।'

'कैसे?'

'मैंने भाई की आज्ञा नहीं मानी।' देवाकी वाणी काँप रही थी, 'मैंने आप सबको बेमौत मार डाला।'

'किन्तु बात क्या है?' मंजरी ने पूछा।

'उस रेवाराज के कहने से मैंने कोठार में का अनाज फेंक दिया।'

'कोठार का अ....अनाज फें—क दिया—' सब चकित होकर पीछे हट गए।

देवा ने कपाल ठोंक लिया—'मुझे जीवित नहीं रहना चाहिए। मुझे रेवापाल ने कहा कि मेरे भाई तो पाटण में बंदी बना लिये गए और यह तेरा तोतला यहाँ भट बनकर आने वाला है। भाई के लौट आने पर उसने कोठार पुनः भर देने का वचन दिया था। मैं भुलावे में आ गया। देवी मैं आपको और कीकाभाई को खिलाऊंगा क्या?'

'वर्षभर चल सके उतना सामान फेंक दिया?' आँबड़ महेता ने आगे बढ़कर क्रोध में कहा, 'पापी! किसके कहने से?' कहकर उसने तलवार निकाल ली।

'मार डालो बापू!' देवा बोला, 'मुझे गला घोंट कर मर जाना चाहिए—'

आँबड़ तलवार उठाने जा रहा था कि उसकी दृष्टि मंजरी पर पड़ी। उसकी आँखों में तिरस्कार था।

'आँबड़ महेता !' मंजरी ने तनिक क्रोध में कहा, 'अपनी तलवार म्यान में रखो, वह और कई काम आएगी। देवा ! गढ़ में थोड़ा-बहुत अनाज तो है ?'

'इतने आदमियों के लिए तो आठ दिन भी नहीं चलेगा।'

'देवी ! ठहरिए। हम गढ़ में आए हैं यह नगर का कोई व्यक्ति नहीं जानता है। मैं जाकर थोड़ा-बहुत अनाज ऊपर ले आने का प्रबन्ध करता हूँ।'

'किन्तु तुम बाहर पकड़ा गए, तो ?'

'जैसी भोलानाथ की इच्छा। आँबड़ महेता—' उसके सामने देख-कर सोमेश्वर तनिक अटका, 'आँबड़ महेता ! आप यहाँ रहकर देवी को सँभालिएगा। मणिभद्र, तू भी यहीं रह। नेरा ! तू मेरे साथ चल।'

'मैं आऊँ ?' आँबड़ ने पूछा।

'नहीं। हम दोनों में से एक को तो यहाँ रहना ही चाहिए।'

'संभव है रेवापाल गढ़ घेर ले, तो सामना कौन करे ?'

'अच्छा। नेरा ! सोमेश्वर भट के साथ जा।'

'ब···बापू—' पीछे खड़े नेरा को गढ़से बाहर जाना अच्छा न लगा।

'जा !' आँबड़ ने आँखें निकालीं। नेरा नीची गर्दन करके सोमेश्वर के साथ बाहर गया।

'देवा ! कहीं बैठने का ठिकाना-विकाना है ? बच्चे बेचारे थक गए हैं।'

'अवश्य है, देवी !' कहकर देवा सबको थोड़ी दूर पर एक छोटे घर में ले गया। आवश्यक वस्तुएँ निकाल दीं। कोई घेरा डाल दे तो पट्टणी सेना के लिए गढ़ में ऐसी सुविधाएं थीं कि रहने-करने के लिए तो किसीको कोई कठिनाई हो ही नहीं सकती थी। मणिभद्र पानी ले आया। । मंजरी घबराये हुए बच्चों को सहलाकर सुलाने लगी। देवा और आँबड़ महेता गढ़ को देखने के लिए निकल पड़े।

आँबड़ गम्भीर हो गया था। पाटण की सत्ता को गढ़ में रहते-

रहते ही टिका रखना, और पाटण से सहायता आए तब तक मंजरी की रक्षा करनी—इन दो उद्देश्यों ने उसके पौरुष को तीक्ष्ण कर दिया। यह गढ़ सुरक्षित था और सरलता से अधिकृत नहीं किया जा सकता था। किन्तु तीन-चार व्यक्तियों की सहायता से उसे टिकाए रखना कोई सरल बात न थी। फिर, खाद्य समाप्त होने पर क्या होगा यह उसे सूझ न पड़ा; किन्तु फिर भी उसने साहस न छोड़ा। मंजरी की दृष्टि के सामने इस गढ़ को टिका रखना, अपना शौर्य दिखाना और समय आने पर मर जाना—इससे बढ़कर उसे कुछ भी रुचिकर न लगा।

किसीकी सहायता प्राप्त न होने के कारण उसने बहुत मन लगाकर गढ़ को देखा। किस दिशा से धावा किया जा सकता है, कहाँ से रक्षा भली प्रकार की जा सकती है, और किस स्थान से चारों दिशाओं पर दृष्टि रखी जा सकती है—यह सब उसने जान लिया। उसने नगर की ओर की कोट पर आकर नीचे देखा। मध्यरात्रि होने आई थी, फिर भी नगर में स्थान-स्थान पर जलती मशालें इधर-उधर जाती हुई दिखाई पड़ रही थीं। किसी-किसी स्थान से रह-रहकर चीत्कार भी सुनाई पड़ती थी। नदी-तीर पर पूर्ण शांति थी।

घूमते-घूमते आँबड़ महेता देवा से बातचीत करने लगा। जैसे-जैसे वह बात करता गया वैसे-वैसे देवा के हृदय, उसके अनुभव और गढ़ के विषय में जानकारी प्राप्त करने का एक मार्ग मिलता गया। बात करते-करते वृद्ध देवा को आवेश आ जाता था, और गढ़ पर से कैसे शत्रुओं को छकाया जा सकता है इसका कुछ-कुछ धुंधला चित्र थोड़े-से शब्दों में वह उसके मस्तिष्क के सामने खड़ा कर दे रहा था। किन्तु प्रत्येक बात का सार और प्रत्येक बात का 'आत्मा' उसके 'भाई' में ही समाप्त होते थे। 'भाई' ने मार्ग दिखाया और 'भाई' ने यह कँगूरा बनवाया; 'भाई ने कहा था कि इस कोने में खड़े होकर तीन आदमी तीन-सौ आदमियों को ठिकाने लगा सकते हैं, और 'भाई' का विचार था कि दीवाल को गिरवाकर दूसरी बनवा दी जाय। आम्रभट इस

बात से कुढ़ता अवश्य था किन्तु इस समय वीर-पूजा के लिए वह इतना अधिक तत्पर था कि काक की प्रशंसा सुनकर उसका उत्साह बढ़ रहा था। अन्त में चारों ओर घूमकर वे खिड़की के निकट आकर सोमेश्वर की प्रतीक्षा करने लगे। किन्तु सोमेश्वर न लौटा। अंततः आँबड़ देवा द्वारा दिखाये हुए कमरे में सोने चला गया और देवा खिड़की के सामने सोमेश्वर की प्रतीक्षा करते-करते सो गया।

आम्रभट लेटा किन्तु नींद नहीं आई। विचार करते-करते उसे पिछले पन्द्रह दिवसोंमें किये गए अपने मूर्खता-भरे कार्योंकी याद आई। पन्द्रह दिन में सम्पूर्ण सेना को निर्बल कर दिया, और सम्पूर्ण सत्ता अपने हाथ में ले ली। उसके आचरण से सब लोग भ्रम में पड़ गए और क्रांतिकारियों को उत्तेजना मिली। अपनी कुबुद्धि से उसने पाटण के मित्रों को छेड़ा और शत्रुओं को चढ़ बैठने का अवसर दिया, और एक घड़ी में रेवापाल ने सम्पूर्ण लाट पर अधिकार कर लिया और उसके जैसे पाटण के सत्ताधीश को, उदा महेता के पुत्र को, इस प्रकार चोर के समान गढ़ में घुसकर बैठना पड़ा।

रात्रि के एकांत में उसने अपने पिता और काक के कार्य के साथ अपने कार्य की तुलना की। दोनों ने अपरिचित उद्गम से जीवन-सरिता प्रारम्भ की और इस समय उनके प्रताप से चारों दिशाएँ फल-फूल रही थीं। इस छोटी उम्र में उसे पिता के प्रताप से मान, सम्पत्ति और सत्ता मिले किन्तु इन सब पर उसने पानी फेर दिया।

उसे अपनी निर्बलता का भान हुआ और साथ ही मंजरी का स्मरण हुआ। उसके अंगों में एक आनन्द-लहर दौड़ गई। इस पूरे गढ़ में वे दोनों साथ-साथ रह रहे थे। जिस अवसर के लिए वह व्याकुल था वह इतना निकट आ लगा था और जाने कितने दिन तक यह यों ही चलता रहेगा, और रात-दिन अपनी हृदय-सम्राज्ञी की चरण-वंदना करने का लाभ प्राप्त होगा। और वह प्रसन्न—

आँबड़ बिस्तर में उठ बैठा। मंजरी उस पर प्रसन्न होगी! वह

समझ न पाया किन्तु अभिमान त्यागकर वह आत्म-तिरस्कार मुस्करा दिया। उस पर प्रसन्न हो! यह गर्विष्ठा, विद्वान्, तेजस्वी और पति-परायणा मंजरी उस पर प्रसन्न हो! क्यों न हो? वीर दिखाने और मंजरी की उपकार-वृत्ति को जागरित करने का अवसर उसके हाथ लग गया था। चाहे प्राण ही क्यों न चले जायें कि मंजरी को प्रसन्न करने का उसने संकल्प कर लिया। उसका सिर गर्म हो गया। उसने उसे हाथ से दबा दिया।

न जाने क्यों मंजरी उसे कुछ रहस्यमयी लगी। उसने गृह-कुशल गृहिणियाँ देखी थीं, अनाज पीसकर पति की सेवा करने वाली सती देखी थीं, पति-विरह से पीड़ित वधुएँ देखी थीं, और शास्त्र अभ्यास करने वाली साध्वियां देखी थीं। किन्तु उसने ऐसी स्त्री न देखी थी। काक के वियोग में उसने आभूषण त्याग दिए थे, छोड़ वह पति के लिए और कुछ करती हो ऐसा न दिखाई पड़ा फिर भी, उसे देखते ही काक का स्मरण हो आता था और काक देखकर उसका। कल उसने अपनी और अपने बच्चों की रक्षा करने बदले अपरिचित व्यक्ति के साथ गढ़ में आना पसन्द किया था। विचित्रता आंबड़ की समझ में न आई। यह स्त्री अन्य सब स्त्रि से किस प्रकार विभिन्न थी?

उसे ऐसे कितने ही विचार आए किन्तु कोई परिणाम न निकला वह थक गया, उसे झपकी आ गई। नीचे कुछ गड़बड़ सुनकर उठ बैठा।

'कौन सोमेश्वर?'

'न....नहीं ब....बापू!' नेरा का हांफता और रुआंसा स्वर आ 'यह तो मैं हूं। स....स....सोमेश्वर भट जी छूट गए।'

'हैं! तो तेरे साथ कौन है?' आंबड़ ने बिस्तर में खड़े होते-

'म...महाराज, म...म...मेरी घ...घर वाली।' नेरा ने उत्तर दिया।

: ५ :
सोमेश्वर कहां गया ?

सोमेश्वर और नेरा शीघ्रता से नीचे उतरे, पुनः डोंगी में बैठकर खाई पार की ओर नगर मे गये। वे एक-दो गलियां पारकर एक परिचित वनिये की दूकान के सामने गये। सोमेश्वर ने नेरा से कई बार उसे बुलवाया, उसने स्वयं ने सांकल खड़खड़ाई, किन्तु उसने दूकान न खोली। एक दूसरी दूकान पर जाकर उसे खुलवाने का प्रयत्न किया किन्तु सफल न हुए। कुछ देर तक अन्दर सोये हुए लोगों ने चुपचाप बात की और फिर अन्त में एक स्त्री का स्वर आया—वे तो घर में नहीं हैं और स्त्रियां अकेली कैसे द्वार खोल दें? सम्पूर्ण नगर में त्रास फैला हुआ था।

सोमेश्वर के पीछे नेरा मौन होकर चल रहा था। वह अत्यन्त भय-भीत हो गया था। पाटण वन्दी हो गया और दुर्गपाल भाग गया था अतः उसको किसीकी सहायता मिल न सकती थी। उसने इस नगर में रहकर ऐसी निर्लज्जता की थी, और लोगों में उसके प्रति ऐसा तिरस्कार था कि प्रातःकाल यदि वह किसीको दिखाई पड़ जाता तो कोई उसे जीवित न छोड़ता, यह निश्चित था। अतः आंबड़ महेता के साथ गढ़ में गये बिना और कोई चारा नहीं था इतना वह स्पष्ट समझ गया।

समय जा रहा था और काम बन नहीं पा रहा था अतः सोमेश्वर अधीर हो गया। पकड़ा जाने के डर से वह प्रतिष्ठित लोगों के घरों

की ओर जा नहीं सकता था और छोटे लोगों से कोई सहायता मांग न सकता था।

'ब....ब....बापू !' नेरा ने धीमे-से सोमेश्वर के कान में कहा।

'आ....आप कहें तो म....म....मैं अनाज-पानी ले आऊँ।'

'कहाँ से ?' तनिक चिढ़कर सोमेश्वर ने कहा।

'म....म....मेरी ससुराल यहीं है।' उसके स्वर से लगा कि नेरा के गोल-मटोल मुख पर लज्जा छा गई। नेरा की पत्नी उसे छोड़कर अपने भाई के पास यहीं-कहीं रहती थी यह वह जानता था। सोमेश्वर इस पर विश्वास न करता था, किन्तु इस समय जैसे हो अनाज एकत्रित करना ही था।

'हाँ, हाँ, तो ले आ न !'

'त....तो आ....आइये।' कहकर नेरा आगे हो गया और थोड़ी ही देर में एक निर्धनों के मुहल्ले में वे आ पहुंचे। नेरा एक छोटे घर के द्वार के सामने जा खड़ा हुआ, 'अरी ओ—'

किसी ने उत्तर नहीं दिया। नेरा ने धीमे-से कड़ा खड़खड़ाया और पुनः बोला—'यह तो मैं हूं।'

'मुए ! इस समय तू कहाँ से ?' एक कठोर स्वर आया।

'अरी ओ ! मैं म....मरने....को....हूँ। देख म....स....सुन, मुझे अनाज चाहिए। फिर म....मैं चला जाऊँगा, देख !'

'अभी मैं अनाज कहाँ से लाऊँ ?'

'ज....जो घर में हो वही दे दे। देख मैं आंबड़ महेता का विश्वासपात्र बन गया....अ....और भ....भट बन गया, और त....त....तू मुझसे ऐसा व्यवहार करती है ?' नेरा ने रुआंसे स्वर में कहा।

'व्यर्थ में ढोंग करता है।'

'र....र....रेवा मां की सौगन्ध !' कहकर नेरा सिसकियां भरने लगा।

'देख, तुझे सोने की ल....लड़ी देता हूँ।' कहकर उसने सोमेश्वर

के कान में कहा, 'ब....बापू ! अ....अपनी लड़ी देना तो ! यह क....क....कच्ची नहीं है। यों नहीं मानेगी।'

'सोने की लड़ी कहाँ से लाया ?'

'यह रही', देख तो स....सही।' कहकर नेरा ने लड़ी द्वार से लगाकर हिलाई।

नेरा की अर्धाङ्गिनी को कुछ विश्वास हुआ। उसने दीपक की बाती उकसा करके द्वार की दरार में से झांका और किसी दूसरे को भी साथ देखकर पूछा—'दूसरा कौन है ?'

'य....ये मेरे मित्र हैं।'

सोमेश्वर के जी में तो आया कि इस बातूनी को एक थप्पड़ मार दे किन्तु किसी प्रकार अपने पर वश किया।

'देखूं, लड़ी ला।'

'ऊंह, पहले अ....नाज तो दे।'

नेरा की स्त्री को कुछ विश्वास हुआ और उसने द्वार खोल दिया। 'अन्दर आ जाओ।' नेरा को और सोमेश्वर को जैसे ही उसने देखा वैसे उसने घूंघट खींच लिया। 'पधारिये बापू,' वह बोली और खड़ी रह गई।

'मुझे पहचानती है ?' सोमेश्वर ने पूछा।

'क्यों नहीं ? मेरा भाई आपका तेली है, बापू ! आप कहाँ से ?'

'वि...विदेश में जाने कैसे ब्याह ह....हो जाता है ?' नेरा ने अपना बचाव करने के लिए कहा किन्तु किसी ने सुना नहीं।

'तू पाँचा की बहिन है ? तो चल शीघ्रता कर। तेरे यहां जितना अनाज हो ले आ। बदले में मेरी यह लड़ी और अँगूठी ले।'

'किन्तु बापू, इस समय आप कैसे ?' फिर अपने पति की ओर देखकर पूछा—'और इनके साथ ?'

'देख, हम सब गढ़ में चले गए हैं। वहां आवश्यक अनाज नहीं है। इस समय कोई बनिया दूकान नहीं खोल रहा है।'

'हाय ! हाय ! आपकी मां भी है ?' तेलन ने कहा।

'नहीं। उन्हें कोई कुछ न कहेगा। किन्तु मंजरीदेवी और भटराज के बच्चे हमारे साथ हैं। और हम चार व्यक्ति हैं। पाटण से सेना आए, तब तक अनाज पहुँचते रहना चाहिए।'

'मंजरीदेवी ?' सम्मान से तेलन बोली और उसकी दृष्टि के आगे दूर से देखी एक गौरवर्ण, लम्बी और स्वस्थ स्त्री आ गई।

सोमेश्वर को एक बात सूझी।

'देख, मंजरीदेवी अकेली हैं। तू हमारे साथ चलेगी ? थोड़े ही दिनों में पाटण की सेना आकर हमें छुड़ा लेगी।'

तेलन ने भय से नेरा की ओर देखा। सोमेश्वर उस दृष्टि का अर्थ समझ गया।

'मैं हूं, नए दुर्गपाल आंबड़ महेता हैं, देवनायक हैं, और एक दूसरा ब्राह्मण है। घबराने का कोई कारण नहीं।'

'किन्तु पाटण से सेना न आए तो ?'

'जो हमारा होगा वही तेरा होगा। और देवी की रक्षा में हम मरेंगे तो तू भी मर जाना।'

क्षणभर के लिए तेलन के मस्तिष्क में द्वंद्व मचा। मंजरीदेवी के निकट रहना, बड़े-बड़े दुर्गपालों के साथ गढ़ में रहना, और पाटण से सेना आजाय तो बाजे-गाजे के साथ लौटना ! तेलन के क्षुद्र जीवन में यह भव्य भविष्य तो एक स्वप्न-सा बन गया।

'क....किन्तु काक भटराज व....बंदी में हैं व क्या....क्या छुड़ाए बिना रहेंगे ?' नेरा ने अर्धाङ्गिनी की संगत की लालसा से आशा दिलवाई।

तेलन ने विचार किया.—काकभट छुड़वाएँगे अवश्य। और मंजरी देवी के साथ ! उसके मुंह में पानी आ गया।

'चलिए ! मैं आती हूं।' फिर धाम-से बोली, 'वह लड़ी तो लाओ।' उसने लड़ी ली और अन्दर के कमरे में उसे कहीं छिपा आई।

थोड़ी देर में उसने वर्ष-भर का अनाज निकाला और तीनों से बंध सका उतना ले लिया। नेरा की पत्नि बलवान थी। बचपन से मज़दूरी करती थी अतः उसने बहुत भारी बोझ बड़ी सरलता से उठा लिया।

तीनों ने अनाज बाहर निकाला। तेलन ने द्वार बन्द कर कुंजी द्वार के नीचे सरका दी और तीनों गढ़ की ओर चले। अन्त में वे खाई तक आ पहुँचे। इतने में पीछे से पाँच-सात मनुष्यों की पगध्वनि सुनाई दी। सोमेश्वर चमका। तीनों के कंधों पर बोझ था।

'नेरा!' सोमेश्वर ने सावधान होकर कहा, 'तू और तेरी पत्नी इस डोंगी में बोझ रख आओ और फिर मेरा बोझ ले जाओ तो! मैं यहीं पटकता हूं। सम्भव है कोई आ रहा हो तो मैं रोक रखूँगा।'

आगन्तुक निकट आये। ध्वनि से मालूम होता था कि उनके पास शस्त्र हैं।

'कौन है?' उनमें से एक चिल्लाया। सोमेश्वर ने उत्तर नहीं दिया। उसने घूमकर देखा तो नेरा और उसकी पत्नी डोंगी में अपना बोझ डाल रहे थे। उत्तर न मिलने के कारण आगन्तुकों में से एक ने चकमक से मशाल जलाने की तैयारी की। सोमेश्वर ने देखा कि मशाल जल उठेगी तो सत्यानाश हो जायगा। डोंगी कुल दस पग ही पीछे थी। एक छलांग में वह वहां पहुँचा और नेरा के कान में कहा—'नेरा! यह गढ़ की खिड़की की कुंजी रही। तुम एकदम अनाज लेकर ऊपर जाओ तब तक मैं इन लोगों को रोक रखता हूं। नहीं तो अनाज बिना ऊपर सब मर जायेंगे।' इतना कहकर उसने डोंगीको धक्का दिया। समय देखकर नेरा ने भी बाँस लेकर डोंगी खेना प्रारम्भ किया।

सोमेश्वर कूदकर आगे आया। प्रगाढ़ अँधकार में मशाल जलने से आगन्तुकों के चकाचौंध हो जाने का लाभ उठाकर वह तलवार लेकर मार्ग रोककर खड़ा हो गया।

'तू कौन है? इस गढ़ में कौन जा रहा है?'

'इससे तुम्हें 'पंचात'? रेवाबाई की आज्ञा है।' सोमेश्वर

ने कहा।

किन्तु उसका झूठ बोलना काम नहीं आया। पीछे खड़े हुए एक व्यक्ति ने आगे आकर कहा—'अरे ! यह तो काकभट का सोमेश्वर-दुर्गरक्षक ! पकड़ो इसे !'

'किन्तु तुम कौन हो ? मुझे पकड़ने वाले तुम कौन ?' साहस से समय व्यतीत करने के हेतु सोमेश्वर ने कहा, 'उत्तर दो !'

'अरे, किन्तु वे जा रहे हैं उन्हें तो पकड़ लें'—कहता हुआ एक व्यक्ति दौड़कर आगे बढ़ा।

'सावधान !' सोमेश्वर मार्ग रोककर खड़ा हो गया, 'तू कौन है ? बिना कहे आगे नहीं जा सकता।'

'पकड़ो इसे।' एक व्यक्ति ने कहा और दूसरा आगे बढ़ा।

'मुझे पकड़ना सरल नहीं है।' कहकर सोमेश्वर उन पर लपका। वे लोग पीछे हटकर तलवारें निकालने लगे। पतवार की स्वर से सोमेश्वर को लगा कि डोंगी वेग से खाई के उस पार जा रही थी। वह पांचों का मार्ग रोककर खड़ा हो गया। विदेशी सैनिक अनुभवी योद्धा न थे अतः उन्हें रोकना सरल हो गया। थोड़ी देर में डोंगी के उस पार पहुँचने का स्वर आया और नेरा और उसकी स्त्री अनाज के थैले उठाते सुन पड़े। सोमेश्वर को लगा कि अब यदि वह खाई में गिर जाता है तो सरलता से तैरकर उस पार पहुँच जाता है, अतः उसने धीरे-धीरे पीछे हटना आरंभ किया। अक्षयतृतीया के ज्वार का पानी पीछे हट गया था अतः खाई से कुछ दूर इधर भूमि गीली और चिकनी थी। सोमेश्वर यह भूल गया और पीछे हटते समय उसका पाँव फिसल गया। वे सैनिक एकदम उस पर टूट पड़े और उसे बंदी बना लिया। सोमेश्वर ने कान लगा कर सुना—नेरा और उसकी पत्नी वेग से ऊपर चढ़ रहे थे।

'अब वहाँ तक कैसे पहुँचें ?' विदेशी सैनिकों में से एक बोला।

'अभी कैसे जायँ ? प्रातःकाल देखा जायगा। इसीको पकड़ ले

जायँगे।' दो जने सोमेश्वर का हाथ पकड़कर चलने लगे। सोमेश्वर ने देखा कि अभी एकदम गढ़ में लौटने के लिए व्याकुल होना व्यर्थ था अतः वह चुपचाप चलता रहा। उन लोगों ने नदी की ओर का मार्ग पकड़ा।

सोमेश्वर को लगा कि यदि ये लोग उसे रेवापाल के पास ले जायँगे तो वह अवश्य उसे प्राणदंड देगा अतः किसी-न-किसी प्रकार भागे बिना कोई और चारा न था। इतने में वे लोग नदी के ढाल पर आ पहुँचे। सोमेश्वर ने नदी के सामने देखा और एक विचार आया। उसने एक अप्रत्याशित झटके से अपना हाथ छुड़ाया और उसे पकड़ने वाले के संभलने से पहले ही वह नदी में कूद पड़ा। वे सैनिक पहले तो तनिक विचार में पड़ गए किन्तु फिर दो ने हथियार निकालकर सोमेश्वर के पीछे कूदने का निश्चय किया। किन्तु इस नदी से वे अपरिचित थे। रात अँधेरी थी, ज्वार का पानी सागर के समान फुंकार रहा था, अतः उनका निश्चय ज्यों-का-त्यों रह गया। लज्जित होकर वे अपने मार्ग चले।

कोई पीछे कूदे तो उससे बचने के लिए पहले तो सोमेश्वर जल्दी-जल्दी दूर गया। किन्तु जब उसे विश्वास होगया कि कोई कूदा नहीं है तो वह खाड़ी की ओर चला। किन्तु आज उसका भाग्य अनुकूल न था। जागने और लड़ने के कारण वह थक गया था। अतः उसके पाँव में ऐंठन आ गई। वह बड़ी कठिनाई से तैर सका। कई बार तो वह खिन्न होकर पड़ रहा और नदी के प्रवाह के साथ बहता रहा। बहाव प्रतिकूल था अतः वह भृगुकच्छ से दूर चला गया।

इतने में उसे किसी डोंगी के आने का स्वर सुनाई पड़ा। उसने ध्यान से सुना तो रातों-रात भृगुकच्छ से भागने वाले यात्रियों की नौका जान पड़ी। और कोई रास्ता न देखकर उसने नौकावालों को पुकारा और नौकावालों ने दया करके उसे नौका में ले लिया। नौका कहीं और जा रही थी। सोमेश्वर ने सोचा कि वहाँ से पुनः भृगुकच्छ जाकर

गढ़ में घुसना तो मूर्खता होगी। इससे तो लखीगाँव जाकर, अखात पार करके इस झगड़े की सूचना काक को क्यों न दी जाय ? उसे यही बात अच्छी लगी अतः उसने मौन रहकर संपूर्ण रात नौका में व्यतीत कर दी। रातभर वह यही चिंता करता रहा कि आँवड़ के संरक्षण में मंजरी की क्या दशा होगी।

: ६ :

मंजरी शस्त्र चलाना सीखती है

मंजरी रात भर आँख न मींच सकी। थेनां का संरक्षण छोड़ने में उसने संकट अवश्य अपनाया था किन्तु इसका उसे पश्चात्ताप न था। चार मनुष्यों के साथ गढ़ में बैठना उसने सहन कर लिया, वह घबरा नहीं रही थी। उसके मस्तिष्क में एक ही विचार रह-रहकर उठता था—'दुर्गपाल की अर्धांगिनी और उनके गौरव की रक्षा करने का समय आ गया है।'

इस काश्मीरी पंडित की कन्या के संस्कार और स्वभाव जैसे विचित्र थे वैसा ही असाधारण इसका विकास था। जिस माता ने पिता को भुला दिया उसे इसने छोड़ दिया, जिस उदा महेता ने बल-पूर्वक इसका पाणिग्रहण करने की आशा बाँधी उसे इसने छकाया, जिस अपरिचित सैनिक ने उसकी रक्षा करने के कारण उससे व्याह किया उस काक को उसने तिरस्कार से जलाया। किन्तु काक के शौर्य से वह चकित हो गई, उसका बुद्धिबल देखकर उसकी प्रशंसा करने लगी, उसकी चतुराई ने उसे पराजित कर दिया। काक के हृदय की विशालता का अनुमान लगाते-लगाते वह अपना गर्व खो बैठी, उस की कर्त्तव्यपरायणता और एकनिष्ठा परखते-परखते अपना अभिमान

भूल गई। और उसके प्रेम-प्रवाह में बहते-बहते अपना स्वत्व खो बैठी। जिस सैनिक को उसने श्वान कहा था उसीकी पूजा करने में गौरव समझने लगी।

काव्य और शास्त्र के अभ्यास से सुसंस्कृत हुई उसकी आत्मा ने पति को ईश्वर मानने और ईश्वर जैसे पति के बिना कुँआरी मरने का निश्चय किया था। जिसे पत्थर समझा था उसी पति को ग्रहण करने पर वही पत्थर ईश्वर दिखाई पड़ने लगा। और उसने उस परमेश्वर की भक्ति करना अपना जीवनमंत्र बना लिया।

भक्ति अनेक प्रकार की होती है। डस लेने के डर से कुछ लोग नाग की भक्ति करते हैं और नागपंचमी मनाते हैं। सुख की आशा से कई इष्टदेव की आराधना करते हैं। फल-प्राप्ति से उत्पन्न कृतज्ञता के कारण कई वरदाता की भक्ति करना प्रारंभ कर देते हैं। कई भक्त मीरां के समान देवता के पीछे पागल होकर उमड़ते हृदय से भक्ति में लीन हो जाते हैं। कोई-कोई ऐसे विरल भक्त भी होते हैं जो भक्त और भगवान का अंतर ही तोड़ देते हैं, देवता के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं, जिनकी पूज्य-भावना गर्व-भरी श्रद्धा का रूप लेती है, जिनके मैत्रीधर्म में अधिकार का प्रभाव होता है, जिनका जीवन सदा हँसता होता है और हृदय सदा प्रेमरस में निमग्न रहता है।

मंजरी की पति-भक्ति अंतिम प्रकार की थी। उसकी पति-भक्ति परम्परा के सनातन के आचार से प्रकट न हुई थी और अज्ञान अवस्था से ही पति के संग रहने के कारण वह उत्पन्न भी न हुई थी। सशक्त पुरुष से भय का उसमें अंश न था, पालन करने वाले के प्रति उपकार वृत्ति का लेश न था, संतान के पिता के प्रति होने वाली भावनाओं पर वह अवलंबित न थी। यौवन की उछलती तरंगों को झेलने या रसिकता के अद्भुत रंगों की शोभा प्रदान करने का साधन मानकर भी वह भक्ति न उपजी थी। मृत्यु के पश्चात सुख पाने का लोभ, या ईश्वर को रिझाने की इच्छा इस भक्ति की प्रेरणाएं न थीं।

इस भक्ति का मूल अनिर्वचनीय प्रणय था, इसकी रचना पति के स्वभाव और जीवन-क्रम के साथ ऐक्य स्थापित करने से हुई थी; इसका पोषण सर्वव्यापी, एकनिष्ठ और उमड़ती हुई रसिकता और संस्कार करते थे। काक के निरंतर साथ की इच्छा, उसीके जीवन में रस, उसी की सेवा की इच्छा, उसी पर सत्ता जमाने की आकांक्षा, उसीकी अर्धांगिनी बने रहने का लोभ—ये सब इस भक्ति के अंग थे। किन्तु इन अंगों से बनी देह में निवास करती आत्मा निराली थी। इस आत्मा की ज्वलंत शक्ति के कारण वह बिना प्रयास के आत्मासमर्पण साधती और देह और स्वभाव की भिन्नता भूलकर काक की अर्धांगिनी बनी रहती।

जिस समय वेनां ने मंदिर में उसका अपमान किया उस समय इस भक्ति ने उसके हृदय में अद्भुत प्रेरणा का संचार किया था। जिस वीर का वह अंग थी उसके प्रताप की उसमें स्फुरणा हुई। वह निःशस्त्र और निराधार स्त्री न रही, और कालभैरव को पराजित करने वाले और नवघण रा' को बन्दी बनाने वाले महारथी के साहस और उसकी अडिगता की मूर्ति बन गई।

रात-भर वह सोचती रही। पाँच-दस दिन में वंथली समाचार पहुंचेगा, उसके पश्चात् दस-बारह दिन में सेना उन्हें छुड़ाने के लिए आ पहुंचेगी। अतः बीस-पच्चीस दिन इस घेरे का सामना करना होगा। पांच आदमी और एक स्त्री मिलकर यह भगीरथ-कार्य कैसे पूरा करें यह वह सोचने लगी। गढ़ दृढ़ था। देवा नायक और सोमेश्वर प्रवीण गढ़रक्षक थे। आँबड़ महेता को भी घेरे का सामना करने की थोड़ी-बहुत कला आती होगी। उसे पश्चात्ताप होने लगा। काश्मीरादेवी कई बार उसे युद्ध-कला सीखने और शस्त्रों का प्रयोग करना सीखने के विषय में कह चुकी थी किन्तु अपनी विद्वत्ता और पति के शौर्य के विश्वास पर उसने उसका कहना न माना था। और इस समय वह पति की प्रतिष्ठा नष्ट करने बैठी थी। जैसे-जैसे रात व्यतीत होती गई वैसे-वैसे उसे अपनी

निर्बलता पर तिरस्कार होता गया।

प्रकाश होते-होते वह उठी और देवानायक को उठाया।

'देवा! सोमेश्वर कहाँ सोया हुआ है? मुझे गढ़ देखना है।'

'देवी!' देवा ने गर्दन हिलाई, उसकी वाणी में अशांति थी।

'क्यों?'

'सोमेश्वर भाई तो पकड़ा गया।'

'हें!' मंजरी के भाल पर स्वेद छूट गया।

'हाँ।'

'किंतु उसका हुआ क्या?'

'अनाज लेकर लौटते समय नगर के चौकीदार मिल गए। सोमेश्वर भट ने नेरा और उसकी पत्नी को ऊपर भेजा, और स्वयं लड़ने के लिए रह गए। उसके पश्चात् उनका क्या हुआ यह नेरा को नहीं मालूम।'

मंजरी काँप उठी। इस अप्रत्याशित दुर्घटना से उसका साहस डिग गया।

'देवा! भगवान् की क्या इच्छा है?'

'देवी! जो भगवान् करे अच्छा है।'

'किन्तु अपना क्या होगा?' चिन्ता-भरे स्वर में मंजरी ने कहा। उसके अंतर में निराशा अपना प्रभाव जमा रही थी।

'हमारा?' देवा बोला, 'भाई आएं तब तक गढ़ को टिकाए रखना, और क्या?'

देवा के ये सामान्य शब्द सुनकर मंजरी लज्जित हो गई। जितनी श्रद्धा एक सैनिक को उसके पति में थी उतनी भी उसमें न थी! उसके अंतर की गहराई से प्रेम और श्रद्धा उमड़ पड़े। उसके हृदय में एक वेगवती लहर आई। उसका मुख लाल हो गया।

'देवा!' वह गर्व-भरे स्वर में बोली, 'ठीक है। तेरे भाई आएं तब तक हम गढ़ की रक्षा करेंगे। तू मेरे साथ चल, मैं गढ़ देखना चाहती हूँ।'

'अभी देखकर क्या करोगी ?'

'मुझे दुर्गरक्षक बनना है,' मंजरी ने मुस्कराकर कहा।

देवा मंजरी से ईर्ष्या करता था। वह समझता था कि उसने उसके भाई से ब्याह करके अनधिकार चेष्टा की है। उदार होकर उसने अपने इस विचार का परिवर्तन आरम्भ कर दिया।

'चलिए!' कहकर वह आगे हो गया।

मंजरी और वह गढ़ पर घूमने लगे। जैसे-जैसे प्रकाश बढ़ता गया वैसे, वैसे गढ़ के कंगूरे नीचे का नगर और दूर-दूर के गाँव स्पष्ट दिखाई पड़ने लगे। धीरे-धीरे रेवा का पाट चाँदी की मेखला के समान पृथ्वी को शोभित करने लगा और दूर दिखाई पड़ते पर्वतों की श्रृंखला के ऊपर उषा का प्रकाश रक्तिम होने लगा।

मंजरी गढ़ देखने लगी। कहाँ से क्या होता है, किस स्थान से किस पथ की रक्षा होती है और किस स्थान से किस प्रकार दूर के गाँव पहचाने जा सकते हैं—यह सब ज्ञान शीघ्रता से प्राप्त करने लगी। फिरते-फिरते जब वे उस स्थान पर आए जहाँ से वे चढ़े थे तो देवा ने सोमेश्वर और चौकीदारों में हुई टक्कर का स्थान उसे दिखाया। उस स्थान को ध्यान से देखने के लिए मंजरी ने तनिक ऊँची होकर कोट पर दृष्टि दौड़ानी आरंभ की।

'देवी! यह क्या कर रही हैं? इतनी नीचे न झुकिए, नहीं तो वह तीर मार देगा।' पीछे से आँबड़ का स्वर आया। मंजरी ने चमक कर पीछे देखा। आम्रभट दौड़ता हुआ आ रहा था। मंजरी जैसे ही पीछे हटी वैसे ही सन् करता हुआ एक तीर आया, और जहाँ मंजरी झुककर खड़ी हुई थी वहाँ पत्थर से टकराया।

'देवा। देखता नहीं? वहाँ खड़ा-खड़ा ताक जो रहा है।' आम्रभट ने क्रोधित होकर पूछा, और उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही देवा से तीर-कमान लेकर तीर छोड़ दिया। तीर नीचे खड़े हुए सैनिक के हाथ पर लगा। वह चीत्कार कर दूर भागा।

'आँबड़ महेता !' मंजरी ने मुस्कराकर कहा, 'तुम धनुष इतना कड़ा क्यों पकड़ते हो ?'

आम्रभट ने मंजरी की ओर इस प्रकार देखा मानो किसी ने उसका अपमान कर दिया हो। बचपन से धनुष को कड़ा पकड़ने की उसकी कुटेव थी। गुरु के रह-रहकर सावधान करने पर भी वह उसे छोड़ न सका था।

'आपने कैसे जाना ?' चकित होकर उसने मंजरी से पूछा।

'तुम्हारे दुर्गपाल बहुत ही हलका पकड़ते हैं उसी से।' मंजरी स्पष्ट किन्तु धीमे स्वर में बोली।

आम्रभट को तनिक क्रोध आ गया। 'तुम्हारे दुर्गपाल' वंथली में कट मरने गए हैं फिर भी यह स्त्री बार-बार उसे बात के बीच में लाती है। उसने मंजरी को ओर एक दृष्टि डाली। मंजरी का अभिप्राय अपमान करने का न था। काक की प्रतिष्ठा बढ़ाने का भी अभिप्राय उसका न था। जिस प्रकार माँ अपने पुत्र को सलाह देती है उसी सरलता से उसने यह बात कही थी।

'यदि आपने हलका पकड़ा होता,' देवा नायक कहने लगा, 'तो उसकी मृत्यु निश्चित थी।'

यह बात आँबड़ बहुत पहले समझ गया था, किन्तु देवा का इस प्रकार स्पष्ट कहना उसे बहुत बुरा लगा। किन्तु मंजरी के सामने इस विचित्र परिस्थिती में, क्रोध दिखाना उसने उचित न समझा। उसने हँसकर बात उड़ा दी।

'देवी। मेरी यह टेव किसी प्रकार नहीं मिटती। हाँ, आप इस समय कैसे निकल पड़ीं ? अभी कुछ हो जाय तो ?'

'मैं तो गढ़ देखने निकली हूँ।'

'हम सब क्या मर गए हैं ?'

'नहीं। किन्तु सोमेश्वर नहीं है तो उसके पर स्थान दुर्गरक्षक मैं ही हूँ न ?'

आम्रभट तनिक हँस दिया।

'वाह! इससे अच्छा और क्या हो सकता है?'

'हँसने की बात नहीं,' मंजरी ने गम्भीर होकर कहा, 'तुम्हारे दुर्गपाल के आने तक इस गढ़ की रक्षा करनी है।'

'तुम्हारे दुर्गपाल' ने पुनः आम्रभट पर आघात किया।

'अच्छा, यदि खाद्य समाप्त हो जाय तो—'

'तो भूखे पेट,' मंजरी ने हँसकर बात पूरी की। 'चलो, मैं नहाकर नित्यकर्म करलूँ, फिर मुझे शस्त्र प्रयोग करना सिखाओ।'

'आप युद्ध करना सीखना चाहती हैं?' मंजरी का शिक्षकपद लेने की आशा से आम्रभट का हृदय उछल पड़ा।

'हाँ, हमारे गुरु जी घर में हम दोनों को योद्धा बनना है।'

अनुपस्थित काक की निरंतर उपस्थिति से बेचारा आँबड़ कट गया, और कोई उपाय न सूझने पर मौन रहा।

: ७ :

आंबड़ को गुरुपद खलता है

आँबड़ महेता ने जिस समय युद्ध कला सिखाने की स्वीकृति दी उस समय तीन वस्तुओं पर उसने विचार नहीं किया था। एक तो उसकी शिष्या की लगन। धूप, परिश्रम, थकान की मंजरी को चिन्ता नहीं थी। अपरिचित व्यायाम से हाथ थक जाते, अंग-अंग में पीड़ा होने लगती, सिर दुःखता, किन्तु रात होने तक वह पल-भर के लिए भी विश्राम नहीं लेती थी और न आँबड़ और देवा को विश्राम लेने देती थी।

दूसरी वस्तु मंजरी की बुद्धि थी। उसके कभी शस्त्र न पकड़े थे, किन्तु काक को, त्रिभुवनपाल को और काश्मीरादेवी को शस्त्रों का प्रयोग

करते बड़े ध्यान से देखा था। कई बार यह भी न पता लगता कि वे मंजरी को सिखा रहे थे या मंजरी अपने आप सीख रही थी।

तीसरी वस्तु आंबड़ के धीरज को कठोर परीक्षा लेती थी। अपनी प्रियतमा के साथ घूमना-फिरना, हंसना-बोलना, उसे शस्त्रों का प्रयोग सिखाना और सिखाते-सिखाते अनजाने में उसका शरीर छू लेना—फिर भी, अपने और अपनी प्रियतमा के मध्य में एक अनुपस्थित व्यक्ति द्वारा निर्मित अभेद्य वातावरण को सदा देखते रहना—आम्रभट का विश्वास था कि जब से प्रणयसृष्टि का निर्माण हुआ तब से ऐसी त्रासदायक कसौटी पर अन्य कोई व्यक्ति न चढ़ा था। कुछ-समय तक उसने इस अभेद्य वातावरण को भेदने का प्रयत्न किया। उसने कई व्यक्तिगत बातें कहीं, जीवन के बहुत से प्रसंग सुनाए, आशाओं के सुनहले रंगों को चित्रित करने का प्रयत्न किया। इन सबके प्रति मंजरी ममता से देखती, हंस देती, बोलती, सहानुभूति प्रदर्शित करती सलाह देती—किन्तु उसके आस-पास का काकमय वातावरण जैसा था वैसा ही रहा। आम्रभट के सब प्रयत्न निष्फल गए।

दो-चार दिन व्यतीत हो जाने पर भी देख-भाल करने के कारण रेवापाल ने गढ़ को जीतने का कोई प्रयत्न न किया। अतः आम्रभट का संपूर्ण समय मंजरी को शस्त्र-कला सिखाने में ही व्यतीत होता। इन दिनों में उसकी व्यग्रता बढ़ गई थी। दिन भर उसे काक के विषय में सुनना पड़ता था। और रात को स्वप्न में भी काक ही दिखाई पड़ता था। काक के प्रति उसका द्वेष बढ़ता गया।

कई बार स्वप्न में उसे रह-रहकर यह विचार आता था—वह जूनागढ़ के घेरे में मर जाय तो! एक बार आने के पश्चात् यह विचार रह-रहकर आने लगा। वह उसे घायल अवस्था में देखने लगा, मरा हुआ देखने लगा। उसने उसके शव को चिता पर जलते देखा। उसे बड़ा आनन्द हुआ। इस विचार के आने के थोड़ी ही देर पश्चात् उसको मंजरी भेंट से हुई। उसे दूसरा विचार आया—काक मर जाय

तो मंजरी का क्या हो ? उसकी क्या दशा हो ? फिर उसके प्रेम का क्या हो ?

संध्या हो गई थी। मंजरी तनिक उदास थी। दोनों गढ़ के द्वार की खोज में निकले। चार-पांच दिन के साहचर्य के कारण दोनों खुल-कर बातें करते थे। आँबड़ को तो एक ही विचार आ रहा था—काक मर जाय तो मंजरी की क्या दशा हो ? बात करते-करते मंजरी पुराने प्रसंगों को पुनः स्मरण कर रही थी। आम्रभट का ध्यान एक बात पर विशेषकर जाता—मंजरी की बातों में उदा महेता का नाम कभी न आता था। कई बार ऐसे प्रसंग आ जाते थे जहाँ उसका नाम लेना आवश्यक हो जाता था किन्तु ऐसे अवसरों पर जिह्वा तक आ जाने पर भी वह उसका उच्चारण नहीं करती थी।

आज आम्रभट से न रहा गया, 'देवी ! हमारे खम्भात में भी दुर्ग-पाल के विषय में कई बातें प्रचलित हैं।'

मंजरी ने तनिक प्रयत्न करके पूछा, 'ऐसा ?'

'आपको वे वहीं से लाए थे न ?'

'हाँ।'

'मेरे पिता सदा आपका गुण-गान करते रहते हैं।' आँबड़ ने गप्प मारी।

मंजरी मौन रही। उसकी आंखें स्थिर हो गईं।

'आप खम्भात से कैसे भागीं कहिए न ?'

मंजरी तनिक मुस्कराई—'दुर्गपाल ले आए।' उसके स्वर में मधुरता थी।' मुझे अगले दिन साध्वी बनाने वाले थे और साध्वी बनने से पहले मैं मरने का निश्चय कर चुकी थी। ये तो तुम्हारे हेम-चन्द्राचार्य को लेने के लिए आए थे। किन्तु उसने जाने से मना कर दिया अतः उसके स्थान पर मुझे उठा लाए।' वह हंस पड़ी। उस हास्य में प्रणय की मधुर झंकार थी। 'खंभात से हम डोंगी में चले। जिस समय मुझे चेत हुआ उस समय तो इनके प्रति मुझे तिरस्कार

था—वह पुनः हँसी और आँबड़ के कान में रस-सागर उछल पड़ा।

'और अब—'समझ न पड़ने वाली कटुता से आंबड़ ने पूछा, किन्तु साथ ही हंस दिया।

उस शांत और निःशब्द संध्या में भी उसने मंजरी का मुख चमकता देखा।

'अब, उसके स्वर में प्रणय की झंकार थी' 'मेरा देवता है।'

कोई कुछ न बोला। प्रथम बार मंजरी इतनी अस्थिर होकर बात कर रही थी। प्रथम बार काक के लिए एकवचन का प्रयोग देखकर उसका हृदय धड़क उठा।

'दुर्गपाल अद्भुत व्यक्ति हैं,' आंबड़ ने कहा।

'अद्भुत !' मंजरी ने चमकती हुई आंखों से कहा, 'तुम सब उन्हें क्या जानो ? वे जीते हैं इसलिए मैं भी जीती हूं—और मैं ही जानती हूं।'

पल-भर तक मंजरी शांत रही। आम्रभट का हृदय भर आया। उसके मस्तिष्क में चक्कर काटता हुआ विचार बाहर निकल पड़ने के लिए व्यग्र हो गया। वह समझा—न समझा और बोल पड़ा, 'ईश्वर न करे—उन्हें कुछ हो गया तो—' वह बोला और पछताया। कैसा प्रश्न था ? और वह भी किससे ? उसका अपनी जिह्वा खींच लेने का मन हुआ। मंजरी क्रोधित न हुई। ऐसा लगा, यही प्रश्न उसके मस्तिष्क में भी घूम रहा था। पल-भर के लिए उसकी आंखों में घबराहट छा गई, उसके स्वर में शब्दों से भी अधिक करुणा का अवर्णनीय भाव सुनाई पड़ा।

उसने सिर ऊपर उठाया।

'उनके मरने पर—मैं भी मर जाऊंगी।'

शब्द सीधे और सरल थे। उनके उच्चारण में भयंकर शांति थी, फिर भी आम्रभट की दृष्टि में सौंदर्य की यह अप्रतिम मूर्ति—इन शब्दों में ही मानो स्वयंभू अग्नि में जलती दिखाई दी। वह एक भी शब्द न बोल सका। मंजरी म्लान मुख से रेवा की ओर देखने लगी।

'देवी ! गला ठीक करके आँबड़ बोला, 'दुर्गपाल का कुछ नहीं होने का, वे तो अमर हैं।'

'मुझे भी ऐसा ही लगता है।' मंजरी ने अस्पष्ट और खिन्न वाणी में उत्तर दिया। 'यम को उनके निकट आते डर लगता है।' दोनों वहाँ से फिरे और अपने-अपने स्थान पर गये।

आँबड़ के मस्तिष्क के सामने काक के मरने पर निराधार बनी मंजरी आकर खड़ी होगई। यह गर्विष्ठा और सुन्दर स्त्री, सूखी और जलते पत्तों के समान, बिना अग्नि के जल जाने वाली थी। फिर भी ऐसी स्त्री को—जो ऐसे प्रसंग में जीवित रहने की कल्पना तक न कर सकती थी—ऐसी स्त्री को वश में करने की आशा रखना! आँबड़ का सिर घूमने लगा। मंजरी तो जैसी-की-तैसी, काक के वातावरण में ही आच्छादित रहने वाली थी, और यदि काक अग्नि की भेंट हो जायगा तो उसकी आँच से प्रज्वलित हुए वातावरण में वह जल मरने वाली थी। यह विचार आते ही आँबड़ अल्पता की अधम-से-अधम दशा में जा गिरा। जिस मनुष्य ने इस स्त्री पर विजय प्राप्त की थी वह उससे इतना बड़ा, बुद्धिशाली और शूरवीर था कि उसके स्थान को स्पर्श करने तक की योग्यता उसमें नहीं थी। उसका हृदय बैठ गया, आशाएं धूल में मिल गईं, अल्पता में मंजरी के प्रेम बिना जीवन व्यतीत करना उसे व्यर्थ-सा लगा।

'मंजरी! मंजरी!' अपने कमरे में वह मन-ही-मन चिल्लाया 'तुझे भगवान् ने ऐसा क्यों बनाया?' उसकी निद्रालस आँखों ने एक लंबी और तेजस्वी देवी, आत्मतेज से अँधकार को चीरते हुए, दूर, और दूर जाती हुई देखी। उसके कल्पना मंदिर में उसने उसे सिंहासन पर बैठते देखा। उसने नमस्कार किया। आँखें कब बंद हुईं यह वह न जान सका। किन्तु जब वह उठा तो वही आम्रभट न रहा। उसका उद्वेग कुछ-कुछ कम हो गया था। निराधार हृदय की शक्ति उसमें प्रगट हुई। उसे अपनी चिंता न थी। भले काक मंजरी को ले जाय,

भले मंजरी उस पर ध्यान न दे—किन्तु वह एक हतोत्हास व्यक्ति, उसके लिए अपने प्राण अवश्य देगा। जीवन में और को रस नहीं रह गया था—अतः काक और मंजरी के जीवन-रस में व न वृद्धि करे ? उसके मस्तिष्क में विचित्र विचार उठने लगे। अपने आप को काक और मंजरी के सुख का अधिष्ठाता समझ लगा, और इस पद को निभाने के लिए उसने सर्वस्व होम देने निश्चय किया। विचारों की धुन में वह समर्पण के शिखर पहुंच गया था।

जिस समय आँबड़ महेता इस प्रकार विभिन्न भावों और विच के झूले में झूल रहा था उस समय रेवापाल लाट पर एकछत्र अधिप स्थापित कर रहा था। प्रत्येक गाँव में पट्टणी अधिकारियों को बं बनाने या मार डालने और उनके स्थान पर लाट के अधिकारियों नियुक्त करने में लगा हुआ था। पट्टणी सेना के खंभात तक आ ज की शंका से उसने अपनी सेना खेटकपुर के निकट एकत्रित करनी आर कर दी थी। भृगुकच्छ का गढ़ लेने की उसने आवश्यकता न देखी गढ़ में नाममात्र के लोग, थे यह वह जान चुका था। दहेज तक उस आज्ञा का ढिंढोरा पीट दिया गया था। अतः किसीके लिए न पार करके गढ़ म जाना संभव न था।

गढ़ में अनाज था नहीं, अतः कुछ दिनों पश्चात् शस्त्र डाल के सिवा गढ़वासियों के लिए और कोई चारा न था।

: ८ :

वंथली की हलचल

अक्षयतृतीया के अवसर पर वंथली में बहुत हलचल थी। एभल नायक मर चुका था और उसे लौटाने की जूनागढ़ में किसीको चिन्ता न थी। वहाँ से कोई समाचार नहीं आया। जगदेव परमार के घाव अभी पूरे न थे अतः वहाँ की हलचल में भाग न ले सकने के कारण वह बिस्तर में पड़ा-पड़ा कुढ़ रहा था।

कुछ दिन हुए राजा का स्वास्थ्य सुधर गया था जब से उनका स्वास्थ्य सुधरा तब से पट्टणी सेना में विचित्र उन्माद आ गया था—मानो गिरनार को कंकड़ के समान उठा फेंकेंगे। इसका कारण राजा और रानी दोनों थे। पत्थर की चौकी के सामने लड़ते समय राजा के स्वभाव में कुछ परिवर्तन हो गया था। परिपाटी के अनुसार युद्ध करने की प्रणाली ही उन्होंने स्वीकार की थी और गर्व-भरा शौर्य दिखाने और घेरे की योजना बनाने को ही वे राजा के योग्य गौरव मानते थे। किन्तु चौकी के सामने उनके सिंह के समान स्वभाव ने व्यक्तिगत पराक्रम के रक्त का आस्वादन किया था, तब से राजसी ठाठ से घेरा डालने में उन्हें निर्बलता दिखाई दी। मन्त्रियों और सेनापतियों की वीरता के यश से लाभ उठाना उन्हें कायरता लगा।

उनके हाथ प्रलय ढाने को व्यग्र हो गए। उनका हृदय युद्ध में कूद पड़ने के लिए व्याकुल हो गया। उनकी इच्छा अपने ही हाथों से खेंगार का मानमर्दन करने के लिए उछलने लगी। स्वयं ही गिरनार को भूमिसात् करने की उनकी महत्वाकांक्षा थी। उन्होंने सेना के व्यूह रचने आरम्भ किए, सेनापतियों को आज्ञाएं देनी प्रारम्भ कीं और चारों की सेना को अपनी बनाकर खेंगार को उसके गढ़ में कुचल डालने का महाप्रयास प्रारम्भ किया।

राजा की इन सभी योजनाओं में लीलादेवी का भी हाथ सदा

रहता। कुछ लोग अन्दर-ही-अन्दर यह भी कहते थे कि ये सब योजनाएं उन्हीं के कारण बन रही हैं। वह निर्बल होगई। उसकी आँखें अधिक स्थिर होगईं, अधिक अन्दर धंस गईं। जो जूनागढ़ के घेरे का विचार तक न करती थी वही आज जूनागढ़ के लिए काल बन बैठी। उसके शांत और गहन हृदय में से द्वेष और आवेश की लहर पर-लहर आने लगी, जिनमें सम्पूर्ण पट्टणी सेना भी बहने लगी। इस आवेश और द्वेष का मूल निकट रहने वाले चतुर लोग सरलता से देख सकते थे। आज कितने ही दिन हो गए काक का कोई समाचार न मिला था। कोई बोलता न था किन्तु सबके मन में यह विश्वास जम गया कि काक मर गया। जैसे-जैसे दिन व्यतीत होते गए और यह विश्वास दृढ़ होता गया वैसे-वैसे जूनागढ़ के प्रति लीलादेवी का क्रोध और द्वेष बढ़ता ही गया। राजा ने प्रथम बार भावहीन रानी में उत्साह के बीज देखे, रानी ने प्रथम बार जयदेव को राज्यपद के आडम्बर से अलग आत्मशौर्य में शोभित देखा। शरारत करने पर तुले दो बालकों पर जैसे रंग छा जाता है वैसे ही इन दोनों पर भी रंग छागया था। इन दो के साथ और दूसरे दो व्यक्ति मिल गए थे। त्रिभुवनपाल दण्डनायक और काश्मीरादेवी। उत्तर में एक सेना के साथ होने पर भी काक के विषय में सुनकर वे आ पहुंचे और रानी के निश्चय को और भी दृढ़ बनाने लगे।

मुंजाल महेता यह उत्साह देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्हें जूनागढ़ के घेरे से अधिक जयदेव के स्वभाव की चिन्ता थी। जयदेव में शौर्य प्रकट हुआ देखकर वे निश्चिंत हो गए। जयदेव को व्यर्थ आडंबर रखने का इस समय अवकाश न था। बाबरा भूत या जगदेव परमार की सहायता से भय उत्पन्न करने का अवकाश न था। वे पट्टणी सेनापतियों के साथ मित्र के समान हिलते-मिलते थे और युद्ध की योजना बनाते थे। अपने ही शौर्य से अपनी सर्वोपरिता को प्रमाणित करने के लिए वे व्याकुल थे। राजा और रानी में सम्बन्ध प्रगाढ़ हो रहा

था यह भी उनकी दृष्टि के बाहर न था। विश्वकर्मा के गर्व में वे सभी में रस लेते थे।

: ९ :

प्रणयी की गुप्त बातें

कुछ दिनों तक वंथली में भारी हलचल रही। एक दिन मध्य-रात्रि को समर्थ खिड़की खोलकर बाहर झाँक रही थी। उसे ऐसा लग रहा था मानो पृथ्वी अपनी धुरी से खिसक गई हो। उसके पिता का जी ठिकाने न था अतः वे दिन-भर बाहर रहते थे। राजा को जाने क्या उछल-कूद करने की सूझी थी। लीलादेवी तो विकराल जगदम्बा-सी लगती थी। 'प्रेमकुँअर,' समर्थ बड़बड़ाई, 'यह पेमलो' पागल हो गई थी क्योंकि उसके 'महेता' को घोड़े पर चढ़कर मंदरड़े जाना पड़ा था। और वाहड़ महेता तो जाने कहाँ पाताल में घुस गया था कि दिखाई ही न पड़ता था। बाहर से सभी शांत रहने का प्रयत्न कर रहे थे किन्तु अन्दर-ही-अन्दर सभी अस्थिर थे। एक घेरे के लिए ऐसे लोग इतने पागल हो जा सकते हैं यह वह न समझ सकी, और इतना दुःख किसी और पर पड़ा हो यह भी समर्थ न जानती थी।

कभी-कभी वाहड़ महेता इस खिड़की के सामने आता था, अब आता ही नहीं, सजल-नयन होकर समर्थ ने विचार किया। 'काक पकड़ा न गया, और वाहड़ महेता का दादा मन्त्री न था—अतः उसके स्वप्न तो नष्ट होगए। अब उसका और उसके महेता का क्या होगा ?' पशोपेश में पड़कर उसने प्रश्न किया। उत्तर में किसी की पग-ध्वनि सुनाई पड़ी। यदि यह पग-ध्वनि वाहड़ की निकल आए तो उसने शासनदेवी पद्मावती को चुनरी चढ़ाने की मनौती मानी। उसने अन्धकार में बहुत ध्यान से घूरकर देखा और नवपद

का जाप किया।

उसकी मनौती और जाप फलीभूत हुए। शीघ्र ही वाहड़ महेता का स्वर आया—'समर्थ !'

'अरे !' कहकर समर्थ खिड़की से आधी बाहर लटक गई, 'मैंने मनौती मानी ही थी कि तुम आगए।'

'धीरे बोल।'

'क्यों ?' धीरे और सरलता से समर्थ ने पूछा।

'मैं एक शुभ-समाचार देने आया हूं।' कवि हृदय उमड़ा।

'क्या ? बताओ—बताओ—बताओ—'

'अरे ! तू धीरे बोल, नहीं सम्पूर्ण गढ़ एकत्रित हो जायगा।'

'हाय ! मुंह से निकल जाता है। क्या है ?'

'किसीको कहना मत !'

'तुम तो मुझे मूर्ख ही समझते हो।' होंठ चबाते हुए समर्थ बोली।

'देख, मैं एक समाचार लाया हूं जिससे हमारा ब्याह पक्का हो जायगा।' उत्साह से भरकर वाग्भट बोला।

'सच ?'

'अरे ! धीरे, मुझे समाचार मिला है कि काकभट जीवित हैं।'

'चूल्हे में जा—'

'सुन ! उसे वन्दी बनाकर रा' के महल में रखा गया है।'

'झूठ !' समर्थ बोली।

'अरे, मैं अपने कानों सुनकर आया हूँ। मैं पिताजी के साथ जूनागढ़ गया था वहीं सुना कि उसे चोट तो बहुत लगी है, किन्तु खेंगार उसे महल में रखकर उसकी टहल कर रहा है। अब मैं उसे छुड़ा लाऊं कि फिर—'

'कि फिर पिताजी मुझे तुम्हारे साथ ब्याह देंगे। ठीक है न ?'

'अरे धीरे—' कुढ़कर वाहड़ बोला।

'अरे अच्छा! धीरे—' चिढ़कर समर्थ ने कहा, 'जन्मी तभी से मैं तो धीरे ही बोलती आई हूं।'

'अब मैं जाता हूँ,' वाहड़ ने कहा, 'तू आराम से सोना।'

'महेता—ओ महेता!'

'क्या है।'

'मैं अब समझी?'

'क्या?'

'मेरे पिताजी मुझे ब्याहते क्यों नहीं, यही—'

'क्यों?' कुछ चिन्तानुर मुख से वाहड़ ने कहा।

'हम कुछ मनौती नहीं मानते इसीलिए।'

'इसमें क्या है, तू कहे वह मनौती मान लूं। तेरे बिना मेरा जीवन सूख जायगा।' भावुक वाहड़ बोला, 'कठिन-से-कठिन मनौती मानूँ—तू कहे तो।'

'अच्छा एक काम करो। किसी तीर्थ का उद्धार करने की मनौती मानो।'

'मैं तो अड़सठ ही तीर्थों का उद्धार कर दूं—'

'हाय—हाय—इतना अधिक नहीं—'

'तो?'

'एक पर्याप्त होगा।'

वाहड़ इस भोली लड़की की ओर प्रशंसा-भरी दृष्टि से देखने लगा। उसके हृदय में तीव्र प्रणय-संगीत गूंज उठा।

'अच्छी बात है समर्थ, तू मिल जाय तो मैं शत्रुंजय का जीर्णोद्धार करवाऊँ—बस?' गम्भीर स्वर में वाहड़ बोला। उसका तेजस्वी मुख दीप्त हो उठा।

समर्थ को सतोष हो गया, 'महेता! अब मेरा गीत पूरा हो जायगा।'

'ऊँह!' कहकर वाहड़ महेता कल्पना के घोड़े पर आरूढ़ होकर

विहार करता हुआ वहाँ से विदा हुआ। समर्थ के हर्ष की सीमा न रही। उसे लगा कि वाहड़ अवश्य काक को छुड़ायगा। फिर उसका पिता उसके साथ उसका व्याह कर देगा, और फिर वे दोनों मिलकर शत्रुंजय का जीर्णोद्धार करेंगे। उसके नन्हे-से हृदय के लिए यह बात बहुत बड़ी थी—उसे लगा कि इस समय सम्पूर्ण राजगढ़ को नाच उठना चाहिए। काकभट जीवित है यह उसके वाहड़ ने पता लगा लिया। कितनी अच्छी बात है! किन्तु यह अच्छी बात जानने-सुनने वाला कौन? वह एकदम उठी, कुछ हँसी और कूदकर बाहर निकली। 'प्रेमकुंअर क्या कर रही होगी?' कहते हुए वह चुपचाप पिछली सीढ़ियों से जहाँ शोभ महेता रहते थे वहाँ गई।

शोभ महेता तो मेंदरड़े गये हुए थे अतः उसने साहस करके धीरे-से कड़ा खड़खड़ाया।

'कौन है?' प्रेमकुंअर का घमण्ड-भरा प्रश्न सुनाई पड़ा।

प्रेमकुँअर को राज्य-कार्य के प्रति एकदम तिरस्कार हो गया था। उसके महेता को मेंदरड़े भेजा—यह भी कोई बात है? उसकी न जाने कितनी भावनाएं दबी पड़ी रह गई थीं—कि किसी ने कड़ा खड़-खड़ाया। उसका हृदय धड़क उठा—'क्या उसके महेता आगए?' एक निःश्वास लेकर उसने द्वार खोला कि समर्थ उससे लिपट गई। पति की प्रतीक्षा करती प्रेमकुंअर को समर्थ के आलिंगन से कंपकंपी छूट गई। उसने अपने को एकदम छुड़ाया और बड़बड़ाई—'यह पगली अभी कहाँ से?'

'प्रेम भाभी! प्रेम भाभी!' समर्थ प्रेमकुंअर के कन्धे पर सिर रखकर हर्ष से हाँपने लगी, 'मेरा व्याह पक्का हो गया।'

'किसके साथ?' तिरस्कार से प्रेमकुंअर ने पूछा। अपने व्याह को छोड़ दूसरों के व्याह का कोई महत्व हो भी सकता है यह वह न समझ सकी।

'वाहड़ महेता। वे काकभट को छुड़ाकर लाने वाले हैं।'

'काकभट !' चतुर नागरनी के कान खड़े हो गए।

'हाँ, उसे बन्दी बनाकर रा' ने महल में रखा है। मेरे बाहड़ महेता उससे भेंट कर आए हैं।'

'हैं !'

'हाँ, तू देखती जा,' कहकर समर्थ पागल-सी हंसने लगी। प्रेम-कुंअर इस बात का महत्व समझती थी।

'जाकर सो जा, पागल हो जायगी।' कहकर गर्व में प्रेमकुंअर समर्थ को झिड़कती हुई वहाँ से चली गई।

'किन्तु किसीको कहना मत, मेरी सौगन्ध है।'

'तेरी सौगन्ध,' कहकर प्रेमकुंअर अदृष्ट हो गई और इस हृदय-हीन मित्र के प्रति मौन तिरस्कार प्रकट करती हुई समर्थ वहाँ से चली गई।

लीलादेवी होंठ पीसती हुई अपने कमरे में इधर-से-उधर घूम रही थी। उसकी आंखों में नींद न थी। उसका हृदय उद्विग्न था। उसे विश्वास हो गया था कि काक मर गया है। उसको झुकाने वाला, लाट की महत्ता का प्रतिनिधि, उसकी महत्वाकांक्षा को उत्तेजित करने वाला वीर इस समय किसी घाटी में मरा पड़ा होगा। श्वान या सियार उसके माँस को सूँघ रहे होंगे। भृगुकच्छ में उसकी स्त्री आशा-भरे हृदय से प्रतीक्षा कर रही होगी। उसके शांत और कठोर हृदय में मंजरी के लिए भी दो स्नेह-भरे शब्द निकल पड़े।

कमरे में एक छोटा दीपक जल रहा था। एकाएक द्वार खुला और प्रेम आई। रानी ने बनावटी शांति से उसकी ओर देखा। रानी का कठोर और भावहीन मुख देखकर प्रेम तनिक संकुचित होकर खड़ी हो गई।

'देवी ! एक शुभ-समाचार लाई हूं।'

रानी को इस समय विनोद पसन्द न था। उसने कठोर होकर पूछा—'क्या है ?'

'काकभटजी जीवित हैं।' प्रेमकुंअर जल्दी-जल्दी बोली।

लीलादेवी उछली, 'सच?'

'हाँ, जूनागढ़ में रा' के महल में हैं। बहुत अस्वस्थ हैं।'

रानी के भाल की नसें उभर आईं—'किसने कहा?'

'समर्थ ने।'

रानी निराश हो गई, 'उसने कैसे जाना?'

'वाहड़ महेता ने उससे कहा।'

'वाहड़?' लीलादेवी ने अधीर होकर पूछा, 'उसने कैसे जाना?'

'वह जूनागढ़ में काक से भेंट कर आया है।'

'जूनागढ़ जाना क्या इतना सरल है कि वहाँ जाकर उससे भेंट कर आया? चल यहाँ से, ऐसी व्यर्थ की गप्पें लाती है! जा, जाकर सो जा।' तिरस्कार से रानी ने कहा, 'प्रातःकाल बात करूंगी।'

प्रेमकुँअर अपमानित हुई अतः नाक चढ़ाकर वहाँ से चली गई। 'कितना घमंड है,' मन-ही-मन वह बड़बड़ाई, 'यह तो सोलंकी के घर आई है इसलिए सब कुछ निभ जाता है।'

लीलादेवी की अधीरता बढ़ी। उसे कुछ न सूझा। उसकी अकुलाहट की सीमा न रही। अन्त में उसे एक मार्ग सूझा और उसने मंगी को बुलाया—'मंगी! जा, देख आ, महाराज क्या कर रहे हैं? कहना मुझे एक आवश्यक काम से भेंट करनी है।'

'इतनी रात गए?'

'इससे तुझे क्या?'

मंगी एकदम गई और शीघ्र ही लौट आई।

'देवी! देवी! महाराज पधारे हैं।' जयसिंहदेव उत्साह से डग भरते हुए आए। उनकी आँखें अधीरता से चमक रही थीं।

'मैंने नींद से तो नहीं जगाया!' रानी ने मुस्कराकर पूछा।

'नहीं रे, मैं अभी-अभी एक झंझट से छूटकर आ रहा हूँ। क्यों, क्या बात है?' रानी की गोद पर हाथ रखकर वे बैठ गए।

'मुझे एक समाचार मिला है।'

'क्या ?'

'काक जीवित है और रा' के महल में है।'

राजा ने आँखें फाड़कर देखा, 'कौन यह गप्प लाया ?'

'बताती हूँ किन्तु यह गप्प है या नहीं यह आप खोज निकालिए। शोभ की बहू प्रेमकुँअरी यह समाचार लाई है।'

'उसे कहाँ से मिला ?'

'समर्थ से, और उसे कहा वाहड़ ने। कहते हैं वाहड़ ने उससे जूनागढ़ में भेंट की है। ऐसे कैसे हो सकता है ?'

राजा खड़खड़ हँस पड़े, 'वाहड़ तो कवि का कवि रहा ! तब तो बात सच है। वाहड़ शंका का समाधान करने अभी अपने बाप के साथ जूनागढ़ जाकर आया है। मैं उदा महेता से अभी-अभी यही बात कर रहा था।'

'समाधान !' लीलादेवी के हृदय में होली सुलग उठी।

'ये तो व्यर्थ में प्रयत्न कर रहे हैं, रा' ने स्पष्ट ना करदी है। हाँ, तुम्हारी बात ठीक लगती है। वाहड़ को कुछ-न-कुछ पता अवश्य लगा होगा।'

'ठीक-ठीक पता लगवाइए।'

'अभी लो। मंगी ! जा, वाहड़ को बुला ला।' महाराज ने आज्ञा दी।

: १० :

वाहड़ काक को छुड़ाने जाता है

इन कुछ दिनों में राजा में बहुत परिवर्तन हो गया था । उनकी एकाग्र आँखें, फूलते नथुने, और उनके शरीर की धनुष-सी सुघड़ता उनके हृदय में के उत्साह को प्रकट कर रहे थे । वे न थकते थे, न सोते थे, न उनकी शक्ति कम होती थी, न कोई वस्तु उनके ध्यान से बाहर रहती थी और न किसी साधन का प्रयोग करना ही वे चूकते थे। विलास और सत्ता के प्रेमी-से वे एकदम प्रलय के समान बन गए ।

कई मनुष्यों के स्वभाव ऐसे होते हैं जिनमें निरंतरता, एकतारपन सदा ही दिखाई देता है। या तो उनमें उग्र एकाग्रता, या स्थिर कर्तव्य-परायणता, या सुमधुर रसिकता या निश्चिंतता या निर्बलता निरंतर प्रवाहित होती रहती है । किन्तु कईयों के स्वभावों में विभिन्न समयों पर विभिन्न तरंगें आ जाती हैं; इतना ही नहीं कभी-कभी तो यह तरंगें इतने वेग से आती हैं कि देखने वाले को यह भ्रम हो जाता है कि यह व्यक्ति कहीं पागल न हो जाय। जयसिंहदेव महाराज ऐसे ही तरंगी स्वभाव के थे । स्वाभिमान को छोड़कर उनके स्वभाव में और कोई वस्तु स्थायी न थी । पाटण के प्रतापी नरेश, सोलंकी कुल-शिरोमणि, विजय-सेना के नायक, और गुजरात की अतुल समृद्धि के स्वामी अपने ही गर्व में निमग्न रहते थे । किन्तु तरंग आवे ही वे सब छोड़कर विलासी बन जाते, घड़ी में स्वार्थी और शंकाशील हो जाते, घड़ी में उदार और निर्मल हृदय बन जाते । कभी उनके चातुर्य की प्रतापी चमक सभी को चकाचौंध कर देती,कभी औदार्य की जलधारा चारों ओर बहने लगती। जो बाबराभूत की सहायता से अमानवीय होने का दम भरते थे वे ही कभी-कभी मानव-हृदय की सद्भावनाओं को बड़ी सरलता से प्रकट कर सकते थे । हिमालय के प्रदेश में प्रकृति जैसी अनिश्चित होती है वैसी ही महाराज की थी । पल में प्रखर ताप छा जाता है और पल में

आकाश मेघाच्छन्न हो जाता है, अटूट वर्षा थम जाती है और प्रकृति हँसने लग जाती है, हरियाली और हिम दोनों का सौंदर्य वहाँ दिखाई पड़ता है और सब परिवर्तन अनजाने ही हो जाते हैं। इन स्वप्नों में से किसी विशेष समय पर जो स्वरूप होता है वह प्रचण्ड तो होता ही है। महाराज को भी ऐसी ही प्रचंड धुन लग गई थी। उन्होंने जूनागढ़ का विनाश करने के लिए तांडव-नृत्य इस प्रकार प्रारम्भ किया मानो वे रुद्र के अवतार हों।

बीमारी से उठने के पश्चात् महाराज में यह तरंग इस प्रकार उठी कि जो लोग उनसे वर्षों से परिचित थे वे भी चकित हो गए। बड़े-बड़े शूरवीर महारथी इस ज्वलंत प्रताप को देखकर चकाचौंध हो गए। जो जगदेव की तलवार या बाबरा के आतंक से कभी भयभीत न हुए थे वे महाराज की इस धुन से डर गए। पुत्र की बीमारी से मीनलदेवी को जितनी चिंता हुई थी उतनी ही चिन्ता यह धुन देखकर हुई। किन्तु उठती लहर को रोक देने वाला भी उनकी इस तरंग को न रोक सकता था। जिसके उत्साह को उकसाने की आवश्यकता थी आज उसीके उत्साह को कोई कम कर दे तो अच्छा, ऐसा उन्हें लगा। चतुर, दूरदर्शी लीलादेवी इस तरंग को देखकर चकराई तो नहीं, हाँ कुछ विस्मित अवश्य हो गई। उसके चतुर हृदय को यह नवीनता, देखकर कुछ आनन्द हुआ, उसकी महत्वाकांक्षा कुछ-कुछ संतुष्ट हुई। उसे लगा यदि महाराज सदा ही ऐसी तरंग में रहें तो पाटण कदापि दुःसह न हो।

मंगी के बाहर जाने पर महाराज रानी की ओर मुड़े। 'उदा एक नई युक्ति लाया है,' वे बोले।

कुछ भवें सिकोड़कर रानी ने पूछा, 'क्या?'

'उदाने रा' के भाणेजों को अपने हाथ में कर लिया है।'

'कौन देशल और वीशल?'

'हाँ, ये हमसे मिल जायँगे।'

'किन्तु मुझे ऐसों पर विश्वास करना अच्छा नहीं लगता।'

राजा गर्व से हंस दिए, 'मैं उन पर विश्वास करूँ ! मैं उन्हें भलीभाँति जानता हूं। ये तो खेंगार बड़ा भोला है कि उन्हें घर में रख छोड़ा है। किन्तु उनके कारण जूनागढ़ हाथ लग सकता है।'

'किस प्रकार ?' तनिक अधीर स्वर में रानी ने पूछा।

'गढ़ में उन्होंने कितने ही सैनिकों को अपनी ओर मिला लिया है।'

'अर्थात्,' कुछ तिरस्कार से रानी ने कहा, 'चुपचाप गढ में प्रवेश किया जा सकेगा ?'

'हाँ,' मुस्कराकर राजा ने कहा।

'महाराज !' रानी ने शांत और तिरस्कार-भरे स्वर में कहा, 'विश्वास-घात से गढ़ लेना बुरा नहीं, किन्तु खेंगार की कीर्ति आपकी कीर्ति को मन्द कर देगी।'

ये शांत शब्द महाराज को कोड़े-से लगे। उन्होंने रानी की ओर कुछ अधीर होकर, कुछ क्रोध में, देखा। किन्तु रानी के शांत तिरस्कार में सदा ही ऐसी तटस्थता रहती थी कि राजा प्रायः उससे अन्दर-ही-अन्दर डरता था।

'कीर्ति !' अधीर होकर जयसिंहदेव ने कहा, 'मेरी कीर्ति को खेंगार मंद करेगा ? देवी, युद्ध में कीर्ति विजेता को प्राप्त होती है। पराजित की कीर्ति कैसी ? जूनागढ जीतना है और जिस-किसी साधन से वह जीता जा सके वही मेरा हथियार है।'

'हाँ,' हंसकर लीलादेवी बोली, 'किन्तु आपके पास जब आपको शोभा दे ऐसा अस्त्र है तो अशोभनीय अस्त्र क्यों उठाते हैं ? यदि आप गढ को शक्ति से तोड सकते हैं तो लोगों को फुसलाकर छिप-कर प्रवेश करने से क्या लाभ ?'

उत्तर की प्रतीक्षा में रानी पल-भर के लिए रुकी। राजा ने उत्तर न दिया। शक्ति और भेद दोनों का प्रयोग वे क्यों करना चाहते थे

यह बात रानी को बताने जैसी नहीं थी। क्रोध, शत्रुता, आवेश के धुँआधार में कभी-कभी उन्हें अपने हृदय में राणकदेवी का मुख दिखाई दे जाता था, और जिस स्त्री ने बचपन में उनका तिरस्कार किया था उसे झुकाने की लालसा सदा से उनके हृदय में थी। यह सब वे कैसे लीलादेवी को कह सकते थे ?

कुछ देर पश्चात् राजा ने उत्तर दिया, 'जूनागढ़ गिर जाय तभी मुझे कुछ सूझेगा।'

'अच्छा ?' उत्तर की असंबद्धता देखकर रानी ने उदासीनता से पूछा।

'अन्नदाता ! वाहड़ महेता आगए हैं।' मंगी आकर बोली।

'बुला ला' राजा तनिक मुस्कराकर बोले। रानी के साथ अधिक वादविवाद करने में उन्हें सार न दिखाई दिया।

वाहड़ ने अंदर प्रवेश किया और हाथ जोड़कर खड़ा होगया।

'वाहड़ ! तूने जूनागढ़ में काक के विषय में कुछ सुना ?' राजा ने पूछा।

वाहड़ चकित हो गया। राजा को यह बात कहाँ से मालूम हो गई ?

'क्या सुना ?' शांत और सत्ता-भरे स्वर में लीलादेवी ने प्रश्न में संशोधन किया।

'मुझे लगता है कि भटराज जीवित हैं।'

यह सुनकर रानी की आँखें चमकीं।

'तो मुझसे कहा क्यों नहीं ?' राजा ने क्रुद्ध होकर कहा। 'अभी-अभी मुझसे सब बातें कर गया किंतु इस संबंध में एक अक्षर भी न कहा। तू भी अपने बाप के समान सब कुछ चुपचाप करना सीख गया है क्या ?'

'महाराज !' नीचे देखते हुए वाहड़ बोला, 'क्षमा कीजिए। मेरा विचार—'

'क्या ?'

'कि काकभट को छुड़ा लाकर महाराज को प्रसन्न करूं।' वाहड़ बोला।

लीलादेवी हँस पड़ी। राजा की आँखों में भी हंसी चमक गई। उनका क्रोध जाता रहा।

'वाहड़! इसी समय जा —'

'जो आज्ञा।'

'देशल और वीशल के लिए संदेशा भी तू ही लेता जा।'

'जी।'

'उनसे कहना विलंब करना मुझे पसंद नहीं। मुझसे आकर भेंट करनी हो तो एकदम आएं। तू लेकर ही आना। परसों सब यहाँ एकत्रित होंगे। यदि समय पर आने का उनमें साहस न हो तो कह देना कि जयसिंहदेव सोलंकी धावा बोलने के पश्चात् किसी की चिंता नहीं करेंगे।'

'जी।'

'और उनकी सहायता लेकर काक को छुड़ाकर लाना।' राजा ने कहा।

'इस समय काक के बिना हमारा काम नहीं चल सकता।' रानी ने बात पूरी की।

'देवी! भटराज जीवित होंगे तो खाली हाथ न लौटूंगा।'

'परसों तुम चारों को यहाँ देखना चाहता हूँ।'

'जो आज्ञा।'

'जा, शीघ्र जा।'

वाहड़ प्रणाम करके वहाँ से चला गया और मंगी भी जाने लगी।

इतने में महाराज उठे।

'क्यों, जा रहे हैं ?'

राजा मुस्कराए, 'परमारी रानी आज कई दिनों से रूठी हुई है। कितनी ही बार संदेशा भेज चुकी है।'

लीलादेवी खदखद हंस पड़ी, 'मैं नहीं रूठने की। पधारिए !' वह शांत और तटस्थ बनकर खड़ी रही। राजा ने उसकी ओर देखा और उसकी शांति और स्थिरता देखकर घबराए। यह स्त्री उनके ठीक-ठीक समझ में नहीं आती थी। उनका मन रात यहीं काटने का हुआ, किन्तु इस तलवार की धार-सी तीखी, तेजस्वी, और भावहीन स्त्री के साथ रात काटने का उनमें धैर्य न रहा। उन्हें तो इस समय कोई ऐसा चाहिए था जो उन्हें हंसा सके, रिझा सके, उनसे झगड़ सके। वे मुस्कराकर वहां से चले।

लीलादेवी कुछ देर तक सोचती रही। उसके होंठों पर मुस्कराहट छा गई। वह आत्मतिरस्कार से कुछ बड़बड़ाई—'यह हीरा अनपरखा ही रह जाने का।' फिर वह मंगी की ओर घूमकर बोली, 'मंगी, मैं सोती हूं।'

'जैसी देवी की इच्छा।' कहकर मंगी ने द्वार के सामने अपना बिस्तर लगाना प्रारंभ किया।

रानी के हृदय में असंतोष न था, ईर्ष्या न थी। जूनागढ़ के विजेता की वह पटरानी थी और काक जीवित है इस बात से उसके हृदय में शांति छा गई थी। वह निश्चिंत होकर सोने की तैयारी करने लगी।

: ११ :

देशलदेव

दूसरे दिन रात को देशलदेव जूनागढ़ में अपनी हवेली के सबसे ऊपर के कमरे में बैठा हुआ था। पाटण के मंडलेश्वर का पुत्र, रा' खेंगार के भाणेज का शरीर पन्द्रह वर्ष पहले पाटण आने पर काक ने जैसा देखा था वैसा ही क्षीण था। उसका मुख स्वाभाविक कुरूपता और आयु दोनों के प्रताप से अत्याकर्षक लग रहा था। उसकी आँखें पीली होते हुए भी तेजस्वी थीं। वह मूँछ मुँह में रखकर चबा रहा था।

उसकी आँखें चंचल होकर नाच रही थीं।

वह आज व्यग्र था, स्वाभाविक असंतोष को पाल-पोसकर उसने बहुत विशाल बना लिया था। इस असंतोष का मूल कारण उसका पाटण और सोरठ से सम्बन्ध था। इन दोनों प्रतापी सिंहासनों की छाया में उसका जन्म हुआ था।

वह सदा विचार किया करता—यदि कर्णदेव महाराज निपूते मर गए होते, या जयसिंहदेव बाल्यावस्था में मर गया होता और त्रिभुवन-पाल जैसे वर्णशंकर और मुंजाल जैसे की सहायता न होती तो आज वह पाटण का स्वामी होता। यदि खेंगार निपूता मर जाय या उसके पुत्र मर जायँ तो वह जूनागढ़ का स्वामी बन जाय। उसके दुर्भाग्य से दोनों सिंहासन उसकी दृष्टि के सामने थे फिर भी कभी निकट और कभी दूर दिखाई पड़ते थे।

इस बात को साठ वर्ष होगए थे। पहले वह ननिहाल में रहा, फिर पाटण में रहा किन्तु सोरठ को सहायता देने के कारण मुंजाल बिगड़ खड़ा हुआ और उसे पाटण से निकाल बाहर किया। यहां आने पर उदार खेंगार ने आश्रय दिया किन्तु पूर्णतः उस पर विश्वास नहीं किया। अन्त में थककर उसने पाटण और जूनागढ़ के बीच संधि करवा दी। जयसिंहदेव का कृपापात्र बनने का प्रयत्न किया। उसने उदा महेता के

साथ सलाह करना प्रारंभ किया, उसके द्वारा उसने जयसिंहदेव को मनाया, बड़ी कठिनाई से खेंगार के दृढ़ निश्चय को ढीला किया, और अब राणकदेवी ने बाधा डाली। उसका असंतोष सीमा का उल्लंघन करने लगा। अब उसे किसीकी चिंता न रही, चाहे जूनागढ़ पराजित हो चाहे पाटण उजड़ जाय और चाहे जयदेव राणकदेवी को उठा ले जाय—उसे किसी की चिंता न रही। अब वह अपना अंतिम प्रयत्न कर रहा था—अपने भाग्य की अंतिम पँखुरी खोलने का निश्चय कर रहा था। किन्तु उसे खोलने की कोई युक्ति न सूझती थी। पिछले थोड़े दिनों से एक योजना उसके मस्तिष्क में चक्कर काट रही थी और इस समय वही उसके मन में रमी हुई थी। वह मूँछ मरोड़कर मुस्कराया। कितनी सरल योजना!

कुछ दिनों पहले उसका भाई वीशल एक अच्छा समाचार लाया था और तभी से यह योजना उसके मस्तिष्क में आई थी। समाचार इतना ही था कि राणकदेवी छिपकर किसी परपुरुष की सेवा करती है। यह बात सुनकर देशलदेव को अपनी शंकाएं उचित लगीं? इस साध्वी दिखाई पड़ने वाली रानी की साधुता ही उसके किसी गुप्त पापाचार की साची दे रही थी। अब यह पकड़ में आ गई।

उसने गहरा विचार किया—जूनागढ़ की दुर्जयता का आधार वहाँ का गढ़ था, गढ़ का आधार उसके स्वामिभक्त योद्धा थे, ये योद्धा खेंगार की अडिगता पर टिके हुए थे और यह अडिगता देवड़ी की एकनिष्ठा पर निर्भर थी। यह एकनिष्ठा असत्य प्रमाणित हो तो खेंगार डिगे, खेंगार डिग जाय तो सोरठी निराधार हो जायं, वे निराधार हो जायं तो गढ़ गिरे और गढ़ गिरे तो जयदेव को विजय प्राप्त हो—जयदेव जूनागढ़ ले ले तो फिर जूनागढ़ पर राज्य करने के लिए उसे किसी की आवश्यकता होगी ही। तो फिर—फिर एक सिंहासन तो हाथ में आएगा! देशलदेव को लगा कि जीवन के अन्तिम दिन निकट आते जा रहे हैं और थोड़े ही समय में उसकी आशाओं के महल धूल में मिल जायंगे। फिर अवसर क्यों गंवा दिया!

'जी हाँ।' कहकर वाहड़ निकट जाकर बैठ गया।

'महेता! वस्त्र बाँध लो।'

'जो आज्ञा।'

'कहो, क्या समाचार लाए हो?'

'पिताजी ने महाराज से बातचीत की थी। महाराज आप पर प्रसन्न हैं, किन्तु कहते हैं कि आप वहाँ चलें तो फिर बातें हों। इस समय वे कोई वचन देना नहीं चाहते।'

देशलदेव ने मूंछ मरोड़ी, 'तो?'

'पिताजी ने कहलाया है कि आप चलें फिर जूनागढ़ को कुछ भी हो महाराज ना नहीं कहेंगे।'

थोड़ी देर तक देशलदेव मौन रहे।

'अर्थात् मैं जयसिंहदेव पर विश्वास करूं और वे मुझ पर न करें, क्यों?'

वाहड़ ने उत्तर नहीं दिया।

'और कुछ कहलाया है?'

'हाँ। मैं यहाँ आया था तब एक उड़ती बात सुनी थी कि काक भटराज को यहाँ बन्दी बनाकर रखा गया है।'

'काक भटराज?' विस्मित होकर देशलदेव ने कहा।

'हाँ।'

'ऐसा नहीं हो सकता, हँसकर देशलदेव ने कहा। 'वे तो कभी के सुरलोक पहुंच गए।'

'यह सच नहीं है। वे आपके राजगढ़ में बन्दी हैं। महाराज ने स्वयं मुझसे कहा है कि कुछ भी करके उसे लेते आना।'

'राजगढ़ में हों और मुझे मालूम न हो ऐसा कभी हो सकता है?'

'देशलदेवजी!' दादु गढ़रक्षक ने गर्दन हिलाते हुए कहा, 'महेताजी की बात सत्य मालूम होती है।'

'कैसे?'

'पिताजी के मरने के पश्चात् उनकी चौकी पर से एक पालकी में बन्द करके मेरा भाई किसी को लाया अवश्य था।'

'कौन, छत्रसाल जी?'

'हाँ।'

देशलदेव का कपाल आकुंचित हो गया। वह ज़ोर से मूँछ बाने लगा। वीशलदेव की बात और इसमें कोई सम्बन्ध तो हीं है।

'भृगुकच्छ वाला काकभट न?'

'हाँ।' वाहड़ ने कहा।

'खेंगार जी से राणकदेवी का व्याह भी इसी ने कराया था।'

'ऐसा कहा अवश्य जाता है।' वाहड़ बोला।

'अब मैं समझा।'

थोड़ी देर तक देशलदेव लेटा रहा। जैसे-जैसे उसके विचारों का ग बढ़ता जाता था वैसे-वैसे वह मूँछें ज़ोर से चबाता जाता था। थोड़ी देर पश्चात् वह बोला, 'वाहड़ महेता! तुम इसी समय वापस जाने को तैयार हो?'

'हाँ, क्यों?'

'तुम्हें यहाँ रखने में भय लगता है।'

'तो मैं जाता हूँ, किन्तु आप—'

'जिस स्थान पर उस दिन मैंने तुम्हारे पिताजी से भेंट की थी वह स्मरण है?'

'हाँ।'

'कल रात को वहाँ आना। मैं वहाँ आकर तुमसे भेंट करूंगा।'

दादु चमका किन्तु कुछ बोला नहीं।

'तो मैं जाऊँ?' वाहड़ ने पूछा।

'हाँ,' देशलदेव ने कहा। 'गढ़रक्षक! इन्हें कोट के बाहर छोड़

आओ। देखना, किसी को पता न लगे। मैं अभी महाराज के पास जाता हूँ और कुछ-न-कुछ पता लगाता हूं।'

'और मेरा क्या?' दादु ने पूछा।

'तुम्हारा? घबराते क्यों हो? जहाँ मैं वहाँ तुम। इनको पहुंचाकर राजमहल में आ जाना।'

'जी।' कहकर गढ़रक्षक वहाँ से जाने को तैयार हुआ।

'देशलदेवजी!' वाहड़ ने रुककर पूछा, 'काक भटराज का क्या?'

'उनका क्या?'

'उनको साथ लेना पड़ेगा।'

'नहीं तो?'

'नहीं तो महाराज के क्रोध का पार न रहेगा? मुझे विशेष आज्ञा दी है।'

'ठीक है। मुझसे जो हो सकेगा करूंगा। किन्तु उनके बिना जयसिंहदेव का क्या काम नहीं चलेगा?'

'वे महाराज के बहुत विश्वासपात्र हैं।'

'अच्छा।' कहकर देशलदेव ने गर्दन हिलाकर वाहड़ को विदा दी। वाहड़ ने यह न सोचा था कि देशलदेव उसे इतनी जल्दी विदा कर देगा। किन्तु इस समय उसने कुछ भी पूछना उचित न समझा। वह मौन होकर वहाँ से चला गया। देशलदेव शीघ्रता से उठा और तलवार बाँधकर पगड़ी बाँधी। मूँछों पर ताव देता हुआ वह घर से बाहर निकला और राजमहल की ओर गया। उसकी चाल, उसके शरीर की भंगिमा से असाधारण दंभ टपक रहा था। वह जल्दी से राजमहल पहुंचा। जूनागढ़ की सामने की कोट के [illegible] आजकल जो मस्जिद है वह वास्तव में रा' खेंगार का महल था—दुर्जय जूनागढ़ का प्रतापी मध्यबिंदु था। खेंगार और उसकी राणकदेवी उसमें निवास करते थे और वहीं से सोरठियों को शौर्य और उन्माद की प्रेरणा मिलती थी। राज्यभक्त सोरठियों के मन में इस

प्रासाद के लिए देवमंदिर-सा पूज्यभाव था। देशलदेव के मन में इस प्रकार के भाव का अंश भी न था। कई बार तो वह यह विचार करता कि यह महल कब उसका घर होगा? इस विचार के कारण उस महल के प्रति उसका आकर्षण था किंतु खेंगार उसमें रहता है यह विचार आते ही उसका मन खट्टा हो जाता था।

'महाराज हैं?' उसने द्वार पर बैठे हुए सैनिक से पूछा।

'कौन देशलदेव महाराज! हाँ महाराज ऊपर बैठे हैं।'

'जा, पूछ आ कि आ जाऊं?'

'अरे बापू! आपको भी क्या आज्ञा लेनी पड़ेगी? जाइए, ऊपर छत पर हैं।'

'क्या कर रहे हैं?'

'टहल रहे होंगे।'

'अच्छा।' देशलदेव जल्दी से अन्दर गया और सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर छत पर चढ़ा। ऊपर चढ़कर उसने चारों ओर देखा। चंद्रमा के मंद प्रकाश में उसने देखा की छत के पूर्व की ओर दो व्यक्ति खड़े हुए थे। वह धीरे-धीरे उस ओर गया। छत पर से चारों ओर का दृश्य देखकर देशलदेव के हृदय पर मानो भारी बोझ पड़ गया। उसका क्षोभ बढ़ गया और चिंता से वह चारों ओर देखने लगा। गढ़ के पीछे गिरनार देवी रक्षक के समान खड़ा हुआ था। शुक्लपक्ष के अर्द्ध चंद्र के प्रकाश में उसके शिखर सुन्दर लग रहे थे। उसकी तलहटी के वनों में समीर धीमा और मधुर स्वर कर रहा था। थोड़ी ही दूर पर सोनरेखा का छोटा पाट कहीं-कहीं चमक रहा था।

दो ओर चौकियों की चमकती हुई शृंखला के मनके दिखाई पड़ रहे थे। मात्र मेंदरड़े के परे से कभी-कभी चीत्कार सुनाई पड़ती थी और कभी-कभी दौड़ते घोड़ों का टाप कान में पड़ जाती थी। उससे परे— दूर— थली के दीपक चमक रहे थे। इन दीपकों के विस्तार से वंथली